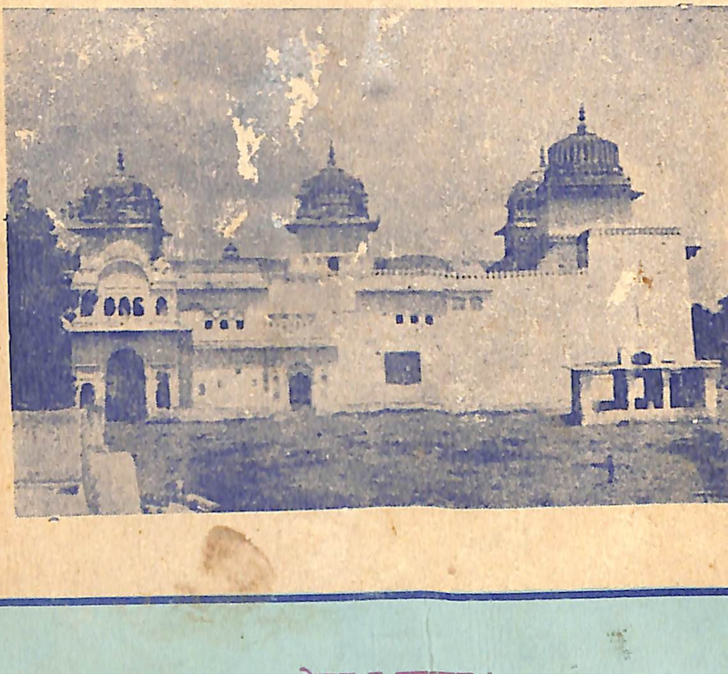
ओरछा का इतिहास



लेखक व प्रकाशक :

ठाकुर लछमनसिंह गौर
ओरछा जिला टीकमगढ़ (म०प्र०)

सन् १९७७ ई०]

[मूल्य पांच रुपया

ओरछा का इतिहास



रचियता लेखक व प्रकाशक

ठा० लछमनसिंह गौर ओरछा

मकर संक्रान्ति १३-१-७७ ई०

छठवां संस्करण १००० } सं० २०३३–३४ वि० { मूल्य पाँच रुपया

छठवां संस्करण
मकर संक्रान्ति १३ जनवरी शुक्रवार सन् १९७७ ई०
(सम्वत् २०३३-३४ वि० सर्वसत्व स्वाधीन)

●

●

-: मिलने का पता :-
ठाकुर लछमनसिंह गौर ओरछा
तहसील-निवाड़ी
जिला-टीकमगढ़
(म० प्र०)

निवेदन

संसार में जीवित और उन्नत जातियों के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने पूर्वापर इतिहास का भली प्रकार ज्ञान रखें। देश काल की गतिविधि उसके समय समय पर हुये परिवर्तन आदि और अनेक आवश्यक बातें इतिहास से ही मानी जाती हैं। इतिहास साहित्य का एक मुख्य अङ्ग है। इतिहास और साहित्य की सृष्टि लेखकों और कवियों द्वारा ही हुआ करती है। अतः यह आवश्यक है कि प्रथम हम अपने इन इतिहास ग्रन्थों के निर्माताओं के सम्बन्ध में जान लें। प्रस्तुत पुस्तक इन ही भावनाओं से प्रेरित होकर लिखी गयी है।

बुन्देलखण्ड वीरों और कवियों की खान है इसमें कितने वीर पुरुष दानी महाराजा हुये हैं।

बुन्देलखण्ड का इतिहास लिखना बहुत कठिन काम है। बुन्देलखण्ड के वीरों का इतिहास व जिन्होंने बुन्देखण्ड की रचना की उसका इतिहास बहुत गौरवपूर्ण इतिहास है। बुन्देलखण्ड में कालिंजर का किला महोबा का इतिहास, ओरछा व पन्ना का इतिहास उसकी वस्तु स्थिति को प्रगट करता हैं।

इस इतिहास को लिखने के लिये अधिकांश सामग्री तत्कालीन ओरछा राज्य घराने के किले में पुराने रिकार्ड बुलेटिन से, चरखारी, छतरपुर, चदेरी, से उपलब्ध हुई है।

बुन्देलखण्ड के इतिहास में ओरछा का विशेष महत्व है। यह कहना कि बुन्देलखण्ड को कभी भी एक सूत्र में पिरोया तो ओरछा के बुन्देल शिरोमणि वीरसिंह देव प्रथम ने अतिशयोक्ति न होगी। जब मुगल सत्ता अपने चर्मोत्कर्ष पर थी और बुन्देल।महाराजा उनके समक्ष अधिक समय तक न टिके रह सके। फिर भी स्वतन्त्रता के लिए उनका प्रयास चिरस्मरणीय

ही रहेगा। ओरछा विश्व के उन स्थानों में से है जो आज भी अपनी छाती के नीचे सांस्कृतिक थाती को काल के कठोर आघातों से बचाकर अतीत के मूक गीत गाते हुए उत्थान और पतन के विधान की दुहाई दे रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है।

इस पुस्तक को प्रस्तुत करते हुये प्रार्थना है कि मैं निश्चित ही शुद्ध रूप से लेखक नहीं हूं लेकिन गत इतिहास की जाग्रत कही अवश्य है इसलिए मैंने जो अपने सिर पर लिये महान–दायित्व को हृदयावेश में जिस प्रकार निभाया है उसमें अनेकों त्रुटियाँ होना स्वाभाविक है। पाठक इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे और अपना अमूल्य सुझाव देकर कृताथ करेंगे जिससे मैं अपने इस संकल्प को श्री रामराजा भगवान की कृपा से आगे सातवाँ संस्करण में पूरा करने का प्रयास कर सकूं। ओरछा का इतिहास के ऐडीसन पांच(संस्करण पाँच) निकल चुके हैं और अब नये रूप में जनता के सामने पुनः छटवाँ संस्करण लाने की चेष्टा की है। श्री जगदीश नारायण पुरोहित शिक्षक ओरछा से मुझे योगदान पांचवे संस्करण में प्राप्त हुआ मैं इस कृपा का आभारी रहूंगा।

लेखक–

मकर संक्रान्ति
१३ जनवरी १९७७ ई०
गुरुवार

ठाकुर लछमनसिंह गौर ओरछा
तहसील–निवाड़ी
जिला––टीकमगढ़
(म० प्र०)

सम्मतियां

श्रीयुत लक्ष्मणसिंह जी गौर अभिरचित ओरछा का इतिहास निश्चय ही न केवल बुन्देलखण्ड के इतिहास को एक नया मोड़ देकर जीर्ण मान्यताओं को निराकृत करता है । प्रत्युत मुगल कालीन भारतीय इतिहास के माप दण्ड को ही नवीन संस्करण प्रदान कर सकता है । इतिहास शब्द की उत्पत्ति "इति--ह–आस, "अर्थात् ऐसा हुआ था के संदर्भ में लेखक ने मनसावाचा कर्मणा पूर्ण न्याय किया है ।

लेखक ने किसी भ्रम, अथवा कल्पनाओं का सम्बल न लेकर उपलब्ध विश्वस्त हस्तलेखों के अनुसार इतिहास की इमारत खड़ी कर भावी पाढ़ी के लिये संविधान तैयार किया है ।

लेखक का सुमहान प्रयत्न अब भी गहरी पर्तों में दबे हुये इतिहास के ध्वंसावशेषों को निकालकर भव्य प्रासाद का निर्माण करने का है । जो कि अत्यन्त जटिल किन्तु श्लाघ्य है । जिन परिस्थितियों में एक पर्ण कुटी में रहने वाले कलाकार ने इस सृष्टि का निर्माण किया वह शब्दों द्वारा व्यक्त करना सम्भव नहीं ।

मुझे आशा है इस सुमहान प्रयत्न से भारतीय इतिहास को उन्मेष तथा भारतीय पीढ़ी को नवीन सन्देश मिलेगा ।

डॉ० विष्णुदेव शर्मा
कर्मक्षेत्र–कालेज
मेम्बर–बोर्ड ऑफ स्टडीज
कानपुर–विश्वविद्यालय

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ठा० श्री लछमनसिंह ओरछा राज्य के समय से ही मन्दिर श्री रामराजा ओरछा में सेवारत हैं। यह मात्र शासकीय सेवक ही नहीं वरन धर्मनिष्ठ व्यक्ति हैं। इन्होंने प्रायः अपना सम्पूर्ण जीवन ही मन्दिर की सेवा में समर्पित कर दिया है। सम्पूर्ण की इस भावना से अभिभूत होने के कारण ही यह आर्थिक अभावों की चिन्ता किये बिना अपना पूरा समय मन्दिर की सेवा हेतु समर्पित किये हुये हैं।

ठा० श्री लछमनसिंह उन इने गिने व्यक्तियों में से है जिन्हें मन्दिर श्री रामराजा ओरछा एव ओरछा से सम्बन्धित इतिहास का अच्छा ज्ञान है। इस पुस्तक के माध्यम से उन्होंने इसे लिपि बद्ध करने का प्रयास किया है। आशा है पाठकगण इस प्रामाणिक जानकारी से अपनी जिज्ञासा एवं शंकाओं का समाधान कर सकेंगे।

मैं उनके इस सत्प्रयास की सफलता की कामना करता हूं।

प्रेमनाथसिंह

(बी एस. सी. एल. एल. बी.)

डिप्टी कलक्टर छिन्दबाड़ा म. प्र.

दो शब्द

श्री लछमणसिंह यद्यपि ओरछा मन्दिर के कर्मचारी हैं, किन्तु उनकी भगवत सेवा यथार्थ में आज के संघर्षमय जीवन में एक सही सेवक का उदाहरण प्रस्तुत करती है। वे अपने अनुभव एवं ज्ञान को जो ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है, प्रत्येक श्रद्धालु जन तक इस पुस्तक के जरिये पहुँचाकर उसे लाभान्वित करते हैं।

पुस्तक में भगवान रामराजा की महिमा साधारण व्यक्तियों तक पहुंचाकर धार्मिक भावना की भित्ति उत्तरोत्तर बढ़ रही है।

मेरी शुभकामनायें उनके इस कार्य की सफलता के लिये उनके साथ साथ सदैव रहेगी।

रामेश्वर प्रसाद मिश्र

डिप्टी कलक्टर पन्ना (म० प्र०)

दिनांक २०-३-७४

ठा० लक्ष्मन सिंह, द्वारा लिखित ओड़छा का विषयक पुस्तिकय का अवलोकन किया। पुस्तिका इस दर्शनीय स्थल का समुचित परिचय कराती है

ओड़छा नगर का इतिहास बहुत गौरव पूर्ण है। नगर के समीप सतत रूप से प्रवाहित होने वाली वेतवा का वर्णन देश की पवित्र नदियों में से है जिनका स्मरण किया जाता है।

'गंगा च क्षिप्रा, यमुना सरस्वती
गोदावरी वेत्रवती च नर्मदा

हिन्दी साहित्य के देदीव्यपान न क्षत्र केशवदास की यह जन्म भूमि है जिनके द्वारा राम चन्द्रिका' जैसा ग्रन्थ रचा गया। रानी कुंवर गणेश द्वारा स्थापित राम राजा की मूर्ति सदियों से भक्ति, सद्भाव का केन्द्र विन्दु है। यहां स्थित जहांगीर महल, रानी महल, चतुर्भुज मन्दिर, लक्ष्मी नारायण मन्दिर एवं सर्वोपरि राम राजा मन्दिर ओड़छा के राज परिवार के वैभव, एवं सुरुचि के शास्वत प्रतीक हैं। आज भी ओड़छा का ररिपार्श्व प्रगति की की अनेक संभावनायें समेटे हुये हैं।

श्री ठा० लक्ष्मन सहिं समर्पित भाव से राम राजा की सेवा में लगभग ३२ वर्ष से लगे हुये हैं। हम उनकी भावनाओं की बहुत कद्र करते हैं एव उनके द्वारा लिखित पुस्तिकाओं के अवलोकम की नम्रता पूर्वक अनुशंशा करते है।

हरि प्रपन्न त्रिपाठी
तहसीलदार-निवाड़ी
एवं प्रबन्धक राम राजा मंदिर
ओरछा

समर्पण

श्री रामराजा भगवान ओरछा की विशेष अनुकम्पा
एवं परमपूज्य पाद
श्री गुरू जी श्री श्री १००८ श्री रामभुवन दास जी स्वर्गीय महान्त
ओरछा मढ़ोर बनारस के चरणप्रसाद से निमित्त मात्रदास
का लघु प्रयास गुरू जी के चरणों में सादर समर्पित
जिनकी सतत प्रेरणा का
फल यह
कृति

छटवाँ संस्करण

मकर संक्रान्ति १३ जनवरी सन् १९७७ ई०
(वि० सं० २०३३-३४)

लेखक :

डा० लक्ष्मनसिंह गौर

ओरछा
जिला-टीकमगढ़
(म० प्र०)

ओरछा में मन्दिर श्री रामराजा के दर्शन करने का समय

श्री रामराजा सरकार ओरछा मन्दिर के दर्शनार्थ हेतु समय सारिणी

गर्मी बरसात मौसम ८ माह तक फागुन से क्वार तक	जाड़े के मौसम ४ माह तक कार्तिक से माघ तक
सुबह आरती ८ बजे	सुबह आरती ९ बजे
राज भोग चिक ११ बजे	राजभोग चिक १२॥ बजे
आरती राजभोग १२॥ बजे	आरती राजभोग १ बजे
शाम की आरती ८ बजे	शाम की आरती ७ बजे
व्यारी की चिक १० बजे	व्यारी की चिक ९ बजे
व्यारी की आरती १०॥ बजे	आरती व्यारी ९॥ बजे

श्री महारानी गनेश कुवरि ओरछा नरेश मधुकर शाह की रानी भक्ति उपासना के अनुसार पूर्व से समय सारिणी ऊपर लिखे अनुसार मन्दिर खुलता है इसके अतिरिक्त समय में मन्दिर नहीं खुलता है समय सारिणी पर दर्शन होते हैं। पुराना नियम है जो वर्तमान समय में हैं।

ओरछा का इतिहास



लेखक व प्रकाशक—

ठाकुर लछमनसिंह गौर

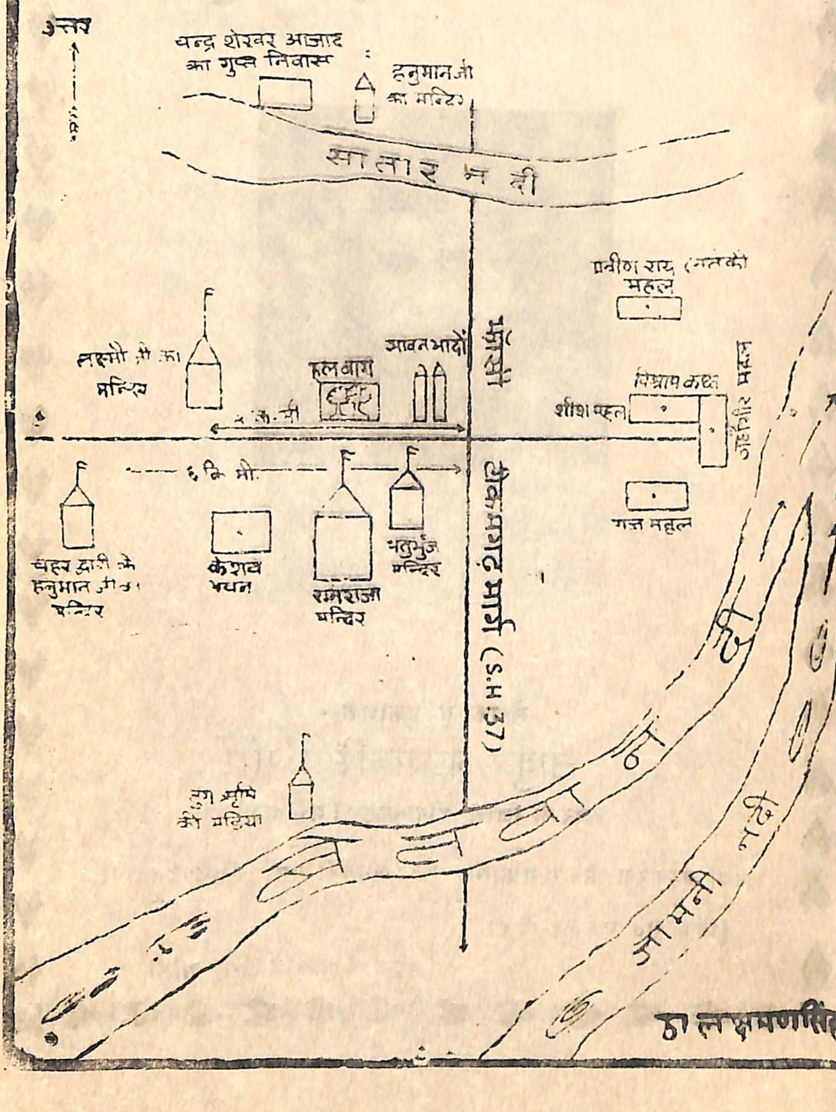
ओरछा जिला टीकमगढ़ (म० प्र०)

छटवाँ संस्करण मकर संक्रान्ति १३ जनवरी सन् १६७७ ई०

(वि० स० २०३३–३४)

मुद्रक – आलोक प्रेस, झाँसी

ओरछा के दर्शनीय स्थल



भूमिका

ओरछा के दर्शनीय स्थलों का परिचय

१—जन जन के आराध्य श्री रामराजा भगवान मन्दिर ओरछा।

२ – श्री चतुर्भुज भगवान का विशाल मन्दिर ओरछा।

३ – स्थापत्य कला का अद्भुत प्रतीक श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर ओरछा

४ —आचार्य कवीन्द्र केशव भवन ओरछा।

५—देवतुल्य श्री दिमान हरदौल लाला का स्मारक स्थल विषपान–स्थान।

६ – इतिहास प्रसिद्ध जहाँगीर महल शीशमहल राजमहल ओरछा।

७ – बगीचा फूल बाग व चन्दन कटोरा फब्बारे अठखम्भा श्री हरदौल जू का विश्राम-गृह स्थल स्थिति बगीचा फूलबाग ओरछा।

८ – गगन चुम्बी स्तम्भ सावन भादों।

९—स्वतन्त्रता के अमर सेनानी चन्द्रशेखर आजाद का स्थल-प्रवास।

१०—महर्षि तुङ्ग की तपो भूमि तुङ्गारण्य कञ्चना घाट।

११ —पुनीत सलिला वेत्रवती।

१२ – प्रसिद्ध कवियित्री रायप्रबीन का निवास–भवन आनन्द मण्डल मालबाग। इन्द्र भवन (किला ओरछा)

१३—राष्ट्रपिता बापू की भस्मी विर्सजन तट। कंचना घाट ओरछा पर है।

१४—श्री हरीराम व्यास की हवेली, श्री जुगलकिशोर मन्दिर व्यासपुरा।

—

ओरछा की महिमा

सम्वत १६३१ वि० चैत्र शुक्ल ९ भौमवार पुष्य नक्षत्र में श्री रामराजा जू भगवान को श्री अयोध्या जी से ओरछा में श्री महारानी गणेश कुवर ने जो श्री मधुकरशाह महाराजा ओरछा की रानी थी भक्ति

तपस्या से साक्षात् रूप में प्रकट करके अपनी राजधानी ओरछा में बिराजमान कराया तब से तीर्थ स्थल है ।

अथवा

दोहा—मधुकुरशाह नरेश की, रानी कुँवर गनेश ।
अवधपुरी सं ओरछा, लाई अवध नरेश ॥

सन् १५७४ ई० अप्रेल मङ्गलवार को आगमन ओरछा से हुआ है । सं० १६३१ वि०

(सन् १९७७ ई०) वर्तमान सं० २०३३-३४ तक ४०३ साल आगमन हुए हो गए ।

* श्री विजयराघव सरकार जयति *

सर्वव्यापक राम के दो निवास हैं खास ।
दिवस ओरछा रहत है रैन अयोध्या वास ॥

बुन्देला महाराजाओं की प्राचीन राज्य सीमाएँ

बुन्देलखण्ड की सीमाएँ—इत जमुना उत नर्वदा, इत चम्बल उत टोंस, मानी गई है यद्यपि आज कल इस भू-भाग के कितने ही शासक हो गये किन्तु किसी समय यह सब प्रदेश ओरछा राज्य के आधीन था और उसकी भी यही सीमाएँ मानी जाती थी । आजकल चम्बल और नर्वदा के आस पास के प्रान्तों को बुन्देलखण्ड में मानने और न मानने में मत भेद हो सकता है किन्तु ऐतिहास दृष्टि से बुन्देलखण्ड की उपरिलिखित सीमाएँ ही मानना उचित जान पड़ता है । इतने भूभाग की भाषा भी प्रायः एक ही है उसमें कहीं ही थोड़ा सा हेरफेर हो गया है किन्तु विशेष रूपान्तर नहीं है अतः इन सब बातों को भली प्रकार विचार करके बुन्देलखण्ड की निम्नलिखित सीमाएँ मानी गई है:—

उत्तर में यमुना नदी—दक्षिण में नर्वदा नदी पूर्व में टोंस (सोने) नदी—पश्चिम में चम्बल नदी अतः यह सब प्रदेश जो इन चार नदियों के बीच आया है बुन्देलखण्ड माना गया है ।

उसमें सम्मिलित प्रान्तों और राज्यों की तालिका इस प्रकार है ।

(१) झांसी, जालौन, बाँदा, हमीरपुर, सागर, दमोह, जबलपुर
मध्य-प्रदेश
मिर्जापुर इलाहाबाद

(२) भिण्ड ग्वालियर गिर्द नरवर ईसागढ़ भिलसा

(३) रीवाँ रघुराज नगर त्योंथर मऊगञ्ज व्योहारी बांधवगढ़ बरौंधा नागौदा मैहर सुहावलकोठी जसो पालदेव पहरा तरात भैसौंदा कामता रजौला **बघेलखण्ड**

(४) आलमपुर इन्दौर

(५) विराभिया रायसेन सांची राजगढ़ नरसिंहगढ़ कुरबाई पठारी मकसूदनगढ़ मुहम्मदगढ बासौदा

(६) ओरछा दतिया पन्ना अजयगढ़ चरखारी बिजावर छतपुर समथर बावनी कदौरा-सरीला ढुरबई-बिजना-टोड़ीफतहपुर बकापहाड़ी जिगनी बिलहरी नैगुवां रिबई आदि बुन्देलखण्ड के देशी राज्यों और जागीरों से ।

ऐतिहासिक तत्वान्वेषियों ने बुन्देलखण्ड में ओरछा को एक महत्वपूर्ण भू-भाग माना है । वीर और कवि प्रसविनी ओरछा की बन्दनीय भूमि को भी निःसंकोच उसका सुदृढ़-उन्नक-बिशाल वक्षस्थल तथा सबमें नवस्फूर्ति संचालन करने वाला हृदय मानते हैं । वीरश्रेष्ठ कहलाने वाले राजपूताने की भूमि यदि वीरों

महत्ता के लिए प्रसिद्ध है तो ओरछा की भूमि भी वीरों और कवियों दोनों ही को उत्पन्न करने की दृष्टि से अद्वितीय स्थान रखती है।

श्लोक

नरत्व दुर्लभ लोके विद्यातत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभ तत्र–शक्ति स्तत्र सुर्लभा ॥

वह देश वह प्रान्त जिसमें एक भी वीर महान पुरुष व कवि उत्पन्न हो जाता है। धन्य माना जाता है। हर्ष है कि कवि और बीर–प्रसविनी इस ओरछा की भूमि को एक दो नहीं अनेक यशस्वी दानी वीरशार्दूल महाराजाओं अच्छे अच्छे कवियों को उत्पन्न करने का सौभाग्य प्राप्त है।

वीर मित्रोदय नामक बृहद संस्कृत विश्व कोष के रचयिता मित्र मिश्र ओरछा के निवासी थे जो कवीन्द्र केशवदास मिश्र के पूर्वज थे। आपने पांच लाख श्लोकों में वीर मित्रौदय नामक ग्रन्थ की रचना स० १६०० वि० के लगभग की है वीरसिंह देव महाराज ओरछा शासन काल में लिखा है। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति किसी प्रकार जर्मनी पहुँच गई वह वहां पर प्रकाशित हुई। चोखम्भा बनारस से इसका कुछ अश प्राय ७० और ७५ भागों में प्रकाशित हो सकता है और अब तक केवल १३८४१० श्लोकों ही का शोध मिल सका है।

प्रबोध चन्द्रोदय के रचयिता कृष्ण मिश्र ओरछा वाले हैं। शीघ्र बोध के कर्त्ता प० काशीनाथ मिश्र, पं० कृष्णदत्त जी मिश्र के पुत्र तथा कवीन्द्र केशवदास मिश्र, के पूज्य पिता जी ओरछा वाले थे। शीघ्रबोध का आपके समय में प्रचार हुआ था।

(१) स्व० पं० काशीनाथ जी मिश्र चंदेरी द्वारा रचित बुन्देलखण्ड का साङ्गोपोङ्ग विस्तृत इतिहास में ओरछा का इतिहास लिखा है।

(२) श्री० दी० प्रतिपालसिंह पहरा छतरपुर रचित (छतरपुर) बुन्देलखण्ड का इतिहास प्रथम भाग से लगायत तेरह भाग लिखे हैं ओरछा का सविस्तार इतिहास प्रथम भाग में लिखा है। ओरछा राज्य बुन्देलखण्ड में शिरामणि माना गया है।

बुन्देला क्षत्रिय ही गहरवार क्षत्री हैं निम्न प्रकार प्रमाण हैं। सविस्तार विवरण इस प्रकार है।

१—अर्ली हिस्ट्री औफ इन्डिया पृष्ठ ४२३।
२—इम्पीरियल गजेटियर औफ इन्डिया भाग २ पृष्ठ ३१४
३—हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता पृष्ठ ४८८।
४—भारतीय अनुशील ग्रन्थ विभाग ७ पृष्ठ २९।
५—भारत का इतिहास व अर्बाचीन पृष्ठ ४७०।
६—इलाहाबाद गजेटियर पृष्ठ ९०
७—ओल्ड गजेटियर ओऊ मिर्जापुर पृष्ठ ११८।
८—रुद्र क्षत्रिय प्रकाश पृष्ठ २८।
९—क्षत्रिय जाति सूचि तृतीय वृत्त पृष्ठ ३६।
१०—क्षात्रिधर्म सन्देश वर्ष २ जुलाई सन् १९४३ पृष्ठ २४।
११—जातिय भास्कर पृष्ठ २२३ तथा क्षत्रिय वर्तमान तृतीय पृष्ठ न० १०२ पर लिखा।

छत्तीस वाले क्षत्रियों की चार शाखायें विभाजित हैं ।

सूर्य वंश [१] रवि के दस—गहरवार, बैस, गौर, राठौर, शिसौदिया, बड़ उज्जल, कछवाहे, रक्षक, सेंगर, सिरनेत ।

चन्द्र वंश [२] चन्द्र के दस....जांदो, तेवर, चन्देल, पांडु, वघेल, सौम, बंशी, भाटी, कृष्णातिल; नदवानी, झाला ।

मुनि वंश [३] ऋषियों के बारह-शिव बन्शी, बणदिया, दीखत, नागबंशी, बोच्छिल, विशेन, काफुन, सकेत, भ्रगुवंशी, गर्गवंशी, कदम्ब, धाकरे ।

अग्नि वंश[४] अग्नि के चार परिहार, चौहान, सोलकी, प्रमार, भारतवर्ष, केपुरातत्व वेत्ताओं ने क्षत्रिय जाति के तीन वंश वाले तेरह वाले और छत्तीस कुल प्रधान माने हैं शेष सब इन्हीं की शाखा प्रशाखायें हैं । छत्तीस विवरण इस प्रकार है:–

क्षत्रियों का परिचय

नाम क्षत्रिय	गोत्र	वंश	परिचय स्थान
गहरवार	कस्यव	सूर्य	माटा, हरदोई, बांदा, उन्नाव, झांसी जिलो में रहते हैं।
करोक्ष	कस्यव	सूर्य	मादोन कोट में रहते हैं।
बुन्देला	कस्यव	सूर्य	गहरवार कीसाख बुन्देलखण्ड में रहते हैं।
काटरन	,,	,,	काठिया बाड़ में रहते है।
लिच्चच्छली	,,	,,	प्राचीन राठौर वंश
पाव वंश	,,	,,	यह वंश लोप हो गया है।
दाहिया	,,	,,	राठौर की साखमारबाड़ में रहते हैं।
जेटवा	,,	,,	राजा घुमली
चौपट सम्भ	,,	,,	जौनपुर में रहते है
कासिब	,,	,,	सहारनपुर में रहते है
सिंदेल	,,	,,	आजमगढ़ जिले में रहते हैं
तरकट	,,	,,	आगरा व मथुरा में रहते हैं
खाती	,,	,,	दीखतों की खास झांसी जिला में रहते हैं
दुर्ग वंशी	,,	,,	जोधपुर राजबाड़ा में रहते हैं
विलकरयां	,,	,,	प्रतापगढ़ में रहते हैं
डूंगरा	,,	,,	काश्मीर बलिया महोनी में
रक्षक	,,	,,	रीवा राज्य व बुंदेलखण्ड में रहते हैं

नाम क्षत्रिय	गोत्र	वंश	परिचय स्थान
दीखत	कस्वप	सूर्य	उन्नाव व झांसी जिले में रहते हैं।
निम बंशी	,,	,,	संयुक्त प्रान्त में रहते हैं।
लांगर	,,	,,	बुन्देलखण्ड झांसी जिला में रहते हैं।
हाला	,,	,,	मालवा प्रान्त में रहते हैं।
झाला	,,	चन्द्र	धारा मेवाड़ में रहते हैं।
जसवार	,,	,,	पंजाब मिर्जापुर में रहते हैं।
जायस	,,	,,	बरेली जिला में रहते हैं।
चारदेव	,,	वर्ष	द्वारकापुरी में रहते हैं।
गौहिल	वैजबा पाइन्न	भृगुवंश	काटिया बाढ़ में रहते हैं।
गहलौत	,,	सूर्य	मथुरा व कानपुर जिलों में रहते हैं।
शिसोदिया	,,	,,	महाराष्ट्र जयपुर उदयपुर राज्यों में रहते हैं।
अहिढ़िया	,,	,,	आजमगढ़ जिला में रहते हैं।
उदावत	,,	,,	गहलौत की खास आजमगढ़ जिला में रहते हैं।
जधेरे	भारद्वाज	अग्नि वंश	चौहान की साख शिवपुरी जिला व बुन्देलखण्ड में रहते हैं।
गौर	,,	सूर्य	कानपूर झांसी दतिया टीकमगढ़ जिलों में रहते हैं।
वैस	,,	,,	उन्नाव रायबरेली झांसी शिवपुरी जिलों में रहते है

नाम क्षत्रिय	गोत्र	वंश	परिचय स्थान
पायक	भारद्वाज	सूर्य	वैसों की साख झाँसी टीकमगढ़ उन्नाव जिला वांदा में रहते हैं
सिरनेत	,,	,,	गाजीपुर गोरखपुर जिलों में रहते है
सिकरवार	,,	,,	वड़ उजवल साखा गुजरात ग्वालियर मुरैना आगरा जिलों में रहते हैं।
चौल वंश	,,	,,	मद्रास में रहते हैं
पल्लव	,,	,,	दक्षिण में रहते हैं
बल्ला	,,	,,	काठियाबाड़ में रहते हैं।
सुकेत	,,	,,	गौरों की साख पंजाब में रहते हैं
उनार्य	,,	,,	,, झासी जिला में रहते हैं
जरैया	,,	,,	,, मध्यभारत शिवपुरी जिला में रहते हैं
पिपरैया	,,	,,	झाँसी जिला में रहतें हैं
चन्दोसिया	,,	,,	वैसों की साख सुल्तानपुर में रहते हैं
धाकरे	,,	,,	आगरा जिला में रहते हैं
गोतमिया	,,	,,	बड़उज्जवल की साख बलिया जिले में रहते हैं
माले सुल्तान	,,	,,	वैसों की साँख रायबरेली लखनऊ में रहते हैं
अमेंठिया	,,	,,	गौरों की साख लखनऊ अमोठी में रहते हैं
मनबग	,,	,,	जोधपुर में रहते हैं
भ्रगु वंश	,,	चन्द्र	बनारस बस्ती में रहते हैं

नाम क्षत्रिय	गोत्र	वंश	परिचय स्थान
नाहर	भारद्वाज	चन्द्र	बघेलों की साख आजमगढ़ जिला में रहतें हैं
बघेल	,,	,,	बघेलखण्ड रीवा राज्य में रहते हैं
नदवानी	,,	,,	बुन्देलखण्ड झाँसी जिला में रहते हैं
सोलंकी	,,	अग्नि	राजपूताना में रहते हैं
हाड़ा	,,	,,	कोटा बूंदी राज्य में रहते हैं
टड़ैया	,,	,,	सोलकी की साख दतिया टीकमगढ़ जिलों में रहते हैं
खीची	,,	,,	चौहान की साख इटावा, ग्वालियर, नोंगांव, बराटा में रहते हैं
चौहान	,,	,,	सब जगह एक दो कुटुम्ब रहते हैं
प्रमार	वशिष्ठ	,,	मालवा, जोधपुर, राजस्थान, धौलपुर जिलों में रहते हैं
निकुम्भ	,,	सूर्य	गोरखपुर, आजमगढ़, हरदोई, जोनपुर जिलों में रहते हैं।
चंवड़रा	,,	अग्नि	चौहान की साख मालवा व दतिया जिला में रहते हैं।
कटगरिया	,,	चन्द्र	झाँसी दतिया मालवा जिलों में रहते हैं।
तीन देव	,,	सूर्य	द्वारिकापुरी के आस पास बसते हैं
रघुवंशी	,,	,,	हमीरपुर जिला में रहते हैं।
सेंगर	गौतम	ब्र० क्षत्रिय	जालौन जिला में रहते हैं।
गौतम	,,	सूर्य	राज अरगल
बरादिया	,,	ब्र० क्षत्रिय	सेंगरों की साखा पूर्वी बँगाल में रहते हैं।
खरबांच	,,	सूर्य	कछवाहों की साख बुलन्दशहर तथा झाँसी जिला में रहते हैं।

नाम क्षत्रिय	गोत्र	वंश	परिचय स्थान
विशेन	ब्रह्म	ब्र० क्षत्रिय	गोरखपुर गोंड़ा प्रतापगढ़ जिलों में रहते हैं।
मौरी	,,	सूर्य	मथुरा आगरा जिलों में रहते हैं।
ऊदमनिया	,,	ब्र० क्षत्रिय	आजमगढ़ गोरख बाड़ा में रहते हैं
भदौरिया	,,	अग्नि वंश	चौहान की साख ग्वालियर जिला में भिन्ड जिला में रहतें हैं।
देवड़ा	,,	,,	राजपूताना सिरोही राज्य में रहते हैं।
संभरी	,,	,,	चौहान की साख पंजाब में रहतें हैं।
बच्छगौत्री	,,	,,	सुल्तानपुर प्रतापगढ़ में रहते हैं।
पतैया	,,	,,	ग्वालियर जिला में रहते हैं।
रजलाम	,,	,,	बुन्देलखण्ड में रहते हैं।
जांगड़ा	,,	चन्द्र वंशी	बुलन्द शहर में रहते हैं।
राज कोमार	,,	,,	सुल्तानपुर जिलों में रहते हैं।
टांक	सोनक	नया वंश	मैंनपुरी पंजाब में रहते हैं।
गर्ग वंशी गर्ग		ब्र० क्षत्रिय	नरसिहपुर सुल्तानपुर में रहते हैं।
दहिया	,,	,,	काठियाबाढ़ में रहते हैं।
सरपैगा	,,	चन्द्र	उत्तरा खण्ड पूरब में पाये जातें हैं
बाकाटक	विष्णु वोधक	सूर्य	पता नहीं
शिव वंश क्षत्रिय		ब्र० क्षत्रिय	यह वंश लोप हो गया है।
सिसरवार	,,	सूर्य	बुलन्द शहर में रहते हैं।

नाम	क्षत्रिय गोत्र	वंश	परिचय स्थान
सोमवंशी	क्षत्रिय	चन्द्र	आजमगढ़ प्रतापगढ़ हरदोई झाँसी जिला में रहते हैं।
भाटी	,,	,,	राजपूताने में रहते हैं।
जाड़ेजा	,,	,,	कच्छ गुजरात में रहते हैं।
जादों	,,	,,	अवांगढ़ कोटला आजमगढ़ आगरा जिला में रहते हैं।
बांच्छिद	,,	,,	मथुरा में रहते हैं।
तौलना	,,	,,	राजा वीर नगर
मोखरे	,,	,,	प्राचीन राठौर वंश पता नहीं
पांडु	,,	,,	पता नहीं
सरस्वार	,,	,,	तम्बरों की साखा आगरा जिला में रहते हैं।
छोकर	,,	,,	तम्बरों की साखा आगरा में रहते हैं।
तम्बर	व्याघ्र	,,	भिंड मुरैना ग्वालियर जिलों में रहते हैं।
कटहार	,,	,,	धरमपुरा का राज हरदोई जिला में रहते हैं।
पालीवार	,,	,,	गोरखपुर में रहते हैं।
जैवार	,,	,,	तम्बरों की साख बुलन्द शहर झांसी दतिया जिलों में रहते हैं।

नाम क्षत्रिय	गोत्र	वंश	स्थान परिचय
इन्दौरिया	व्याघ्र	चन्द्र	जालौन व झांसी जिला में रहते हैं।
बीरवार	,,	,,	बलिया गाजीपुर जिला में रहते हैं।
सरगैयां	,,	,,	बुन्देलखण्ड में रहते हैं।
बदेशा	,,	,,	झांसी जिला में रहते हैं।
करचुल	हैहय	,,	कृष्णातिल की साख बलिया फैजाबाद जिला में रहते हैं।
चन्देल	चन्द्रावत	,,	सब जगह पाये जाते हैं।
सिलार	शाकिन	,,	सूरत राजपूताना जिले में पाये जाते हैं।
कौशिक	कौशिक	,,	बलिया जिले में रहते हैं।
बनाफर	परासर	,,	हमीरपुर बांदा जिला में रहते हैं।
पांच देव	,,	सूर्य	द्वारकापुरी के आसपास रहते हैं।
कृष्णातिल	अग्नि	चन्द्र	दतिया जिले में रहते हैं।
परिहार	कौशल	अग्नि	झांसी जालौन आदि सब जगहों में मिलते हैं।
रवी	,,	,,	पंजाब काँगड़ा जलन्धर जिलों में रहते हैं।
नवर	,,	,,	बलरामपुर अवध झांसी जिलों में
सहीया	,,	,,	चौहान की साख इलाहाबाद में रहते हैं।
देव	भार्गव	,,	द्वारकापुरी के आस पास बसते हैं
त देव	नागिम	नागबंश	द्वारकापुरी के आस पास बसते हैं

नाम क्षत्रिय	गोत्र	बंश	स्थान परिचय
जासावत	मानव	सूर्य	कछवाहों की साख, मथुरा आगरा जिलों में रहते हैं।
कोड़ेबाल	,,	,,	लुधयाना जालन्दर जिलों मे रहते हैं।
नदबक	,,	,,	जोंनपुर में रहते हैं।
महोंनी	,,	,,	वलिया व आरा जिलों में रहते हैं।
मौनस	,,	,,	कछवाहों की साख मिर्जापुर मे रहते हैं।
कछवाहे	,,	,,	जोधपुर, बीकानेर, ग्वालियर जालौन जिलों में रहते हैं।
डांगी	,,	,,	जोधपुर, बीकानेर, कन्नौज
राठौर	कस्यप	,,	आदि सब जगह पाये जाते हैं।

तेरह शाखा वाले क्षत्रियों का विवरण

(१) जुजघेला (२) लहावत (३) पैजवार (४) जयतेले (५) डेंगर (६) वुरवयांगत (७) वदरेले (८) गुरमार (९) रिछारिया (१०) डहिया (११) तौर (१२) खरे बुन्देला (१३) खरे प्रमार

क्षत्रियों की शाखा से प्रथम समाजवादी तीन वाले क्षत्रियों का विवरण

(१) प्रमार (२) धंधेरे (३) बुन्देला यह सब छत्तीस शाखा वाले क्षत्रियों में शामिल थे बुन्देला क्षत्री माने जाते हैं।

प्राक्कथन

ओरछा के दर्शनीय स्थलों की जानकारी

१ **श्री १०८ श्रीरामराजा का मन्दिरः**—श्रीरामराजा मन्दिर ओरछा को श्रीमहाराजा भारतीचन्द्र ने सं० १५८९ वि० में बनवाया। इसको नौ चौकिया कहते हैं। सं० १६३१ वि० में श्रीरामराजा भगवान इस महल [किले] में विराजमान हुए। उसी समय से मन्दिर कहलाता है। पूर्व में महल था।

२ **श्री चतुर्भुज भगवान का विशाल मन्दिरः**—इस मन्दिर को सं० १६१५ वि० से १६३० वि० तक श्रीमधुकर शाह नरेश ने बनबाया था जो श्रीरामराजा भगवान के लिए मन्दिर बना था। सं० १६३१ वि० में श्रीरामराजा भगवान रानी के महल में विराजमान हो गये फिर उसमें चतुर्भुज भगवान की स्थापना हुई। सं० १६६३ वि० से सं १६७५ वि० तक वीरसिंह देव [प्रथम] ने ठीक ढंग से बनवाया था। सं० १६६३ वि० में पन्ना के राजा श्रीअमरेश ने सवा मन सोने का कलश इस पर लगवाया था। ओरछा नरेश वीरसिंह देव ने सवामन सोने का कलश श्री जुगलकिशोर जू मन्दिर पन्ना में लगवाया था। अगस्त सन् १९७० ई० से नबम्बर सन् १९७० ई० तक क्रमशः चोरी होती रही और स्वर्ण कलस चोरी चला गया है।

यह अन्य मन्दिरों से ऊंचा भी है। स्थापत्य की दृष्टि से इसका बड़ा हत्व है। पन्ना स्टेट गजेटियर पृष्ठ १७४ पर लिखा है स्थापत्य कलाकी ष्टि से चतुर्भुज मन्दिर का एक विशिष्ट महत्व है। वह यह कि बुन्देलखण्ड ापत्य कला का वह एक मात्रा सजीव उदाहरण है। इस बुन्देला स्थापत्य ला में वातायन और गुम्बद नामक शैली में नई कड़ी के योग हैं।

३ **श्रीलक्ष्मी नारायण का मन्दिरः**—ओरछा के उत्तरी पश्चमी कोने पर श्री रामराजा मन्दिर के पीछे श्री लक्ष्मीनारायण (लक्ष्मी जी) का मन्दिर है जिसे सं० १६७५ वि० के लगभग महाराज वीरसिंह देव (प्रथम) ने बनवाया था। सन् १८५७ ई० की झाँसी के गदर की लड़ाई के चित्र किला दतिया और किला कुण्डार के चित्र बनवाये हैं मन्दिर की अपनी विशेषता यह है कि बाहर से देखने पर यह मन्दिर त्रिकोंण दिखाई देता है जबकि भीतर चौकोर है।

देवताओं की आकृतियां बहुत ही सुन्दर और स्वाभाविक हैं खिलाड़ियों की रूप मुद्राएं ध्यान आकर्षित किये बिना नहीं रहती। प्राय खिलाड़ियों को आकृतियां मुसलमानी हैं। चित्र प्राचीन हैं उनके रचन कालका निर्णय करना कठिन है। इन चित्रों के साथ जो जमीन को भरने के लिए बेल-बूटे बने हुए हैं विशेष सुन्दर हैं। पास ही दूसरे कमरे की छत से युवतियां बराबर खड़ी हुई विपरीत दिशाओं को मुख किये हुए तोतों को चुगा रही हैं। युवतियों की वेश-भूषा बुन्देलखण्डी है। उनकी पोशाक घांघरा और लुंगरी हैं। नाकों में नथ स्पष्ट हैं।

इस बेल के नीचे के चित्र महत्वपूर्ण हैं। घोड़े और हाथियों पर चलती हुई सवारों की पक्तियां दिखलायी गई हैं। हाथी पर छतरीदार होदा है होदे में कोई महाराज साहब अपनी विशेष आनवान से विराज मान हैं पीछे बल्लम और झडियां लिये हुये सवारों की पंक्तियां हैं। सवारों में कुछ मुसलमान भी हैं घोड़े और हाथियों की सजावट देखते ही बनती है सवारों की पोषाक मुगलकालीन हैं। इस पक्ति के नीचे दाहिने में दो-दो युवतियां मयूरों को लिये हुये खड़ी अंकित की गई हैं। बगाबरी के दालान में ऊपर छत में बेल-बूटे बनाये गये हैं और नीचे एक पक्ति श्री कृष्ण और गोपियों के बिहार की है। नीचे कमरे में भगवान के चौबीस अवतारों के चित्र अंकित किये गये हैं। इन चित्रों की शैली कुछ विशेष प्रौढ़ है। रंग की जमावट बिल्कुल समतल है। अगों के अनुपात शुद्ध हैं। हल्की हल्की

शेडिंग का भी प्रयोग है। शैली बहुत कुछ अजन्ता की शैली से मिलती जुलती है। ये चित्र किले के सम्पूर्ण चित्रों के समय बने होंगे। श्री लक्ष्मी नारायण के मन्दिर में प्रवेश द्वारा की दालान में कुछ आरायश के चित्र हैं। एक युवती बाल सम्भाल रही है। युवती की आंखें विशाल और भौहें धनुषाकार हैं। युवती का पहिनावा साड़ी और अंगिया है। कानों में बड़े बड़े कर्णफूल हैं। दूसरे चित्र श्री कृष्ण के हैं वे भी बहुत सुन्दर हैं।

मन्दिर के चारों ओर दालाने हैं और प्रत्येक दालान में चित्र अंकित हैं। ये चित्र दर्शनीय हैं। यद्यपि ये बहुत प्राचीन नहीं तब भी अपना ऐतिहासिक महत्व रखते हैं। इनके रंग ऐसे चमक रहे हैं जैसे आज ही प्रयुक्त किये गये हों।

प्रवेश द्वार से आगे दाहिनी ओर की छत में झांसी का किला अङ्कित है। सन् १८५७ ई० में श्री महारानी लक्ष्मीबाई का युद्ध अंग्रेजों से होना दर्शाया है। किले के अन्दर श्री महारानी लक्ष्मीबाई विराजमान युद्ध देख रही है और कोई सामन्त झुक कर मुजरा करता दिखाई देता है सामने घोडा खड़ा है सामने बड़ी बड़ा तोपें अंग्रेजी सेना के ऊपर चल रही हैं। किले की चहर दीवारी पर सिपाही चढ़े हुए हैं और तोपें चला रहे हैं। किले पर अंग्रेजों का हमला हो रहा है पहिली कतार में अंग्रेज खड़े तोपें चला रहे हैं तोपों के पीछे अंग्रेजी सेनायें हैं जो कुल चार कतारों में है अंग्रेजी सेनाओं की बेशभूषा चाल ढाल देखने योग्य है यह झाँसी के किले के आक्रमण का चित्र है। मराठों की सेनाए बड़े बेग से अंग्रेजी सेनाओं पर साहस पूर्वक आक्रमण कर रही है बगल में बानपुर चंदेरी का किला बना है बानपुर चन्देरी के राजा मर्दनसिंह अपनी सेना लेकर अंग्रेजों पर आक्रमण कर रहे हैं। इसके सामने टीकमगढ़ का किला—कुण्ड़ार का किला का चित्र अङ्कित है। अंग्रेरजी सेनाओं के चित्र देखने योग्य हैं उनके तम्बू लगे हैं आसपास में देशी दुकानें भी खुली हैं जिसमें औरतें बैठी कुछ बेच

रही हैं तम्बू में एक जगह बैठे हुए दो अंग्रेज शराब पी रहे हैं। बाहर तम्बू के वैश्या का नाच गान हो रहा है कोई अंग्रेजी अफसर बैठा वैश्या कानाच देख रहा है नाचने का दृश्य बहुत ही सुन्दर है तबलची और सारङ्गी वाले अपनी कला अलग दिखा रहे हैं वैश्याओं की पोशाक बुन्देलखण्डी है उनकी भाव भङ्गी स्वाभाविकता अति प्रशंसनीय है।

मन्दिर के ठीक पीछे वाली दालान में किला दतिया के चित्र बने हुए हैं दशहरा के समैया का दृश्य है किला के अन्दर भैसा का पूजन महाराजा दतिया कर रहे हैं भैसा का बलिदान करने को महाराजा वल्लम का प्रहार कर रहे हैं भैसा भागते चले जा रहे हैं पीछे से घुड़सवार भैसा पर भाले प्रहार कर रहे हैं सामने दो भैड़ें (मैड़े) कुश्ती लड़ रहे हैं दतिया के दोनों किलों से दशहरा की सवारी फौजें निकलती हुई चित्रों में अङ्कित है। इसके पीछे वाली कतार में शिकार के दृश्य अङ्कित किए गये हैं महाराजा दतिया हाथी पर सवार हैं शेर ने आक्रमण कर दिया राजा शेर को भाले से मार रहे हैं राजा के पीछे घुड़सवार चले जा रहे कुछ अंग्रेजी सिपाही भी है सामने चुगल चिड़िया का चित्र है अपने पजों में चुगल चिड़िया हाथी पकड़े हुए आकाश में उड़ रही है वर्तमान में दतिया के महाराजा गोविन्दसिंह ने इस चुगल चिड़िया को अफ्रीका के जङ्गल में मारा था उसका मस्तक इस समय भी किला दतिया में सुरक्षित है सामने कुछ रामायण काल के सुन्दर चित्र बने हैं।

श्री लक्ष्मीनारायन मन्दिर ओरछा की चित्रकारी सम्बत् १९२८ वि० (सन् १८७१ ई०) में महाराजा हम्मीरसिंह ने ठीक तरीका से बनवाई जिसमें धार्मिक काल के चित्र तथा इतिहासिक चित्र बहुत सुन्दर बने है हम्मीर महाराजा सन्तान हीन थे इससे धार्मिक कार्य में बहुत ही ध्यान था उसी समय मन्दिर की मरम्मत तथा दीवालों पर बेलबूटे बनबाये गये थे सम्वत् १९१२ वि० से सं० १९३१ वि० तक चित्रकारी बनवाई।

इस शिकार के दृश्य के नीचे ही फिरगियों की फौज के मार्च का दृश्य चित्रिति किया गया है। आगे—आगे घोड़े पर सवार उनका कोई आफीसर जा रहा है। अफीसर की पोशाक में हैलमिट लम्बा ओवरकोट ब्रीजिस तथा लम्बे बूट हैं। उसके पीछे बैन्ड बजता हुआ जा रहा है। बैन्ड के पीछे सगीन—बन्द सिपाही है। ठीक इसी दृश्य के नीचे किसी देशी राजा की फौज का भी चित्रण है। ऐसा प्रतीत होता है मानों तुलना करने के लिए ये चित्र अंकित किये गये हैं। कला का दोनों कलमों पर विशेष प्रभाव पड़ा है। बुन्देलखण्डी चित्र कला में राजपूत चित्रकला से कुछ ऐसी भिन्नताएं हैं, जिससे उसे प्रथक ही मानना पड़ेगा।

राजपूत कलम में रंग की तथा आउट लाइंस की सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाता था। क्या मजाल कि रेखाएं कहीं मोटी—पतली हो जाये या रंग हलका गहरा हो जाय। शेडिंग काले रंग से प्रायः इतनी हलकी दी जाती थी कि वह नाममात्र को ही रहती थी। स्त्री पुरुष के चेहरे एक बगली ही रहते थे। उन पर प्रायः भावों का अभाव सा रहता था। हर एक अवस्था में एक—सी ही आँख, एक-सी ही मुख-प्रभा देखने को मिलती है। कोमलता अगों में। कहीं भी नाम मात्र की कठोरता देखने को नहीं मिलती। चित्रों के श्रृंगार में राजपूत चित्रकार को आलस्य ही नहीं प्रतीत होता। श्रृगार की एक-एक चीज और चीज के एक-एक अंग को दिखलाने में उतना ही ध्यान देता था, जितना कि चित्र की आँख नाक में। राजपूत चित्रकार इसी सजावट से ही दर्शक को आकर्षित करता है और दर्शक से कहते बनता है, "वाह कितना परिश्रम किया है।"

बुन्देलखण्डी चित्रकार किसी एक विशेष परिणाम की ओर देखता है। चित्र का परिणाम ही उनके लिए प्रधान है। उसकी सजावट गौण। इसी कारण बुन्देलखण्डी चित्रकार अपनी तूलिका को बडी तेजी से चलाता है।

उसे हाथ, पैर धैर्य के साथ बनाने की फुर्सत नहीं। उंगलियों की उलझनों में उलझे ही कौन। हाथ, पैर उंगलियाँ वह इसी लिए बनाता है कि उनके अस्तित्व का आभास–मात्र दे सके। परन्तु इतनी शीघ्रता और उतावली से भी तूलिका चलाने में वह अपना वांछित परिणाम लाने में नहीं चूकता। उसका हाथ इतना सधा और मंजा हुआ दीखता है। वह आधी उंगलियां बनाकर ही छोड़ देता है। रूप रेखा शीघ्रता से खींचता है परन्तु क्या मजाल कि वह अस्वाभाविक हो जाय। जबकि राजपूत चित्रकार प्रायः आँख को कोमल और आधी ही खुली बनाता है। बुन्देलखण्डी चित्रकार का विषय भी वीर और रौद्र-प्रधान मालूम होता है। वह अपने विषय शिकार से ग्रामभूमि तथा नित्य जीवन में होने वाली घटनाओं में विशेष कर चुनता है एक मात्र जनान खाना उसका विषय नहीं है इसी छत की दूसरी ओर भी विचित्र दृश्य अंकित हैं कोई साधुओं का आश्रम दिखाई दे रहा है ऊंचाई पर श्री महादेव जी का मन्दिर है आदमी औरतें पूजन का सामान लिए मन्दिर की तरफ चढ़ते हुए जा रहे हैं नीचे की ओर कोई सरदार किसी औरत को पकड़े हुए खड़ा है सरदार का एक पैर स्त्री की कमर पर है और एक हाथ कन्धे पर है। स्त्री को भगाकर ले जाने की मुद्रा है। इसके पीछे चतुरंगनी सेना है सम्पूर्ण दृश्य कौतूहल जनक है अवश्य ही उसके पीछे कोई ऐतिहासिक घटना है। इसी की बराबरी पर रुकमणी हरण का दृश्य है। एक तरफ टीका की तैयारी है दूसरी ओर श्री कृष्ण भगवान रुकमनी का हरण करके रथ में बिठा कर लिए जा रहे हैं इसके आगे वाली दालान में श्री कृष्ण भगवाल की लीलाओं के भागवत अनुसार सविस्तार चित्र अँकित हैं बीच में कुछ और भी चित्र आ गए हैं एक चित्र में फिरंगी तालाब में मछली मारता हुआ अंकित है इसी की बराबरी पर कुछ पशुओं के शिकार के चित्र सुन्दर बने हैं इस छत की दूसरी ओर किसी राजा के दरबार का चित्र है राजा साहब अपनी सम्पूर्ण सजधज के साथ बैठे हैं सामने पर वैश्या का नृत्य हो रहा है इन्द्रजीतसिंह राजा के दरबार का चित्र

मालूम होता है रायप्रवीन का चित्र अंकित है। तीसरी दालान में कुछ महत्वपूर्ण धार्मिक चित्र हैं।

चौथी दालान में रामलीला के चित्र हैं बालकाण्ड से लगायत उत्तर-काण्ड तक के सविस्तार चित्र हैं श्री लक्ष्मीनारायण जी विराजमान वाली (जग मोहन) दालान में बाल काण्ड अयोध्या काण्ड की लीला शुरू है बीच में अभिसारिका नारियों से बना हाथी का चित्र है गजग्रह की लड़ाई का चित्र है सामने अयोध्या जी का महल बना है दशरथ जी महाराज विश्वा-मित्र द्वारा पुत्रेष्ठ यज्ञ कर रहे हैं। रामजन्म उत्सव, ताड़का सुबाहु बध, अहिल्या उद्धार, धनुष यज्ञ, राम विवाह उत्सव-बनोवास लीला अंकित हैं। उत्तर तरफ की दालान मे केवट सम्वाद-सूपनखा की नाक काटना-पंचवटी में निवास करना और खरदूषन की लड़ाई तथा खरदूषन वध अकित है माया का हिरन भागता जा रहा भगवान माया के हिरन को मारते हैं पीछे लछमन जी आ रहे हैं। साधू भेषधारी रावण द्वारा सीता हरण अशोक वाटिका में सीता जी का निवास स्थान, बाली सुग्रीव की लड़ाई, बाली का बध सुग्रीव को राजतिलक अगद युवराज सकल बानर सेना सीता जी की तलाश में, हनुमान जी का समुद्र पार होना अक्षयकुमार बध, अशोक वाटिका में सीता जी के दर्शन, नागपांस में हनुमान जी बधते चित्र लिखे हैं। लंका दहन-सेतुबन्ध रामेश्वर स्थापना अगद रावण सम्वाद, रावण-कुम्भकरण आदि की लड़ाई रावण बध विभीषण को राजतिलक, भरत मिलाप दोनों प्रसङ्ग चित्रकूट तथा अयोध्या जी के चित्र प्रथक प्रथक अंकित किये गये हैं। अयोध्या जी में भगवान का राजतिलक होना और उत्सव आदि के धार्मिक चित्र लिखे हैं।

ओरछा को बुन्देलखण्ड नेशनल-गैलरी कहू तो अत्युक्ति नहीं होगी बुन्देलखण्डी चित्रकला की उत्पत्ति राजपूत चित्रकला से मानी गई है (४) किला ओरछा—ओरछा के दक्षिण भाग में तीन किले बने हुए हैं (अ) राज महल (ब) शीशमहल (स) जहांगीर महल प्रथक प्रथक बने हैं। बाजार

ओरछा से पूर्व की तरफ फुलअड़वारा और अड़वारा नामक नाला हैं जो किले की सुरक्षा को चारों तरफ से घेरे हुए है। आगे कटीला दरवाजा बहुत मजबूत लोहा व लकड़ी का बना है। इसी के सामने एक दरवाजा चिना हुआ है। इसकी दन्तकथा है कि ओरछा में व्यास लोग अधिक धनवान थे लक्ष्मी जी की प्रतिमा बना कर वैशाख नन्दन पर बिठाल कर ओरछा में भ्रमण कराया और वेतवा नदी में प्रवाहित कर दिया और रात्रि में बांस के छिलका छीलकर इसी द्वार पर डाल दिए राज परिवार वालों ने इसको अपशकुन मान कर उस दरवाजे को बन्द करा दिया था।

इसी स्थान से दाहिनी तरफ की ओर जो मार्ग गया है वह मार्ग विश्राम ग्रह के लिए राजमहल किला को घेर कर बना है। यह मार्ग कार जीप आदि के लिए बहुत अच्छा बना है। किला शीशमहल को ही वर्तमान समय में विश्राम गृह कहते हैं। प्रत्येक किले के नीचे भाग में भौयरे बने हैं। जिनको तहखाना कहते हैं। तहखाने बहुत मजबूत बने हैं जिसके अन्दर जाने के मार्ग अलग हैं। सुरग की रास्तायें अलग अलग बनी हैं। अन्दर अन्धेरा बहुत है कोई अकेला आदमी नहीं जा सकता है साथ में दस बीस आदमी मिलकर प्रकाश लेकर तमाम आदमी भौंयरा देखने जाते हैं। भौंयरे की सफाई नहीं होने से सांप बिच्छू आदि निवास करते हैं। देखने योग्य है।

(अ) किला पहला

राज महलः—इसे मधुकरशाह राजा ने सं० १६३० वि० में अपने निवास करने हेतु बनवाया था जो श्री जतुर्भुज मन्दिर के सामने है। उसके सामने खिड़की बनाई गई थी जिससे महल में बैठे भगवान श्री रामराजा के दर्शन करेंगे लेकिन उस मन्दिर में श्री रामराजा नहीं बैठे, इसमें चतुर्भुज मन्दिर बना था। इसके नीचे तहखाना बना है।

इसकी दो दालानों में कुछ भित्ति-चित्र हैं जो सत्रहवीं-अठाहरवीं शताब्दी के जान पड़ते हैं। इसके दूसरे खण्ड के दो कमरों में जो चित्र बने

हुए हैं वे अवश्य देखने योग्य हैं। एक कमरे में जल बिहार के कुछ चित्र अङ्कित हैं। सरोवर में कमल खिले हुए हैं। नीचे सारसों की पंक्तियां हैं। सारसों की मुद्राएं विभिन्न हैं तथा विशेष स्पष्ट और चित्ताकर्षक हैं। बीच तालाब में बतख के आकार की एक नौका पड़ी है। नौका के ऊपर छतरी है। नौका में कोई राजा बैठा हुआ है। राजा की शक्ल जहांगीर से विशेष मिलती-जुलती है। राजा के पीछे एक स्त्री मोर छत्र लिये खड़ी है। सामने दो युवतियां गा रही हैं। एक नौका खे रही है। पूरे कमरे में इस प्रकार के चौबीस चित्र हैं जो सिनेमा की एक फिलम के समान बदलती हुई मुद्राओं के द्योतक हैं। इन्हीं चित्रों के नीचे चौगान (पोलों) के चित्र अङ्कित हैं। स्त्रियाँ भी घोड़ों पर सवार पोलों खेलती हुई दिखलाई गई हैं। किसी में छः और किसी में चार खिलाड़ी हैं किला की अपेक्षा तहखाना नीचे बना है भौंयरा कहते हैं।

(ब) किला दूसरा

जहाँगीर महलः—इसका निर्माण सं० १६७५ वि० में वीरसिंह देव (प्रथम) ने जहाँगीर से मैत्री की स्मृति में बनवाया था। जिसमें वीरसिंह देव (प्रथम) ने जहांगीर के साथ रहकर हिन्दू–मुस्लिम एकता का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया था। इसके नीचे तहखाना है।

(स) तीसरा किला

शीश महलः - इसका निर्माण सं० १७६३ वि० में उदैतसिंह राजा ने कराया था। आजकल इसमें विश्राम गृह बना है। इसके नीचे भौंयरा तहखाना है।

(५) **आनन्द मण्डल माल बागः**—यह सं० १६७५वि० में मधुकरशाह के पुत्र इन्द्रजीत ने बनवाया था इसमें रायप्रवीन का निवास स्थान था। इसे रायप्रवोन गणिका भवन भी कहते हैं। नीचे भाग में तहखाना बना है जो किले तक जाता है तहखाने, भौंयरे सभी इमारतों के नीचे बने हैं।

(६) श्री हनुमान छारद्वारी:—सं० १७०५ वि० में पहाड़सिंह राजा ओरछा ने गुदरई में गोंड़वाना विजय के बाद बनवाया था जो ओरछा से ५ कि० मी० दूरी पर है।

(७) श्री कवीन्द्र केशव भवन:—श्री रामराजा मन्दिर के पीछे स्थित है। इसको केशव भवन कहते हैं।

(८) भक्त कवि महात्मा हरीराम व्यास ओरछा वाले का भवन निवास स्थान समोखन शुक्ल ने मुहल्ला व्यासपुरा तथा श्री जुगलकिशोर मन्दिर प्राचीन ओरछा के निकट में सम्वत् १५२७ वि० में भवन निर्माण कराया था। हरीराम जो व्यास ओरछा वाले का जन्म सं० १५६७ वि० और निधन सं० १६६९ वि० में हुआ था वृन्द्रावन में सं० १६७५ वि० में समाधि वीरसिंह देव ओरछा नरेश ने निर्माण कराई।

(९) सावन भादों:—नामक दो स्तम्भ हैं ऐसी किंवदन्तियाँ सुनते हैं कि सावन भादों की रात में वह मिलते हैं। इन स्तम्भों के नीचे विशाल तहखाना है फव्वारों की सजावट है। यहाँ होकर दरवार किया जाता था। महाराजा वीरसिंह देव प्रथम इसी स्थान पर दरबार करते थे श्री देवतारूपी हरदौल का भवन बगीचा फूलबाग चन्दन कटोरा सावन भादों नामक स्तम्भों के ही अति निकट है। यह धार्मिक जुगल उपासक के स्तम्भ माने जाते हैं। स० १६६३ वि० में स्तम्भों का निर्माण हुआ था।

(१०) मह कवि श्री चन्द्रसखी महात्मा ओरछा भवन:—सड़खरिया तालाब पर श्री लक्ष्मी जी मन्दिर ओरछा के पीछे ऐतिहासिक भक्त कवि का जन्म स० १६०६ वि० में निधन सं० १६८२ वि० में हुआ था सनाढ्य ब्राह्मण ओरछा के राधाबल्लभी उपासक कवि ओरछा में ही हुये थे।

श्री चन्द्रशेखर आजाद भवन ओरछा

(११) ओरछा में अज्ञात निवास करने का स्थान स्वतन्त्रता के अमर सेनानी श्री चन्द्रशेखर आजाद का स्थल प्रवास सन् १९२९ ई० में कांग्रेस का

एक अधिवेशन लाहौर में हुआ जिसमें पूर्ण स्वतन्त्र राज्य की मांग का प्रस्ताव पास किया गया तथा २६ जनवरी १९३० ई० को स्वाधीनता दिवस मनाया जाना निश्चित हुआ। इस अधिवेशन की अध्यक्षता श्री जवाहर लाल नेहरु ने की। अंग्रेजी सरकार का दमन चक्र और तेज हो गया हड़ताल व जुलूस बन्द नहीं हुए। मेरठ और लाहौर के कई वीर क्रान्तिकारियों ने सरकार को आतंकित कर दिया। नम्रता पूर्वक इस अन्दोलक की पूर्व सूचना सरकार को दे दी गई फिर भी सरकार ने इसे दबाने के लिए गोलियों और लाठियों का प्रयोग किया। गांधी जी और उनके साथियों को गिरफ्तार कर लिया गया। इनदिनों कई विदेशी राष्ट्रों में भारत के प्रति गहरी-सहानुभूति पैदा हो गई थी। अन्त में ब्रिटेन ने विवश होकर तीन बार गोलमेज परिषद् बुलवाई परिषद् का प्रथम अधिवेशन १९३० ई० में लन्दन में हुआ किन्तु इसमें कांग्रेस ने भाग नहीं लिया क्योंकि कई नेता बन्दीगृहों में बन्द थे। इसमें संघशासन सम्बन्धी कुछ सिद्धांत निश्चित किये गये। चन्द्रशेखर आजाद ने इसी समय लाला लाजपतराय के हत्यारे कप्तान सैन्डर्स की हत्या करदी और दिनांक २६-९-२८ ई० को ओरछा के बीहड़ घनघोर जंगल लका चित्रकूट नदी के मरुवरा कन्चना घाट-भावी जू की मण्डिया और किला ओरछा कोट भीतर यज्ञशाला पन्चमुखी महादेव के बनवासी भगवान क मन्दिरों में साधू वेषधारा तपस्वी ब्रह्मचारी रूप धारण किये श्री चन्द्रशेखर आजाद गुप्त अज्ञात रहने लगे। सन् १९२९ ई० व सन् १९३० ई० अर्थात् सम्वत् १९८६ वि० व सम्वत् १९८७ वि० में सातार नदी के किनारे अज्ञात निवास किया। जिस समय सन् १९३० में लार्डइरविन पांच हजार सैनिक खुफिया पुलिस सहित पधारे उस समय चन्द्रशेखर आजाद ने सन् १९३० ई० में हजारों गोपनीय पुलिस रहते हुए भी अपने क्षेत्र सातार नदी के किनारे अपना कार्य किया। गुप्तरूप मे अज्ञात निवास ओरछा में किया। अंग्रेज सार्जेन्ट से वह कम्पनी बाग इलाहाबाद

अल्फ्रेड पार्क में अपनी अपूर्व वीरता प्रदर्शित कर दिनांक १७ फरवरी सन् १९३१ ई० को स्वर्गवासी (शहीद) हुए। सन् १९०० के लगभग ग्राम भांवरा रियासत आलीराजपुर वर्तमान जिला झाबुआ म० प्र० में पं० तिवारी श्री सीताराम ब्राह्मण के यहाँ जन्म लिया था पर निवास ओरछा में ही किया था। दिनांक ७-८-७६ को अस्थि कलश ओरछा में आया था अपार जन समूह ने अस्थि कलस का स्वागत किया था।

सन् १९३० ई० में सरदार श्री भगतसिंह ने असेम्बलीहाल लाहौर में बम फेंका था, सरदार भगतसिंह जैसे महान क्रान्तिकारी को गिरफ्तार कर दिनाँक २३-३-३१ ई० के शाम के ८ बजे फांसी लाहौर में दी गई थी। इसमें भगतसिंह के अतिरिक्त चन्द्रशेखर आजाद बी० के० दत्तविस्मिल आदि के नाम उल्लेखनीय है।

१२—राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की भस्मी विसर्जित दिनांक १२-२-४८ ई० को घाट नदी वेतवा के किनारे हुई थी। वहीं पर कचना घाट है जो रानी कंचन कुंवर ने स० १७०९ वि० में अपने नाम से बनवाया था। वहीं तुङ्गाण्य है। अनेक राजाओं की सामधियाँ वनी हैं जो राजाओं के प्रत्येक समय के नाम से विख्यात हैं।

१३—बारेलाल प्रेत का स्थान व्यासपुरा में है तथा प्रेत की बगिया नदी के किनारे पर है। सं० १७२२ वि० में प्रेत विख्यात थे। ओरछा में प्रेत कथा बहुत ही विख्यात है। प्रेत योनि मे बहुत से लोग प्रेतों का दर्शन प्राप्त करते हैं।

श्री दिमान हरदौल का स्मारक

१३—स्थिति बगीचा फूलबाग ओरछा में है। चन्दन-कटोरा राजदरवार भवन प्राचीन कला का दर्शनीय स्थान है बहुत ही सुन्दर है।

ओरछा राजबंश में भ्रात-भक्त श्री हरदौल जैसे महान पुरुष हुये

हैं, जिन्होंने अपने वंश, जनपद और स्त्री–समाज की मर्यादा रखने के लिए अपने जीवन तक को उत्सर्ग कर दिया। यह एक ऐसा कलंक है जो भुलाया नहीं जा सकता, यद्यपि उनका बलिदान उनको अमरत्व प्रदान कर गया। केवल बुन्देलखण्ड ही में नहीं, सुदूर उत्तर और दक्षिण भारत के गाँव–गाँव में उनकी पुण्य–स्मृति में चबूतरे बने हुये हैं। प्रत्येक विवाह कार्य को सफल बनाने हेतु उनका आवाहन किया जाता है। देवता रूपी हरदौल सब प्रकार की मनोकामना सब की पूरी करते हैं और सब प्रकार के सङ्कट विघ्न बाधाएं दूर हो जाती है। भूत बाधाएं दूर जाती है सन्तान हीन को पुत्ररत्न प्राप्ती होती हैं।

भौजी भोजन परसै, अंसुआ चौमासे से बरसै

आज भी बुन्देलखण्ड के ग्राम बासी गरीब किसान व्यस्त और श्रम साध्य जीवन की कुछ घड़ियों में उकास पाकर जब गांव की चौपाल में बैठकर अपने दुखों को गीतों के स्वरों में भुला कर तन्मय हो जाते हैं और बीच में जब उपरोक्त गीत छिड़ जाता है तो इसको गाते गाते उनकी आंखें छलछला उठती हैं और गला रूध जाता है फिर वे गा नहीं पाते।

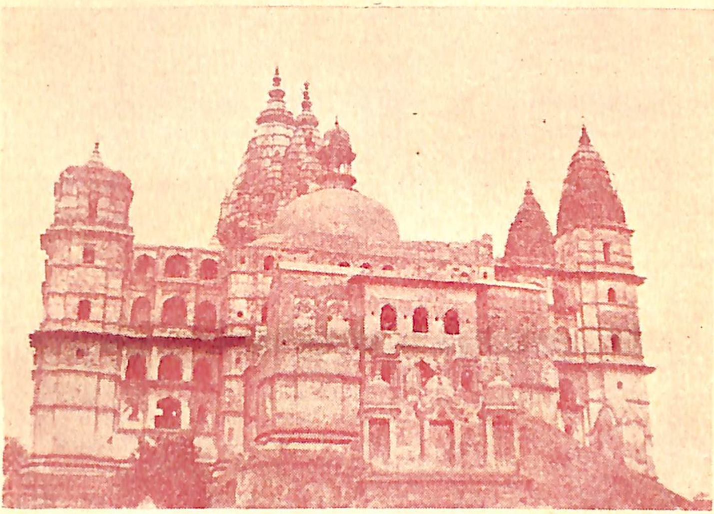
श्री दिमान हरदौल के स्मारक बुन्देलखण्ड के तो हर गाव में ही हैं उत्तर भारत के भी हर गाव में भी उनके चबूतरे हैं। पंजाब के किसान उनकी पूजा करते हैं। राजस्थान में घर घर वह श्रद्धा सहित स्मरण किए जाते हैं। मध्य प्रदेश, मध्यभारत,हैदराबाद, मद्रास के ग्रामों में चबूतरे बने हैं। कोई हिन्दू परिवार ऐसा न होगा जिसके विवाह संस्कार के अवसर पर श्री लाला हरदौल का स्मरण न किया जाता हो। विवाह कार्य प्रारम्भ होते ही दो दिन पूर्व महिलायें हरदौल के चबूतरे–मढ़िया, बङ्गला पर जाकर गीतों के साथ हरदौल को विवाह का निमन्त्रण देती। विवाह कार्य की निर्विघ्न सम्पन्नता के निमित्ति अनन्त विश्वास पूर्वक उनसे संरक्षण की याचना करती हैं। यहां एक विश्वास घर किये हुए है कि विवाह कार्य में यदि हरदौल की पूजा बिसर जाय तो भोजन बिगड़ जाता है और आंधी

पानी आ जाता है । विवाह में विशेष कर चीकट भात के दस्तूर के समय भी श्री हरदौल का स्मरण किया जाता है । भात के अवसर पर कन्या या वर की माता अपने निज भाई से भेंट करने के पूर्व हरदौल से भेंट करती हैं । विवाह भर में महिलायें समय समय पर अधिकतर श्री हरदौल के गीत गाती हैं । विवाह संस्कार के अतिरिक्त पुण्य मंगलोत्सवों पर भी श्री हरदौल की पूजा होती है । पुरुष गाना बाजाना करके उत्सव मनाते है । ढांक पर एक विशेष गीत जिसे गोट कहते हैं गाना गाकर आवाहन किया जाता है । सर्प के काटने पर श्री हरदौल के नाम को ऊतरी बन्धन जादू का काम करता है । घोड़े पर सवार ढाल तलवार युक्त हाथ में माला लिये प्रत्यक स्थानों पर मूर्तियां हैं साथ ही साथ चबूतरा सेवक महतर का रहता है । उसे महतर बाबा का चबूतरा कहते हैं ।

श्री हरदौल के सम्बन्ध में अनेक किवदन्तियाँ विख्यात है । इस जन-श्रुतियों में अनेक ऐतिहासिक तथ्य कम श्रद्धा भक्ति मूलक कल्पना को अधिक स्थान मिला हुआ है । कहते हैं श्री हरदौल के स्वर्गवास के बाद उनकी भगनी (बहिन) कुन्जावती के घर दतिया में रतन कुमारी के विवाह में भात व्यवहार दिया था बारात की ज्योनार के समय अदृश्य रूप में घी परोसा था और केवल घींऊ का पात्र दिखता था । जब घीऊ पात्र (लोटा) दूलह (वर) के समीप पहुँचा तो वह दूल्हा (वर) ने घीऊ पात्र लोटा पकड़ तो दर्शन देना पड़े

तेज पुंज पूरित परम, प्रगट करो निज देह ।
दर्शन दिये हरदौल, लख दूल्हा को नेह ।।
सबको निज दर्शन दिये, फिर भये अन्तरध्यान ।
साखे श्री हरदौल के घर घर होत बखान ।।

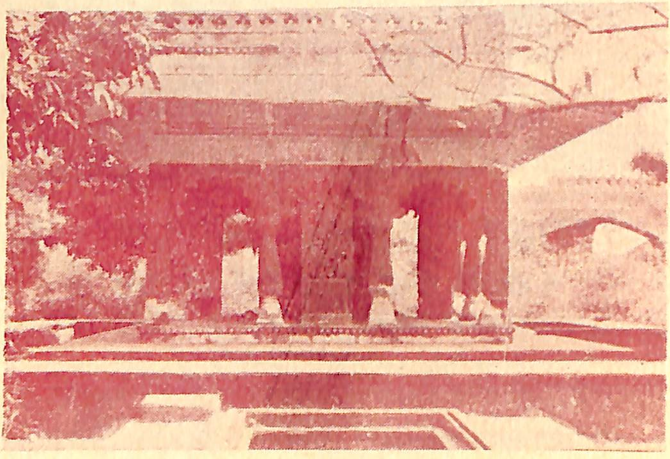
जब दूल्हा मानसिंह के समक्ष घीऊ पात्र आया और शब्द सुनाई दिया घीऊ लीजिये, घीऊ लीजिये, तो दूल्हा ने हाथ पकड़ लिया, मामा



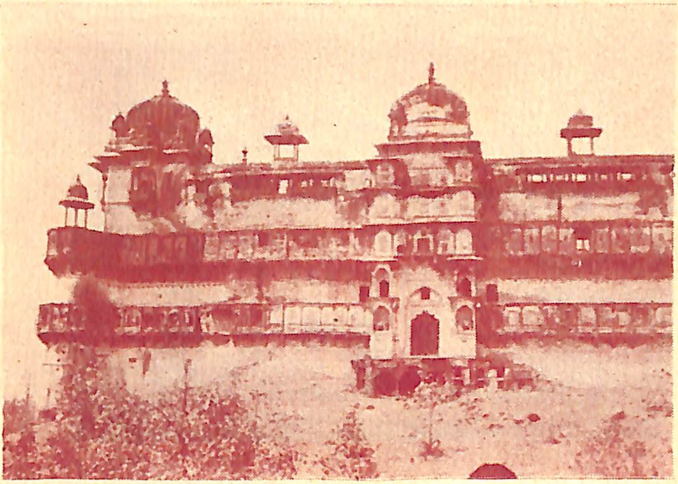
श्री चतुर्भुज जी मन्दिर ओरछा फोटो डी० के० वर्मा



केशव-भवन फोटो डी० के० वर्मा



हरदौल-चबूतरा फोटो डी० के० वर्मा



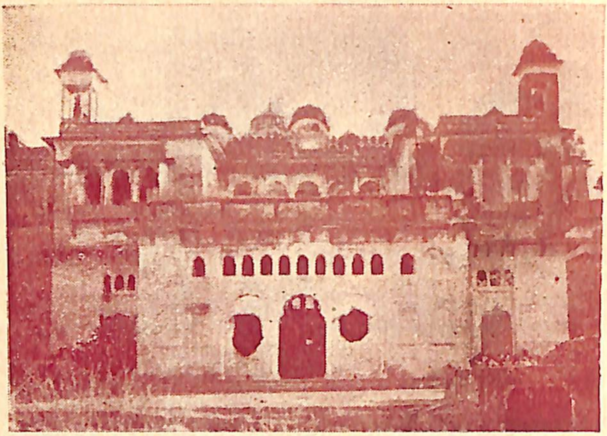
जहाँगीर महल

फोटो डी० के० वर्मा

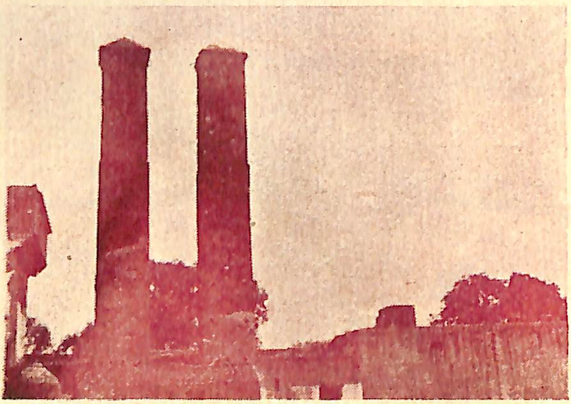


चन्दन कटोरा

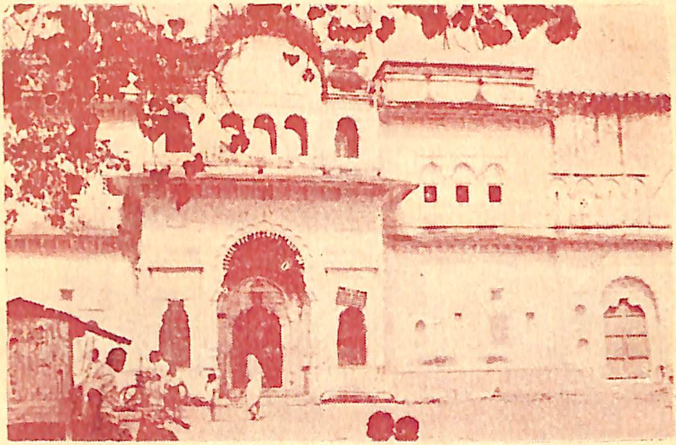
फोटो डी० के० वर्मा



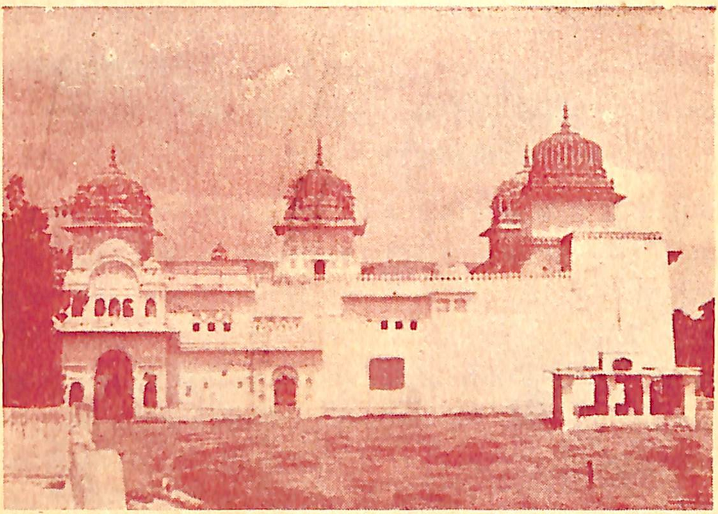
रायप्रवीन भवन फोटो डी० के० वर्मा



सावन-भादों स्तम्भ फोटो डी० के० वर्मा



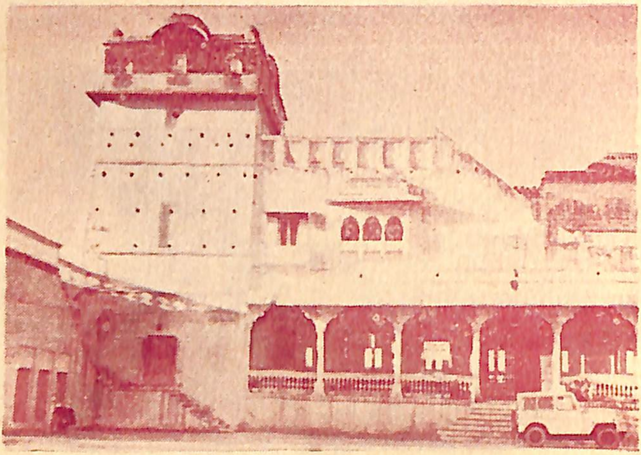
मुख्यद्वार : रामराजा मन्दिर — फोटो डी० के० वर्मा



श्री रामराजा मन्दिर ओरछा — फोटो डी० के० वर्मा



लक्ष्मी-मन्दिर फोटो डी० के० वर्मा



विश्राम भवन फोटो डी० के० वर्मा

जी दर्शन दीजिए तो दूल्हा के आग्रह कहने पर सकल बरात को देवता रूपी लाला हरदौल ने दर्शन दिये तथा पाँच गांव मानेजन को दान में दिए थे मागौनी बरुआ, अमरपुर, मट, बाजनो उ० प्र० में है।

दो०—गांव गांव में चौंतरा, पूजत है नरनारि ।
मैंतर बाबा के उतई, बने चौंतरा चार ॥

केवल पांच गांव छोड़कर लाला हरदौल के तथा मैंतर बाबा के चबूतरा समस्त हिन्दुस्तान में हैं आजकल भी जब कोई ब्याह कार्य वगैरह मङ्गल कार्य होते तो लाला हरदौल को निमन्त्रण सबसे पहिले सब कोई देते हैं उनके ब्याह कार्य सफल होते हैं। मनोकामना पूरी होती है।

ओरछा का अतीत अत्यन्त गौरव पूर्ण है

ओरछा एक ऐसे ही स्थानों में से है, जिसका अपना सांस्कृतिक महत्व है। यहां की वीरता, त्याग एवं विद्वत्ता की महानता के समक्ष सबको नतमस्तक होना पड़ता है।

ऐसे सांस्कृति स्थान का परिचय प्रकाशित कर हमें प्रसन्नता हो रही है। आशा है, इसे अमर बनाने में सभी सहायक होंगे।

ओरछा संसार के उन स्थानों में से है जो आज भी अपनी छाती के नीचे सांस्कृतिक थाती को काल के कठोर आघातों से बचाकर अतीत के मूक गीत गाते हुए, उत्थान और पतन के विधान की दुहाई दे रहे हैं। यहाँ कितनी संस्कृतियों का विकास और ह्रास हुआ इसका हमारा अपना कोई इतिहास नहीं है। आदि काल से लेकर मौर्यों, शुगो, मालबी, नाग भारशिवों, बाकाटकों, गुप्तों और चन्देलों के समय इसका क्या वैभव था। उससे भी हम परिचित हैं। परिहारों ने इसे अपनी राजधानी बनाया और चन्देलों ने उसे ढहा दिया। यह इतिहास के बिखरे पन्नों में बहुत ढूंढ़ने पर मिल जाता है, किन्तु कुछ व्यक्ति विवाद का वितण्डा उठाकर इसे भी

असत्य करने का दुस्साहस कर सकते हैं और हो सकता है प्रामाणिकता अभाव में हमें भी स्वीकार करना पड़े। यह शंका बुन्देलों के सम्बन्ध में उठाई जा सकेगी। उनकी राजसत्ता का विकास भी यहीं हुआ। महारा रुद्रप्रताप ने इसका पुनः निर्माण कर अपनी राजधानी को १५८८ बनाया और उस समय से टीकमगढ़ हटने तक यह ओरछा राज्य राजधानी रहा है। उनके स्मारकों में से आज भी बहुत से अच्छी अथव भग्नावस्था में खड़े अपने वैभव की कहानी सुना रहे हैं, जिसे बेतवा क कल-कल करती हुई धार मुखरित कर रही है।

ओरछा जाते हुये सबसे पहले बाईं ओर से कुछ ही दूर राना खुमा की हवेली मिलती है। इसका कुछ भाग गिर भी गया है। खुमा महाराज पहाड़सिंह के एक प्रतापी सामंत थे, जिन्होंने गोड़वाने पर आक्रमण करते समय बुन्देली सेना का नेतृत्व किया था। उनकी यह हवेली आज भी बीरता का प्रतीक बनी हुई है और अपने गौरवशाली इतिहास पर इठला रही है।

ओरछा से नदी की ओर महादेव घाट को जाने में दाहिनी ओर दुर्गासिंह और फिर विन्ध्यासिनी देवी का चबूतरा मिलता है। दुर्गासिंह के चबूतरे पर आज भी लोग जाकर सांप के काटे हुये व्यक्ति को उनके नाम की ऊत्तरी बांधते हैं। विन्ध्यवासिनी देवी बुन्देलों की आराध्य देवी हैं। कुछ लोगों का कथन है कि आदि बुन्देला हेमकर्ण ने इन्हीं देवी की आराधना कर मनोवांछित बरदान प्राप्त किया था। यहां से दाहिना ओर मुड़ने पर नदी के किनारे सामंतसिंह का मकबरा है। इसी मार्ग से जाने पर कन्चना घाट पहुँचते हैं। यहां महाराज वीरसिंह देव तथा मधुकरशाह के मकबरे हैं। महाराज वीरसिंह मुगल सम्राट अकबर और जहांगीर के समकालीन थे उन्होंने अपने अतुल पराक्रम और साहस से विशाल बुन्देला-राज्य की स्थापना की थी। वीर होने के साथ ही वे दानी, कला-प्रेमी और पक्के धार्मिक थे। उन्होंने ५२ इमारतों, अनेक प्रसादों और मन्दिरों का

निर्माण कराया। उनकी प्रत्येक कृति में स्थापत्य और शिल्पकला अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में मिलती है। वास्तव में यह बुन्देलों का स्वर्ण काल था। महाराज मधुकरशाह अकबरके समकालीन थे। वे अपनी भक्तिभावना के लिये प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि एक बार सम्राट अकबर ने सभी नरेशों को शाही दरबार में तिलक न लगा कर आने की आज्ञा दी। महाराज मधुकरशाह ने इस आज्ञा की कोई चिंता नहीं की और अपने प्राणों की बाजी लगाते हुये उस दिन और भी बड़ा तिलक लगाकर शाही दरबार में गये। अकबर इनके साहस और भक्ति से बड़ा प्रसन्न हुआ। उसी दिन से यह तिलक मधुकर शाही कहलाने लगा। वह मकबरा गिर पड़ा है और अब केवल आसन शेष है। इसके आगे तुङ्गारैन हैं, जहाँ ऋषि तुंग ने तपस्या की थी। यहां महादेव जी का एक छोटा-सा मन्दिर बना हुआ है। पास में महाराज भारतीचन्द का मकबरा है।

किला ओरछा के दक्षिण भाग में ऊंचाई पर बना है। इसके दो भाग हैं-राजमन्दिर और जहाँगीर महल राजमन्दिर में दो दालानों में कुछ भित्ति-चित्र हैं जो सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी के जान पड़ते हैं। जहांगीर महल महाराज वीरसिंहदेव की कृति हैं। उसका निर्माण संभवत: महाराज के समृाट जहांगीर की मैत्री तथा सम्मान के भाव को व्यक्त करने के लिए कराया होगा। इसी का एक भाग शीशमहल कहलाता है।

किले के अन्दर दूसरे खण्ड में दो कमरों में जो चित्र बने हुये हैं वे अवश्य देखने योग्य हैं एक कमरे में जल बिहार के कुछ चित्र अङ्कित हैं तालाब भरा हुआ है। कमल खिले हुए हैं। कमल सब एक ही प्रकार के हैं और सब में गिनी हुई बराबर बराबर पखुड़ियां हैं। नीचे सारसों की पक्तियां हैं। सारसों की मुद्राएँ विभिन्न हैं और विशेष स्पष्ट और चित्ताकर्षक हैं। बीच तालाब में बतख के आकार की एक नौका पड़ी है। नौका के ऊपर छतरी है नौका में कोई राजा बैठा हुआ है। राजा की शकल जहांगीर से विशेष मिलती जुलती हैं। राजा के पीछे एक स्त्री

मोर छत्र लिए खड़ी है। सामने दो युवतियां गाना गा रही हैं एक नौ खे रही हैं। पूरे कमरे में इस प्रकार के चौबीस चित्र हैं और सिनेमा क एक फिल्म के सामान बदलती हुई मुद्राओं के द्योतक हैं। इन्हीं चित्रों नीचे चौगान (पोलो) के चित्र अङ्कित हैं। स्त्रियां भी घोड़ों पर सवा चौगान खेलती हुई दिखलाई गई हैं। किसी चित्र में छः खिलाड़ी हैं, कि में चार हैं।

ओरछा के अनगिनत खण्डहरों में न जाने कितने सांस्कृतिक राज-नीतिक और सामाजिक केन्द्र समाए हुए हैं। खोज न होने के कारण जानकारी बहुत कम है। अतीत के इतिहास की तो बात दूर रही बुन्देल के सम्बन्ध में भी अभी बहुत कुछ जानने को शेष है। अतीत में जो कभ अपने पूर्ण वैभव पर थे आज उनकी सहानुभूति में किसी को सोचने क अवकाश ही नहीं सहानुभूति है केवल उस बेतवा की जो न जाने कब एक दो आँसू नहीं धार की धार बहाती हुई अपनी लहरों में अगणि संस्कृतियों तथा वीरों और कलाकारों की स्मृति लिए हुए निरन्तर बहत चली जा रही है।

ओरछा नाम से ही हमारे मस्तिष्क में सैकड़ों स्मृतियां जागृत ह जाती हैं। ओरछे के खण्डहरों को देखकर छिपे हुए अतीत वैभव की या ताजी हो जाती है। हमारे सामने कवि अक्षर अनन्य हरीराम व्या अन्यान्य कवियों की मूर्तियाँ सामने खडी हो जाती हैं और ओरछा की रम गोद पुनः इन कवियों की कविता की स्वर लहरीं से गूंजने लगती है भाभी के मान की रक्षा के लिये हंसते हंसते मर मिटने वाले हरदौल क भव्य मूर्ति आँखों के सामने खड़ी हो जाती है और उनके जीर्ण भवन में खड़ होकर हम पुनः इतिहास के युग में पहुंच जाते हैं। अकबर बादशाह के आह्वान को ठुकराने वाली कलावन्त प्रवीणराय, जिसके रोम रोम में ओरछ का संगीत प्रकृति की मधुरिमा और कला की गरिमा व्याप्त थी। इसी

भूमि पर अपनी कला का अभिनय प्रदर्शित करती थी। ओरछा बुन्देलखण्ड का साहित्यक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक तीर्थ है जिस पर हमारा राष्ट्र गर्व कर सकता है। आधुनिक युग के प्रमुख क्राँतिकारी अमरशहीद श्री 'आजाद' ने भी यहाँ की आजाद जमीन से आजादी का पाठ सन् १९२९ में पढ़ा था। बेत्रवती के तट पर स्थित ओरछा प्राचीन कला और संस्कृति का प्रकाश स्तम्भ रहा है। दुर्भाग्य से आज वह अन्धकार में है। परन्तु हमें विश्वास है कि निकट भविष्य में ही वह पुनः कला और संस्कृति की किरणों से सारे भारत को आलोकित कर देगा।

—लेखक

ठाकुर लछमनसिंह गौर
ओरछा

कृष्णदत्त वाजपेयी
टैगोर प्रोफेसर तथा अध्यक्ष :
प्राचीन भारतीय इतिहास,
संस्कृति तथा पुरातत्त्व विभाग
संचालक :
उत्खनन तथा सर्वेक्षण सागर वि० वि०
अध्यक्ष :
भारतीय मुद्राशास्त्र परिषद्

स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये त्वां, न शि
(रामायण ३, ६, २४)

सागर विश्वविद्यालय
सागर (म० प्र०)

क्रमांक....../प्रा०भा०इ०

दिनांक २६/११/७६

शुभ-कामना संदेश

ठाकुर लक्ष्मनसिंह गौर द्वारा लिखित पुस्तक 'ओरछा का इतिहास' पढ़कर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। मध्य प्रदेश के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थलों में ओरछा की गणना है। भारतीय साहित्यिक एवं सांस्कृतिक उन्नयन में ओरछा निवासी अनेक मनीषियों ने विपुल योग दिया। विद्वान मित्र मिश्र जी, महात्मा हरीराम व्यास, स्वनामधन्य नृपति मधुकरशाह जी, महारानी गणेश कुमारी जी, राय प्रबीण जी, लाला हरदौल जो, आचार्य केशवदास जी आदि ने अपनी महान् कृतियों से ओरछा का नाम उज्जवल किया। यहीं वीरसिंह देव जी जैसे उदारचेता शासक हुए जिनके बनवाये हुये मन्दिर और प्रासाद बुन्देलखण्ड तथा ब्रजभूमि की शोभा है।

वस्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, साहित्य और संगीत के संबर्धन में ओरछा के राज परिवार का योगदान इस देश के इतिहास में अमर रहेगा।

इस महत्वपूर्ण नगर का मनोरंजक विस्तृत इतिवृत लिखकर ठाकुर लछमन सिंह जी ने एक शुभ कार्य सम्पन्न किया है। इस पुस्तक में प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक युग तक ओरछा का गौरवपूर्ण इतिहास दिया गया है। जिन महानुभावों ने ओरछा क्षेत्र में रहकर साहित्य संस्कृति की सेवा की उनके संबंध में खोजपूर्ण सामग्री इस पुस्तक में दी गयी है। मैं ठाकुर साहब के इस सत्प्रयास की सराहना करता हूँ। आशा है मध्यप्रदेश शासन उन्हें उपयुक्त आर्थिक सहायता प्रदान करेगा, जिससे इस उपयोगी पुस्तक के आगामी संस्करण को अधिक अच्छे ढंग से प्रकाशित किया जा सके और उसमें ओरछा के स्मारकों, मूर्तियों चित्रों आदि के चित्र भी दिये जा सकें।

कृष्णदत्त बाजपेयी

दिनांक : २९ नवम्बर, ७६

प्रारम्भिक इतिहास

भारत वर्ष के मध्य भाग में नर्वदा के उत्तर और जमुना के दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत की शाखाओं से समाकीर्ण और जमुना की सहायक नदियों के जल से सिंचित सृष्टि-सौन्दर्यकृत जो प्रदेश है उसे बुन्देलखण्ड कहते हैं। समय समय पर इसके नाम दक्षणि-बज्र-जेजाकमुक्ति जुझोती जुझारखन्ड तथा बिघ्येल खन्ड भी रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि विध्याटवी में स्थिति होने के कारण इस प्रदेश का नाम विध्येलखन्ड पड़ा, बाद में अपभ्रष्ट हो यह बुन्देलखण्ड कहलाया। इस भूभाग के उत्तर में यमुना का प्रचन्ड प्रवाह पश्चिम में मन्द मन्द बहने वाली चम्बल और सिन्ध नदियों दक्षिण में नर्वदा नदी और पूर्व में बघेलखण्ड है। इस प्रदेश का उत्तारी भाग जिसमें आज कल झांसी जालौन ललितपुर बाँदा और हमीरपुर जिले हैं मध्य भाग में ओरछा समथर और दतिया के राज्य तथा चरखारी छतरपुर पन्ना विजावर अजयगढ़ इत्यादि राज्य हैं। दक्षिणी भाग में सागर दमोह और जबलपुर जिले हैं। इस प्रान्त में बहने वाली नदियां बेतवा, धसान सुनार, कैन, टौन्स (तमसा नदी) है। जिस प्रदेश का इतिहास लिखा जा रहा है उसे आजकल बुन्देलखण्ड कहते हैं। इसका बुन्देलखण्ड नाम पड़ने का यही कारण है कि यहा पर स. ११०५ वि० से बुन्देला ठाकुरों का राज्य रहा है।

प्राचीन गहिरवार राज्यबंश से बुन्देलों की उत्पत्ति हुई है। सं० ७३१ वि० से सं० ११०५ वि० तक बुन्देलों की राजधानी काशी बनारस में थी उस समय इनको गहिरवार क्षत्री कहते थे काशी बनारस) में निम्न २० महाराजों ने राज्य शासन किया:-कर्तृराज=महिराज-मूर्धराज=उदयराज-गरुड़सेन-समर सेन-आनन्दसेन-करनसेन-कुमारसेन—मोहनसेन-राजसेन-काशीराज श्यामदेव-पहलाद देव=हमीर देव=आस-

करन-अभयकरन-जैतकरन-सोहनपाल-करनपाल हुएमहाराजा करनपाल के तीन पुत्र हुये:-हेमकरण=अरिब्रम्ह=(अरिबमी)। वीर हेमकरण को राजा करनपाल ने काशी(बनारस)का राज्यदे-शेष को जागीरदार बनाया पिता की मृत्यु के उपरान्त अरिब्रम्ह ने हेमकरण का राज्य छीन लिया। इससे हेम-करण बनारस से विन्ध्याचल पर्वत पर जगदम्बा विन्ध्यवासिनी की तपस्या करने लगा। जगदम्बा ने प्रशन्न होकर हेमकरण को सं. ११०५ वि० वैशाख सुदी १४ ता० २६।४।१०४८ ई० में वरदान दिया कि बुन्देलखण्ड राज्य विन्धेलमूल के संस्थापक हो जाओ आपकी विजय होगी जगदम्बा का वरदान पाकर हेमकरण तमाम सेना इकट्ठी करने में लग गया और अपने पराक्रम द्वारा राज्य स्थापित करने का अच्छा मौका मिल गया मुसलमानों का राज्य उस समय पक्की तौर से नहीं था थोड़े दिन इनका राज्य भी रहा तो बुन्देले इनकी ओर से सूबेदार रहे और वह भी हेमकरण के साथी बन गये और स्वतंत्र राज्य स्थापित वि० सं० ११०५ से हो गया बुन्देलखण्ड के महाराजा हेमकर्ण ने अपनी राजधानी महौनी में स्थापित करके राज्य करने लगे और १६ साल राज्य करके वि० सं० ११२८ में परलोक सिधारे।

(महौनी राजधानी) महौनी में बुन्देला महाराजाओं का राज्य शासन काल

१—हेमकरण वि० स० ११०५ से वि० सं० ११२८ तक
२ वीरभद्र वि० स० ११२८ से वि० स० ११४४ तक
३ करनपाल वि० स० ११४४ से वि० सं० ११६९ तक
४ किन्नरशाह वि० सं० ११६९ से वि० सं० ११८७ तक
५ शौनकदेव वि० सं० ११८७ से वि० सं० १२०९ तक
६ नानक देव वि० सं० १२०९ से वि० सं० १२२६ तक
७ मोहनपाल वि० सं० १२२६ से वि० सं० १२५४ तक
८ अभयभूपति वि० स० १२५४ से वि० सं० १२७२ तक

९ अर्जुनपाल वि० सं० १२७२ से वि० सं० १२८८ तक
१० वीरपाल वि० सं० १२८८ से वि० सं० १३०८ तक

गढ़ कुड़ार में बुन्देला महाराओं का राज्य शासन काल (कुड़ार राजधानी)

११ सोहनपाल वि० सं० १३०८ से वि० सं० १३१६ तक
१२ सहजेन्द्र वि० सं० १३१६ से वि० सं० १३४० तक
१३ नौनक देव वि० सं० १३४० से वि० सं० १३६४ तक
१४ पृथ्वीराज वि० सं० १३६४ से वि० सं० १३९६ तक
१५ रामसिंह वि० सं० १३९६ से वि० सं० १४३२ तक
१६ रामचन्द्र वि० सं० १४३२ से वि० स० १४५१ तक
१७ मेदनीपाल वि० सं० १४५१ से वि० सं० १४९४ तक
१८ अर्जुन देव वि० सं० १४९४ से वि० सं० १५२५ तक
१९ मलखान सिंह वि० सं० १५२५ से वि० सं १५५८ तक
२० रुद्रप्रताप वि० सं० १५५८ से वि० स० १५८८ तक

महाराजा मलखानसिंह के छै पुत्र थे

१—रुद्रप्रताप गढ़ कुड़ार के राजा रहे।

२—खंगसिंह बरेठी के जागीरदार रहे।

३—जंगजीतसिंह गुवावली धमना की जागीर मिली।

४—जैतसिंह को तलहेटा की जागीर दी।

५—शाह दीवान को असाटी में जागीर दी।

६—देवीसिंह को निबाड़ी में जागीर दी।

ओरछा का इतिहास

महाराजा रुद्रप्रताप (वि० सं० १५८८),(सन् १५३१ई०) (जन्म वि० सं० १५०१, मृत्यु वि० सं० १५८८)

बुन्देला शासक रुद्रप्रताप ने गढ़ कुण्डार के स्थान पर ओरछा को राजधानी बनाने का निश्चय किया।

ओरछा गजेटियर पृष्ठ क्र० १७,१८,२९ पर सरजार्ज जार्ज ए० ग्रियर्सन "दी माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ इण्डिया" में ओरछा का इतिहास लिखा है कि बैशाख शुक्ल १३ सं० १५८८ वि० अर्थात मई सन् १५३१ ई० को महाराजा रुद्रप्रताप ने ओरछा के किले का निर्माण प्रारम्भ किया। ज्यों-ज्यों निर्माण कार्य आगे बढ़ा नगर का विस्तार भी बढ़ने लगा और नगर १२ कोस के क्षेत्रफल में बस गया। नगर की सुरक्षा के लिए ७ कोट बनवाये गये थे, उनमें से तीन चार कोट अब भी विद्यमान हैं।

रुद्रप्रताप की दो रानियां थीं। प्रथम गंगादास प्रमार करैरा के परिवार की और द्वितीय दीवान मानसिंह धंधेरे सिहौरा के परिवार की। रुद्रप्रताप के ९ पुत्र थे। जिनका विवरण निम्न है:-

१ श्री भारतीचन्द्र ओरछा में २३ वर्ष राज्य किया।
२ श्री मधुकर शाह ओरछा में ३८ वर्ष राज्य किया।
३ श्री उदयादित्य मुना-महेबा के जागीरदार। इन्ही के वंश में महाराज छत्तसाल पैदा हुये।
४ श्री अमानदास पेंड़रा के जागीरदार।
५ श्री प्रागदास हरसापुर ललितपुर के जागीरदार।
६ श्री दुर्गादास (दुर्गापुर) दतिया में जागीर दी।
७ श्री चन्दन दास करैरा के जागीरदार बने।
८ श्री घनश्यामदास मैंगुवां में जागीर दी।
९ श्री भूपत शाह कुहुंरा जागीर मिली थी।

दतिया स्टेट गजेटियर पृष्ठ नं० ९७ पर लिखा है कि ओरछा अधीनस्थ दतिया स्टेट थी, पन्ना स्टेट गजेटियर पृष्ठ नं० १८४ पर ओरछा का गौरव लिखा है तथा ओरछा राज्य के अधीनस्त दतिया, महोबा, पन्ना, अजयगढ़, बांधावगढ़ आदि राज्य थे।

तुंगारण्य वन में जाते समय महाराजा रुद्रप्रताप ने वन से गाय के कराहने की आवाज सुनकर भक्ति से प्रेरित होके गाय को बचाने दौड़ पड़े और शेर से आहत होकर सं० १५८८ वि० में स्वर्ग सिधारे।

महाराजा-भारती चन्द्र (वि० सं० १५८८ से १६११ तक (सन् १५३१ ई० से सन् १५५४ ई० तक)

(जन्म वि० सं० १५२८ मृत्यु वि० सं० १६११ तक)

रुद्रप्रताप की मृत्यु के पश्चात उनके ज्येष्ठ पुत्र भारतीचन्द्र सं० १५८८ वि० में ओरछा के सिंहासन पर आसीन हुए। इन्होंने अन्तिम रूप से पूर्णतः राजधानी गढ़कुण्डार से ओरछा स्थानांतरित कर दी। राजधानी बन जाने से ओरछा का शान्त वातावरण वैभव में परिवर्तित होने लगा था। उस समय श्री हरिराम व्यास ओरछा में साधु प्रकृति के महात्मा थे। व्यास जी का समय भगवान भक्ति और उपासना मे जाता था। राजा भारतीचन्द्र ने राजमंद में लीन होकर श्री हरिराम व्यास को बुलाकर उनका अनादर किया। जिससे व्यास जी ने राजा को पुत्र हीन होने का शाप दिया। फलतः राजा के कोई पुत्र न था। (लेख व्यासवाणी नं० २६०) सं० १५९६ वि० में ओरछा का किला बनकर तैयार हुआ।

शेरशाह सूरी इनके समय में बुन्देलखण्ड पर वि० सं० १६०२ में आक्रमण करने आया। परन्तु भारतीचन्द्र और मधुकरशाह ने अपने पराक्रम से उसे स्लामाबाद नामक स्थान पर परास्त किया और इस विजय के उपलक्ष्य में स्लामाबाद का नाम बदलकर 'जयतारा' (जतारा) रखा। ओरछा का यह यौवन काल था। सं० १६११ वि० (सन् १५५४ ई०) में भारतीचन्द्र की मृत्यु हो गई।

महाराजा—मधुकरशाह (वि० सं० १६११ से १५४६ तक (सन् १५५४ ई० से १५९२ ई० तक)

भारतीचन्द्र की मृत्यु के बाद सं० १६११ वि० (सन् १५५४ ई०) में उनके छोटे भाई मधुकरशाह ओरछा के सिंहासन पर आसीन हुए।

मधुकरशाह को मुगल सेना का भी कई बार सामना करना पड़ा। अपनी वीरता से अकबर के कई किले विजित किये। मुरादशाह नामक मुगल वीर को पराजित कर अपने पराक्रम से बुन्देलखण्ड के राज्य का बहुत दूर तक विस्तार किया था। इन्होंने 'मधुपुरी' को बसाया था जो वर्तमान में 'मऊरानी पुर' कहलाता है।

ओरछा के इस यौवनकाल के दो शब्द मधुकुर शाह और टीकमगढ़ इतिहास जगत के जाज्वलमान नक्षत्रों की भांति हैं। बुन्देलखण्ड में 'मधुकर शाही' तिलक बहुत प्रसिद्ध है। ओरछा की एक भित्ति चित्र पर देखा है। जिसमें एक बादशाह तख्त पर बैठा है। एक राजपूत तलवार लिए तनकर खड़ा है। उसके इर्द-गिर्द कुत्ते जीभें निकाले खड़े हैं। यह चित्र आज भी ओरछा के राज प्रासाद की एक भित्ति पर धुंधली अवस्था में अविशिष्ट है। महाराजा मधुकरशाह बादशाह अकबर के दरबारी थे और वे भारतीय संस्कृति के सच्चे भक्त थे। मुगल बादशाह अकबर तिलक से चिढ़ गया और उसने आज्ञा दी कि दरबार में कोई भी तिलक लगाकर नहीं आयेगा। दूसरे दिन सब ठाकुरों के तिलक भाल से उड़ गये परन्तु मधुकरशाह तो उस दिन नाक से लेकर टीका लगाकर पहुँचे। बादशाह बड़ा कुढ़ा और उनके तिलक को भाल से पुंछवाने के लिए कुत्ते बुलवाये। राजा ने यह देखकर म्यान से तलवार निकाल ली और तनकर खड़ा हो गया। इस पर अकबर झुक गया। मधुकरशाह का अपूर्व साहस देखकर उल्टा सराहने लगा। आज भी बुन्देले लोग नाक के अग्र भाग से टीका धारण करते हैं। जो तिलक नाक के अग्र भाग से लगाये जाते हैं उसको 'मधुकर शाही' तिलक कहा जाता है। धन्य है वह मधुकरशाह और ओरछा जिसका टीका अमर हो गया। और तभी से उसे टीकमशाह की उपाधि मिली है।

भक्त शिरोमणि महारानी श्री गणेश कुंवरि (कमला देवी) ओरछा की रानी

श्री रामराजा भगवान का आगमन

परम भक्त महाराजा मधुकर शाह जी की महारानी गणेशकुंवरि देवी (कमला) भक्ति मय गाथा प्राचीन ग्रन्थ भक्त माल में विस्तार से वर्णन की गई है। महारानी परम भक्ति की मूर्ति थी। बड़ी ही उदार दानी थी। बचपन से ही श्री काशी विश्वनाथ के वरदान से श्री रामराजा भगवान की परम उपासक थी।

महारानी गणेश कुंवरि का जन्म वि० सं० १५६६ में श्री महाराज अनुरुद्धसिंह जू काशी नरेश के यहां हुआ था आपके पिता बड़े ही धर्मनिष्ठ और वीर पुरुष थे। इनके पूज्य पिता जितने गुणवान थे उनसे कई गुणा अधिक भक्त उनकी माता जी श्री विजय कुंवरि थी। माता की शिक्षा से श्री काशी विश्वनाथ की उपासना करके वि० स० १५७६ में वरदान प्राप्त किया था।

वि० सं० १५६६ में अगहन शुक्ल ५ गुरूवार को गनेश कुंवरि (कमला) का शुभ विवाह मधुकरशाह के साथ हुआ था।

वि० सं० १६३० की बात है कि महाराजा मधुकरशाह अपने राज-महल में बैठे महारानी गनेश कुंवरि (कमला) से भक्ति पक्ष सम्बन्धी विवाद चल रहा था। महाराजा श्री कृष्ण भगवान की उपासना श्रेष्ठ मानते थे। और महारानी श्री रामराजा की उपासना सर्वश्रेष्ठ मानती थी। रातभर विवाद हुआ अपने-अपने इष्ट देव की भक्ति के प्रमाणित ग्रन्थ वेद शास्त्र-पुराण-गीता-भागवत और रामायण के अनुसार विवाद हुआ, परन्तु

जीत किसी की नही हुई । अन्त में यह निर्णय हो गया कि जो अपने इष्टदेव को साक्षात्कार प्रगट करके सब ससार को परिचय दे वही अपनी उपासना में विजयी माना जायगा ।

महाराजा साहब श्री कृष्ण भगवान की उपासना करने को अपनी पक्ष में विजयी बनने की तपस्या करने वृन्दावन चले गये और गुरू हरीराम व्यास की सहायता से कठिन तपस्या की तब आकाशवाणी हुई कि महारानी गनेश कुंवरि (कमला) को काशी विश्वनाथ का वरदान है इससे उनकी ही विजय होगी महाराजा साहब मधुकर शाह ने गुरू जी हरीराम व्यास जी से इस आकाशवाणी का प्रसंग सुनाया तब हरीराम व्यास ने ध्यान लगाकर देखा तो महारानी साहिबा की भक्ति की सराहना करते हुए महाराजा को उपदेश करके सन्देश निवारण किया ।

उसी समय महारानी साहिबा गणेश कुंवरि (कमला) ने अवधपुरी को प्रस्थान कर दिया था । श्री लक्ष्मण किला के पास सरजू के किनारे जाकर कठिन तपस्या की और भोजन मयन, नींद का त्याग करके भक्ति में मगन हो गई । लेकिन एक माह के लगभग तपस्या करते हो गया परन्तु महारानी साहिबा गनेश कुंवरि को श्री रामराजा भगवान का दर्शन नहीं हुआ रात्रि को १२बजे अथाह सरजू जल में अपने शरीर त्याग करने को कूंद पड़ी परन्तु तीन बार वह आपके आप किनारे पर आकर खड़ी हो गईं तब चौथी बार बीच धारा में जाकर शरीर त्यागने को आगे बढ़ी । बीच जल धारा में एक स्वर्ण जटित सिहासन दिखाई दिया और आपके आप वह उस सोने के सिंहासन पर बैठ गई उसी समय बालक रूप में श्रा रामराजा भगवान साक्षात्कार प्रगट होकर गोदी में आकर विराजमान हुए और कहा कि आपकी भक्ति तपस्या पर मैं प्रसन्न हूं आप वरदान मांग लीजिये तब महारानी ने हाथ जोड़ अस्तुति की और विनती करके अपनी सारी कथा सुनाई और कहा कि आप हमारे साथ साक्षात्कार रूप में ओरछा को चलने की कृपा करें । तब हमारी हार जीत का फैसला होगा । बात की बात है

और भक्ति का प्रसंग है उपासना का मतभेद है इसी वजह से हम अपने शरीर को त्यागने की इच्छा से अवधपुरी आये थे। महाराजा साहब की महान उपासना की विजय हो जायगी। वह समरथ हैं पतिदेव हैं परम पूज्यनीय है। लेकिन वाद विवाद में मैंने आपकी भक्ति की परीक्षा करने अनुचित वचन महाराजा से कहे और आपको भी मैंने कष्ट दिया है आप इस अपराध की क्षमा प्रदान करें। मैं नारी जाति हूं अज्ञान हूं हे नाथ मैं आपसे वारम्बार क्षमा चाहती हूं।

श्री रामराजा भगवान कहते हैं कि महारानी आपकी भक्ति के वश में होकर और आपकी भक्ति की परीक्षा को सफल करने अवश्य ही ओरछा चलूंगा। परन्तु हमारे तीन वचन आपको स्वीकार करना होगा :—

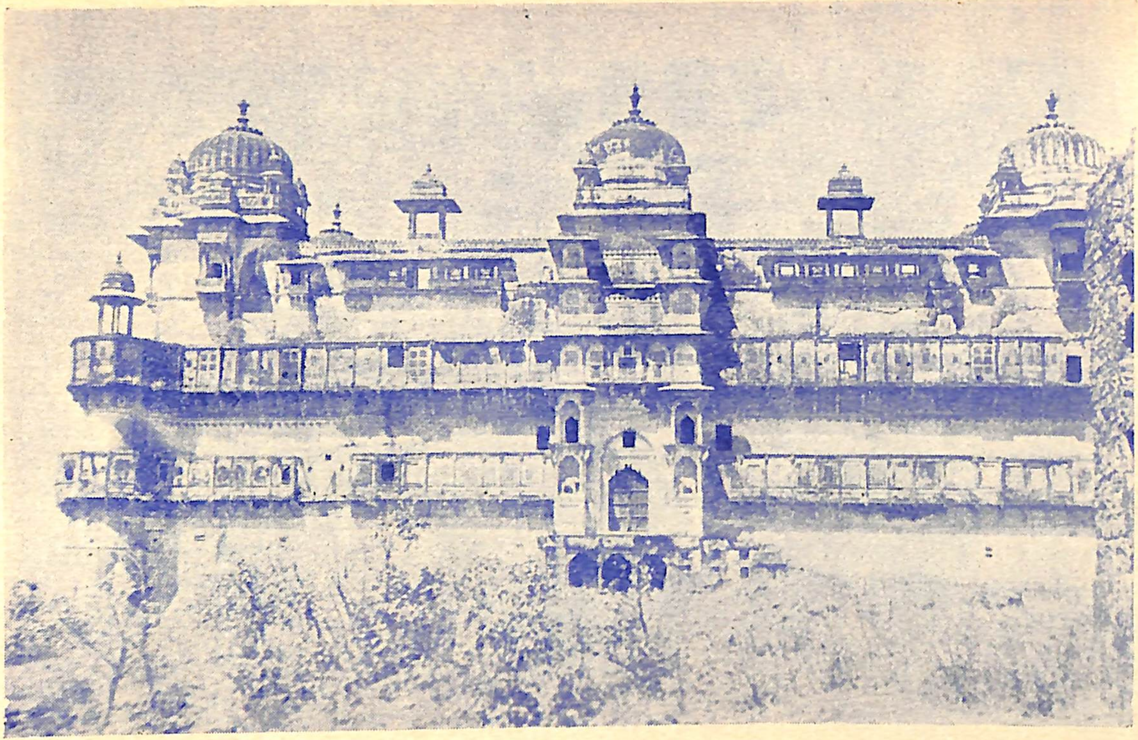
१—केवल पुष्य नक्षत्र में ही प्रेस्थान करूंगा और जहां पुष्य नक्षत्र समाप्त हो जायगा उसी जगह पर ठहर जाऊंगा। बाद में पुष्य नक्षत्र आने पर पुन: प्रस्थान होगा। क्रमश: इसी तरह अयोघ्या से ओरछा तक यात्रा होगी।

२—यात्रा पैदल होगी और साधुओं के समूह के साथ मेरा जाना ओरछा होगा।

३—सर्वप्रथम जहां पर विराजमान कराओ फिर उस भवन से अन्य दूसरे भवन (मन्दिर) में नहीं जाऊगा। मेरा ही राज्य होगा। श्री रामराजा कहलाऊंगा।

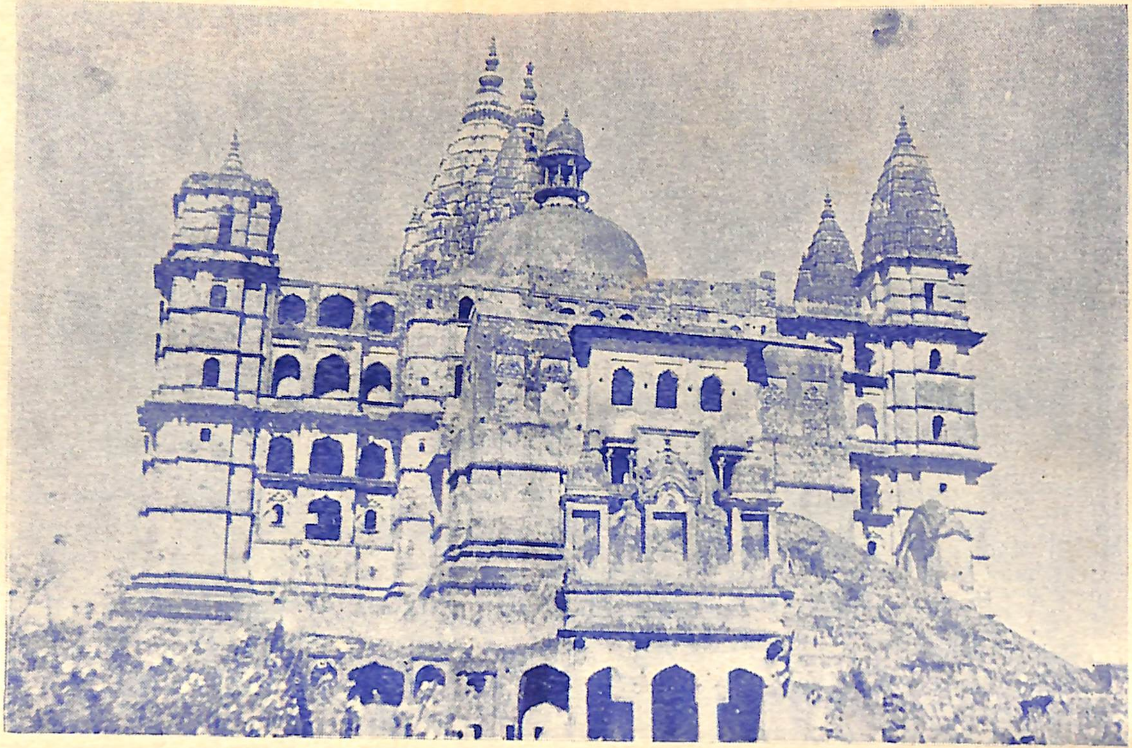
तब महारानी साहिबा गनेश कुंवरि (कमला) हाथ जोड़ करके विनती करती है कि आपके तीन वचनों का मैं पालन करूंगी।

इधर मधुकर शाह महाराज वृन्दावन से ओरछा में राजमहल में सो रहे थे। भगवान श्री रामराजा ने सपने में कहा कि आपके नगर ओरछा में हम आ रहे हैं। शीघ्र मन्दिर बनवाना शुरू कर दे और साधुओं के समूह के सहित आप शीघ्र अवधपुरी में आकर हमको लेने चले आवे। महाराजा सा



जहाँगीर महल ओरछा

फोटो : देवेन्द्र कुमार वर्मा



श्री चतुर्भुज जी का मन्दिर ओरछा

उठकर बैठ जाते हैं और मन में विचार करते हैं कि देखो महारानी की मनोकामना तो पूरी हो गई लेकिन मैं अपने इष्टदेव भगवान (श्री कृष्ण) के दर्शन को प्राप्त नहीं कर पाया। । ठीक है महारानी की अटल भक्ति थी उन्हीं की विजय हो गई ।

थोड़ी देर में महाराजा फिर सो गये और वही श्री रामराजा भगवान रूप से श्री कृष्ण भगवान के दर्शन देकर महाराजा की मनोकामना पूरी की। महाराजा साहब बहुत प्रसन्न हुए और मन्दिर निर्माण कार्य शुरू करके अपनी समाज सहित, भक्त जनों का समूह लेकर अवधपुरी पहुंचे। श्री रामराजा सरकार को सबसे पहिले कृष्ण रूप में महाराजा ने दर्शन करके बड़ा भारी विश्वास हो गया फिर बालक रूपी श्री रामराजा को गोदी में लेकर महाराजा साहब फूले नहीं समाये और महारानी साहिबा की भक्ति बड़ी सराहना करने लगे तब महारानी साहिबा ने कहा महाराज यह सब महान कार्य श्री रामराजा का दर्शन आपकी प्रेरणा से ही हुआ है। मैंने तो आपकी आज्ञा का पालन किया है यह सुनकर महाराजा साहब बहुत प्रसन्न हुए ।

अवधपुरी में इस घटना का समाचार सब जगह फैल गया अनेकों महात्मा वहां पर इकट्ठे हुए और श्री रामराजा भगवान को अयोध्या से ओरछा जाने वाले कार्य में महात्मा बाधा प्रगट करने लगे तब महात्मा तुलसीदास की अध्यक्षता में सब समाज ने इस विवाद को सुलझाने की पंचयात इकट्ठी करके सबने अपने-अपने विचार प्रगट किए। परन्तु यह बात का फैसला होना कठिन हो गया कि श्री रामराजा भगवान अयोध्या से ओरछा जावें अथवा नहीं जावे । तब अन्तिम मत महात्मा तुलसीदास जी ने अपना प्रगट किया कि जब भक्ति और तपस्या के कारण श्री रामराजा भगवान ने महारानी गनेश कुंवरि (कमला) को वरदान दे दिया कि हम ओरछा चलेंगे फिर अब यह विवाद करना अपने को अनुचित है इससे अवश्य ही श्री रामराजा भगवान को हम सब भक्त जन साथ में चलकर ओरछा तक भेजने चलेंगे ।

वरदान तो केवल श्री रामराजा भगवान ही अकेले बालक रूप से जाने का हुआ था। श्री किशोरी जी को अपने धाम अयोध्या से नहीं भेजना है। इससे श्री रामराजा का सदा निवास ओरछा और अयोध्या दोनों जगह होगा।

दो०— श्री रामराजा महाराज के, दो निवास हैं खास।
दिवस ओरछा में रहत, रैन अयोध्या वास ॥

यह प्रसग सुनकर सब महात्माओं ने बड़े भारी समारोह के सहित माह श्रावण शुल्क ५ वि० सं० १६३० में अयोध्या जी से पुख्य नक्षत्र में प्रस्थान कर दिया और चैत्र शुल्क ९ सोमवार वि० सं० १६३१ में ८ माह २७ दिन के बाद अयोध्या से ओरछा में श्री रामराजा भगवान महारानी गनेश कुंवरि (कमला) के महल में विराजमान हो गये उसी समय से तुलसीदास ने रामायण का लिखना शुरू कर दिया। ओरछा तीर्थ हो गया।

मधुकरशाह ने श्री रामराजा भगवान का जो मन्दिर बनवाया था उसके सामने किला राजमहल बनवाया था। किला से मन्दिर के दर्शन एक खिड़की में होकर बहुत आसानी से हो सकते थे मधुकर शाह ने यह खिड़की इसी आशय से सामने मन्दिर के बनवाई थी कि मैं महल के अन्दर ही से सामने बैठे श्री रामराजा भगवान के दर्शन करता रहूंगा परन्तु यह बात मधुकरशाह की श्री रामराजा भगवान ने अस्वीकार कर दी और महारानी गनेश कुंवरि (कमला) के महल (रनिवास) से फिर नहीं उठे। उसी महल को ही मन्दिर के नाम में विख्यात कर दिया।

श्री रामराजा भगवान के लिए जो मन्दिर बनवाया गया था उसमें चतुर्भुज भगवान की मूर्तियां पधराई गई थी। तब से अभी तक यह मन्दिर चतुर्भुज का मन्दिर कहलाता है इस मन्दिर पर सवा मन सोने का कलस चढ़वाया था जो अगस्त सन् ७० से नवम्बर सन् ७० तक क्रम क्रम से चोरी चला गया है। चोरी की इस घटना की जाँच अभी जारी है परन्तु कोई

पता नहीं लगा है कि सवा मन सोने की चोरी का माल कहां चला गया और कौन चोरी करके स्वर्ण कलश ले गया है।

वि० सं० १६४२ में ज्येष्ठ शुक्ल ११ गुरुवार को निर्जला ग्यास को महारानी गनेश कुंवरि का स्वर्गवास हो गया था।

महारानी गनेश कुंवरि के उपनाम कमला देवी, कमल कुंवरि और कमला कुमारी था। परन्तु प्रचलित नाम महारानी गनेश कुंवरि के ही नाम से माना गया है।

कनक भवन महिमा ग्रन्थ पृष्ठ नं० ९५ पर तथा मधुकरशाह चरित्र पुस्तक पृष्ठ नं० १४ तथा हिन्दी साहित्य पुस्तक पृष्ठ नं० २४५ पर इस प्रकार लिखा है।

ओरछा धाम सब जगह विख्यात है यहाँ पर सभी जगह से भक्त जन दर्शन करने आते हैं औरछा की प्रत्यक्ष महिमा है जो भक्तजन मनोकामना करके दर्शन करने आते हैं सबकी मनोकामनायें अवश्य ही पूरी हो जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता ही नहीं है।

एक दिन श्री रामराजा मन्दिर के द्वारे एक साधु महात्मा भूखा पड़ा था। किसी ने उस साधू के खाने पीने की बात तक न पूछी। रात को श्री रामराजा भगवान बालक रूप में महात्मा के पास जाकर पूंछा कि महात्मा जी भोजन करोगे तब साधू कहते हैं कि हम बहुत भूखे हैं। तब बालक रूपी भगवान हलवाई के पास जाकर महात्मा को भोजन कराने को कहा कि जो भी महात्मा भोजन में मांगे इनको भरपेट भोजन करा देना और यह हमारी सोने की अँगूठी अमानत में रख लीजिए सुबह हम अपनी अँगूठी वापिस लेकर तुम्हारा रुपया भोजन कराने का दे वेंजागे।

अगूठी हलवाई ने अपने पास रखली और महात्मा को प्रेम-पूर्वक भर पेट भोजन बालक रूपी भगवान की तरफ से हलवाई ने कराया।

सुबह जब पुजारी गवदू (पन्डा) पूजा करने गये तो भगवान के हा
में अंगूठा न देख कर बाहर आकर कहने लगे आज अंगूठी नहीं मिल रही
सारा सामान मन्दिर के देखा कहीं भी नहीं मिली । पता नहीं लगता कि
कहाँ अगूठी गई । आरती के बाद महाराजा साहब दर्शन करने आये तो
गबदू पुजारी ने महाराजा से कहा कि आज अंगूठी का पता नहीं लगता है
मालूम नहीं कहां चली गई है । इस बात की खबर सब जगह फैल गई औ
बाजार में भी अंगूठी की चर्चा हो रही थी तो एक हलवाई अंगूठी लेक
मन्दिर में पहुंचा । और कहां कि रात को ११ बजे यह अगूठी कोई बाल
मन्दिर से आकर हमको दे गया था एक महात्मा को भोजन कराके यह क
गये कि सुबह आपको भोजन कराने का रुपया मिल जायगा तब हम अंगू
मँगवा लेंगे। राजा ने अगूठी पहिचान ली और मिठयां (हलवाई) क
रुपया दे दिया । उसी दिन से आज तक मन्दिर द्वार पर कोई भूखा नहीं र
सकता है महाराजा साहब की तरफ से महात्माओं को भोजन कराने क
प्रबन्ध सदा से चला आ रहा है अब भी झाँसी के सेठ भक्त लोग महात्माओ
के भोजन कराने का हर समय प्रबन्ध रखते हैं । यह भगवान की महिमा है
महाराजा मधुकरशाह नृसिह भगवान के उपासक थे । एक दिन अकबर ने
इन्हें आखेट में चलने के लिए कहा पर महाराज मधुकरशाह ने निर्भीकता
पूर्वक उत्तर दिया कि मैं अपने ईष्टदेव को मारने नहीं जा सकता । यह
सुन बादशाह चुप रहा । इस प्रकार इन दोनों में विरोध बढ़ गया । अन्त में
दो बार ओरछा को विजय करने सेना भेजी । पहलीबार न्यामत कुली खाँ
और अलीकुली खां आये । और दूसरी बार जामकुली खां और सैयद कुली
खाँ आये । परन्तु दोनों युद्ध में शाही सेना को नीचा देखना पड़ा वि० सं०
१६३४ में मुहम्मद सादिक खाँ के सेनापतित्व में सेना भेजी । ग्वालियर के
राजा आसकरन तोमर भी साथ में आये थे । इन्होंने संधि करने की बहुत
कुछ कोशिश की, परन्तु महाराजा ने सुलह करना स्वीकार नहीं किया ।
इससे युद्ध छिड़ गया । होरिलराव युद्ध में मारे गये और रामशाह घायल हो
गये थे । तब दोनों में सुलह हो गई । पर यह कुछ दिन न चली । वि० सं०

१६४५ में फिर अकबर ने आसकरन और अब्दुल्ल खां को ओरछे पर आक्रमण करने को भेजा। इस बार ओरछे का कुछ भाग मुगलों के हाथ लगा किन्तु महाराज ने नहीं माना तो फिर अकबर ने मुराद के सेनापतित्व में वि० सं० १६४८ में सेना भेजी। इस समय ओरछे पर अकबर का अधिकार हो गया इसके कुछ दिनों के पीछे मधुकरशाह का देहान्त वि० स० १६४९ में हो गया। (सन् १५९२ ई०)कुल ३८ साल तक राज्य किया।

अनन्य रसिकाचार्य
श्री हरिराम व्यास

ओरछा में श्री हरिराम जी का जन्म स० १५६७ वि० अगहन कृष्ण ५ को वहां के सम्मानित सनाढ्य ब्राह्मण के कुल में हुआ था। उनके पिता का नाम समोखन शुक्ल और माता का देविका जी था। हरिराम जी बड़ी कुशाग्र बुद्धि के मेधावी बालक थे। अल्पायु में ही ये प्रकाण्ड विद्वान हो गये थे। पुराण वक्ता होने के कारण यह व्यास जी के नाम से प्रसिद्ध हुये। यह सम्बोधन इन्हें स्वयं ही इतना रूचिकर प्रतीत हुआ कि कविता के निमित्त इन्होंने अपना उपनाम 'व्यास' ही रख दिया। गुरू होने के कारण ओरछा नरेश महाराजा मधुकरशाह इन्हें 'गोस्वामी' की उपाधि से अभिहित करते थे।

यों तो व्यास जी श्री राधा–कृष्ण के युगल स्वरूप के अनन्य उपासक थे, किन्तु साधु मात्र के प्रति उनके हृदय में वह प्रगाढ़ प्रेम था कि श्री नामा दास जी ने अपनी भक्त-माल में भक्त को ही व्यास जी के इष्ट देव निरूपित किया है।

ओरछा में व्यास जी के कार्य में बाधाए उपस्थित की जाने लगी, यहाँ तक कि उन्हें ओरछा छोड़ देना पड़ा। उस समय उनकी उम्र ४५ वर्ष की थी। उन्होंने कहा कि:—

व्यास मिताई जगत की, कूकर की पहचान।
प्रति करैं तन चाटि हैं बैर करें तन हान ॥

इस प्रकार सं० १६१२ वि० मे व्यास जी वृन्दावन को चले गये। महाराज मधुकर शाह व्यास जी को ओरछा में ही रखना चाहते थे और व्यास जी वृन्दावन में ही अन्त तक निवास करने को अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ थे। उस समय महाराज मधुकर शाह ने निम्न पद लिखकर व्यास जी के पास भेजा ताकि व्यास जी ओरछा लौट आयें:—

"औड़छौ वृन्दावन सो गांव।
गोबरधन सुख सील पहरिया, जहां चरत तृन गाय।
जिन की पदरज उड़त शीस पर मुक्ति मुक्ति हो जाय।
सप्त धार मिल बहत बेतबा जमुना जल उनमान।
नारी-नर पावन हो जावत कर कर के स्नान।
जो थल तुंगारैन बखानी ब्रह्मा वेदन गायौ।
सो थल दियौ नृपति मधुकर कौ श्री स्वामी हरिदास बताओ।
परन्तु व्यास जी अन्त तक ओरछा नहीं लौटे।

ओरछा में सोने फूल आकाश से बरसे थे

इस घटना का वर्णन मधुकरशाह चरित्र पृष्ठ नं० १४ कनक भवन महिमा पृष्ठ नं० ९६ पर तथा भक्त कवि हरिराम व्यास नामक पुस्तक पृष्ठ नं० ११५ पर ऐसा लिखा है कि—

शरद निर्मल रजनी में बेतवा नदी के किनारे पर भक्त हरिराम व्यास ने ओरछा में रामोत्सव की योजना की। व्यास जी के प्रिय शिष्य मधुकर

शाह जी महाराजा ओरछा भी उत्सव में सम्मिलित हुए थे। रसिक भक्त शिरोमणि व्यास जी आनन्द में नृत्य कर रहे थे। साथ ही प्रेम विभोर में भक्त मधुकरशाह नाचने लगे। उत्सव की अलौकिकता देख करके आकाश से सुमन-बृष्टि होने लगी। वह सुमन (पुष्प) भूमि पर गिरते ही स्वर्ण के हो गये। ओरछा निवासी तथा बुन्देलखण्ड के भक्त चरित्र प्रेमी बंश परम्परा से यह कथा सुनाते हैं। गुरु शिष्य वंशावली में भी इस घटना का उल्लेख है। वेतवा नदी के उस घाट का नाम वर्तमान समय में कचना घाट कहलाता है। ओरछा की राजगद्दी पर राज्याभिषेक के समय महाराजाओं को उक्त पुष्पों के दर्शन कराए जाते हैं। ओरछा राज्य घराने में अव भी यह स्वर्ण पुष्प सुरक्षित है। लोकेन्द्र बृजोत्सव पृष्ठ नं० १५ पर है।

ऐसे शूरवीर और धर्मवीर महाराजा मधुकरशाह जी कितने ऊंचे भक्त थे यह भी भक्त माल में वर्णन है। महाराज की भक्ति का वर्णन तथा उनके द्वारा अनेकों जो चमत्कार हुए उनका गुण-गान बुन्देलखण्ड में सदा ही होता आया है।

एक वार की घटना (चमत्कार) इस प्रकार हुआ था कि श्री जुगल-किशोर भगवान का (जो वर्तमान पन्ना में हैं) मन्दिर ओरछा में था उसका द्वार फिरा दिया था। ओरछा में यह प्राचीन मन्दिर अभी भी (खन्डहर) व्यासपुरा मुहल्ला में श्री चर्तुभुज मन्दिर के ठीक पीछे दक्षिण तरफ वेतवा नदी की ओर स्थिति है। इस मन्दिर की मूर्तियां बि० सं० १६९५ (सन् १६३८ ई०) में पन्ना में जुगलकिशोर भगवान ओरछा से चले गये थे।

उस मन्दिर में महाराजा मधुकरशाह प्रति दिन कीर्तन करने जाते थे। और भगवान के सामने होकर भक्त जनों के समूह में पांव में घुंघरू बांध करके महाराजा साहब नृत्य करते थे। आप पद गान करते हुए बेसुध हो जाते थे। बाजे बजाने वाले संगीतज्ञ भी सब अनुगामी भक्त जन समूह के थे।

उस समाज में जब महाराजा साहब स्वयम् नृत्य गान करते थे, तो उस समय बिलक्षण ही आनेंन्द बरसता था ।

एक दिन महाराजा साहब को ऐमा राज्य-कार्य आगया कि अवकाश न मिलने से सयम पर मन्दिर में नहीं पहुँच सके थे । जब महाराजा साहब दर्शन करने मन्दिर गये थे उस समय भगवान की शयन आरती होकर मन्दिर बन्द हो गया था । उस समय रात्रि के १२ बजे का समय था । फिर भी महाराजा साहब अपना नित्य-नियम पूर्ण करने के लिए भगवान के मन्दिर के पीछे जाकर कीर्तन करते हुए नृत्य-गान करने लगे । उस दिन बिलम्ब के कारण सब लोग भक्त जन समूह के वापिस चले गये थे । केवल थोड़े से भक्तों के बीच उस सन्नाटे के समय ऐसा कीर्त्तन जमा कि सब की आँखों से प्रेम की अश्रुधारा वह निकली और महाराजा साहब की उस दिन बिलक्षण प्रीति-धारा बही । उस समय सहसा भगवान साक्षात् प्रगट होकर महाराजा साहब के साथ नृत्य करने लगे । उस समय भी आकाश से देवताओं ने स्वर्ण-पुष्प बरसाये थे । वह फूल सोने के थं । उमी समय मन्दिर का द्वार घूम कर पिछवाई की तरफ हो (पूर्व से पश्चिम तरफ) गया था । यह ऐतिहासिक घटना वि० स० १६३९ में हुई थी । इस प्रकार महाराजा मधुकरशाह की भक्ति ने साक्षात्कार प्रगट कर दर्शन प्राप्त किए थे । आकाश से जो स्वर्ण-पुष्प देवताओं ने बरसाये थें वह अब भी सोने के फूल (महाराजा ओरछा) टीकमगढ़ में सुरक्षित है । कनक भवन महिमा पृष्ठ ९३ से ९५ तक यह लिखा है । भक्त कवि हरीराम व्यास पुस्तक पृष्ठ नं० ११६ पर ऐसा ही लिखा है और लोकेन्द्र बृजोत्सव पुस्तक पृष्ठ नं० १५ पर लिखा है ।

महाराजा मधुकरशाह कविता भी करते थे आपकी रचना के पद व्यास वाणी पृष्ठ नं० १०८ से २०५ तक लिखे हैं । भक्त कवि हरीराम व्यास पुस्तक पृष्ठ नं० १८१ पर मधुकरशाह रचना के पद लिखें हैं । इसी पुस्तक में ऐतिहासिक समर्थन पृष्ठ नं० ९९ पर लिखा है ।

हरीराम व्यास के गुरू श्री हितहरिवंश महाराज वृन्द्रावन में राधा बल्लभीय सम्प्रदायक थे। हरीराम व्यास जी के गुरू भाई हरिदास जी थे यह संगीताचार्य माने गये हैं। हरिदास महाराज के पास तानसेन जिसका नाम त्रिलोचन दास ब्राह्मण था वि० सं० १६१५ में संगीत विद्या पढ़ने ओरछा आया था फिर वि० सं० १६३० तक तानसेन ने बृन्द्रावन में हरि-दास स्वामी से संगीत की विद्या का अध्यन किया था। इसके बाद तानसेन वि० स० १६३० में कविता करना सीख गया था। रामनिरंजन महाराजा ग्वालियर के द्वारा तानसेन आगरा में मुगल सम्राट अकबर के दरवार में रहने लगा था। तानसेन जाति ब्राह्मण थे परन्तु वि० सं० १६३५ में तान-सेन ने अपनी शादी मुसलमान की लड़की के साथ करके मुसलमानी धर्म मानने लगे और उसी समय से त्रिलोचन दास ब्राह्मण का नाम बदलकर तानसेन नाम से विख्यात हो गये थे परन्तु ब्राह्मण के बालक थे ग्वालियर में इनके माता पिता रहते थे। जो सनाढ्य कुल के बंशज थे।

भक्ति के क्षेत्र में हरीराम व्यास जाति-पांति को नहीं मानते थे। उनके इस प्रकार के उपदेश केवल शब्दों तक ही सीमित नहीं थे। एक बार महा प्रसाद की जूठन की पकोड़ीं महतर (चाँदवारी) के हाथ से उन्होंने ने पकौड़ी खाई थी। तब से बृज मण्डल में एक चर्चा का विषय बन गया है व्यास बाणी पद नं० २९ व ३० में रचना में प्रगट किया है तथा उनकी साखी में भी इसका वर्णन है। भक्त कवि हरीराम व्यास पुस्तक पृष्ठ नं० १०९ से १११ तक ऐसा वर्णन है। व्यास जी ने समाज की परवाह न करके मन, बाणी और कर्म में समानता का प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत किया है।

व्यास जी के तीन पुत्र थे—रामदास बिलासदास और किशोरदास हुए थे वह बड़े भक्त विद्वान हुये थे। व्यास जी की पत्नी सुशीला देवी थी और इनके भाई का नाम परशुराम व्यास था यह पंडिताई वृत्ति के योग्य पंडित थे।

श्री हरीराम व्यास अनन्य रसिकाचार्य का स्वर्गवास वि० स० १६६९ में १०२ साल की आयु में बृन्द्राबन में हुआ था। वहाँ पर व्यास जी के नाम पर व्यास घेरा बना है हरीराम व्यास की समाधि भी बहुत सुन्दर बनी है जो ओरछा के महाराजा वीरसिंह प्रथम ने वि० सं० १६७५ में निर्माण कराई व्यास जी के नाम से अनेक भवन वृन्द्रावन में बने हैं। हरीराम व्यास जी लिखित निम्न ग्रन्थ है।

(१) रागमाला (२) व्यास वाणी (३) व्यास सिद्धान्त (४) व्यास रस पद (५) व्यास-स्फुट पद (६) रास पंचाध्यायी (७) व्यास साखी व्यास चौरासी

हरिदासी सम्प्रदाय-मध्व सम्प्रदाय-राधाबल्लभीय सम्प्रदाय आप ही की चलाई हुई है। बृन्द्रावन में विख्यात है।

महाराजा रामशाह (वि० सं० १६४९ से वि० सं० १६६३ तक) (सन् १५९२ ई० से सन् १६०६ ई० तक महाराज मधुकरशाह के स्वर्ग वास होने के बाद उनके बड़े पुत्र रामशाह को राज्य वि० सं० १६४९ में मिला था यह स्वतत्रता पूर्वक राज्य करने के प्रयास में लगे रहे धार्मिक भक्ति भावना भी बहुत अच्छी थी। रामशाह ने अपने सात भाइयों को तथा अन्य बुन्देला ठाकुरों, प्रमार कछवाहे गौर बंश वालों को अपने राज्य को २२ जागीरों में विभाजित करके सबको स्वतंत्रता सग्राम करने का आदेश दिया उस समय से सब स्वतंत्र हो गए जागीरें निम्न प्रकार थी

पिछोर जागीर, कछौवा=बड़ौनी=मसनेह (झांसी) कुचपहरिया=गौर झामर=शिवपुरी (ग्वालियर) ऐरछ नुनामहेवा=पन्ना सागर-दमोह-पलेरा—बानपुर—चंदेरी=जाखलौन— नरवर—शाहगढ़ —टोडीफतेहपुर =बिजना ढुरबई—झाँसी कुल स्वतंत्र भाग हो गए

वि० सं० १६४९ से वि० सं० १६६३ तक अर्थात् सन् १५९२ ई०

से सन् १६०६ ई० तक १४ साल ओरछा में स्वतंत्र राज्य किया बाद में चँदेरी बानपुर के जागीरदार हो गये जिसकी आमदनी १० लाख रुपया थी वि० स० १६६६ में देहान्त हो गया था इन्हीं के बंशज मर्दनसिंह बुन्देला बानपुर के सन् १८५७ ई० के गदर में स्वतंत्रा संग्राम के प्रधान वीर हुए थे। क्रान्तकारी मर्दनसिंह बुन्देला का देहान्त वि० सं० १९२६ में वृन्द्रावन में हुआ था।

बुन्देलखण्ड

का

स्वर्ण-युग

महाराज वीरसिंह देव (प्रथम)

वि०सं० १६६३ से वि०सं०१६८४ तक सन् १६०६ई० से सन्१६२७ ई०तक

भारत प्राण बुन्देलखण्ड अपनी वीरता पराक्रम एवं शौर्य के कारण विश्व विख्यात है, इतिहास इसका साक्षी है। यहां के वीर बुन्देल शासकों ने केवल घोड़ों की टाप, तोपों की गर्जन एवं चूड़ियों की झंकार ही नहीं सुनी अपितु प्रजा के सुख की वेदिका में अपने राजसी ऐश आराम को होमकर अपनी प्रजा भक्ति का परिचय दिया है। एसे शासकों में महाराज मधुकरशाह के द्वितीय पुत्र वीरसिंह जी देव (प्रथम) का नाम बुन्देलखण्ड के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अकित रहेगा। इन्होंने अपने बुद्धि कौशल और न्याय प्रियता से प्रजा का मन मोह लिया था। इसी काल में बुन्देलखण्ड की शिल्प कला साहित्य, व्यापार, चित्रकला आदि चर्मोत्कर्ष पर थीं। अतः इसे बुन्देलखण्ड (ओरछा राज्य) का स्वर्ण युग कहना अनुचित न होगा।

वीर सिंह प्रथम मधुकरशाह ज्येष्ठ पुत्र न थे। अतः ओरछा राज्य इन्हें उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त न हुआ। दतिया के समीप स्थित केवल बड़ौनी ही इन्हें जागीर स्वरूप प्राप्त हुई।

महाराज मधुकर शाह ओरछा नरेश की दो रानी थी जिनसे आठ पुत्र पैदा हुए जो निम्न प्रकार है :—

१ महाराजा रामशाह पिता की मृत्यु पश्चात सं० १६४६ वि० से सं० १६६३ वि० तक ओरछा के राजा रहे फिर सं० १६६३ वि० से बानपुर चंदेरी के जागीरदार रहे।

२ होरलदेव सं० १६३४ वि० के युद्ध में मारे गये थे जो पिछोर के जागीरदार थे।

३ राजा इन्द्रजीत सिंह इन्हें कच्छौवा की जागीर मिली थी यहाँ पर अब तक इनके महल के ध्वंसावशेष वर्तमान है।

४ वीरसिंह देव को बड़ौनी की जागीर मिली। यह बड़े ही रणकुशल, पराक्रमी और शूर थे। इन्होंने ही अकबर जैसे प्रबल शत्रु पर अपना आतंक जमाया था बाद में सं० १६६३ वि० से सं० १६८४ वि० तक ओरछा के महाराजा हुए थे।

५ हरिसिंह देव को मसनेह (झाँसी जिले में) जागीर मिली थी।

६ प्रतापराव को कुचपहरिया की जागीर मिली थी।

७ रतनसिंह को गोरझामर की जागीर मिली थी।

८ रतनसिंह देव को शिवपुर (ग्वालियर की सिपरी) जागीर मिली थी इस प्रकार अब ओरछा रियासत के आठ भाग हो गये थे। यद्यपि यह सब ओरछा के अधीन कहाते थे पर यथार्थ में स्वतंत्र थे।

महाराज वीरसिंह देव को १७ गाँव बड़ौनी में मिले थे बड़ौनी के पुराने मनचहे लोगों से न पटी। अन्त में महाराज ने इन्हें मार भगाया। पश्चात पवायाँ सेना भेजी और इसे अपने अधीन कर लिया। तदन्तर तोमरू (तोमरगढ़) भी इनके हाथ लग गया। अब इनकी धाक चारों ओर जमने लगी। लोग इनसे भय खाने लगे। नरवर (नलपुरा) और केलारस के

निवासियों ने भी इनसे भय खाया। पश्चात इन्होंने मैना और जाटो को हराया। फिर बेरछा और करहरा ले हथनौरा पर आक्रमण किया और वहाँ के अधिकारी बाघजग जाँगड़ा को रणक्षेत्र में मार डाला। यह देख भाँडेर का मुगल सरदार हसन खाँ भागा और भाँडेर बिना प्रयास इनके हाथ लग गया। पीछे से इन्होंने ईचीखाँ से ऐरच भी छीन लिया। इस प्रकार थोड़े ही दिनों में इन्होंने सूबा ग्वालियर को हिला दिया यह देख अकबर ने, ओरछे के राजा रामशाह और ग्वालियर के आसकरन के साथ सेना देकर, वीरसिंह देव पर चढ़ाई कर दी। ये अपनी चतुरंगणी सेना ले चाँदपुर आये यहाँ पर जगमन भी शाही सेना के साथ मिल गया। इसके सिवाय हसनखाँ पठान हरधौर पमार और राजाराम पमार भी साथ में थे। आसकरन ने मुगल सेना के पूर्व में राजाराम पमार और हसन खाँ को रखा। उत्तर की ओर आसकरन और जगमन रहे। इस प्रकार वीरसिह देव के पास इतनी सेना न थी कि वह खुले मैदान युद्ध करते। इससे वह आरम्भ में इन्द्रजीत और प्रतापराव को साथ ले दोंनो ओर की सेनाओं पर छापे मार मार परेशान करने लगे। अन्त में युद्ध ठन गया इसमें रामशाह के पुरोहित मयाराम और उसका भाई खेत रहे। इससे रामशाह और आसकरन वापस आ गये वि० सं० १६५१ में आसकरन के वापस आने पर अकबर ने बहराम खाँ के पूत्र अब्बुल फजल को दक्षिण से वापस बुलाया था और इसके साथ में पंडित जगन्नाथ और दुर्गादास को भेजा। रामशाह भी शाही सेना लेकर आया इसके सिवाय अकबर ने अब्दुल्ला खाँ को भी साथ भेजा। अबुल फजल ने इन सब सरदारों के साथ एक बड़ी फौज लेकर वीरसिह देव पर चढ़ाई की। अबुल फजल ने पवायाँ में डेरा डाला। वहाँ से रामशाह ने पंडित गोविन्ददास को वीरसिह देव के पास भेजा इसने महाराज वीरसिंह देव को बड़ौनी छोड़ने की सलाह दी। परन्तु महाराज ने नगर वासियों को तो अलग कर दिया और स्वयम् युद्ध करने तैयार हो गये इन सबों ने मिलकर बड़ौनी घेर ली पर वह निकल गये और शाही फौज पर छापा मारने लगे

इनसे परेशान होकर खानखाना ने इन्हें बुलाया। यह अब्दुल्ला खाँ से मि
उसने इन्हें बादशाही मनसव दिलवाया और अपने साथ दक्षिण ले गया
उनके जाने पर बड़ौनी में शाही थाने बठ गये। इस बात से वीरसि
देव को बहुत दुख हुआ। इससे इन्होने बरार के नजदीक पहुँचने प
अब्दुल्ला खाँ से बड़ौनी की जागीर वापस माँगी परन्तु अब्दुल्ला खाँ
अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए दक्षिण में जागीर देने का बचन दि
इस समय यह दक्षिण में सूबेदारी पर जा रहा था। महाराज वीरसिंह दे
रामशाह के लड़के संग्रामशाह की सलाह से आखेट का बहाना कर वाप
चले आये इनके आते ही शाही थानों के लोग बड़ौनी से भाग गये। इस
संग्रामशाह ने भी मौका पाकर अब्दुल्ला खाँ से बड़ौनी माँग ली। यह वि
सं० १६५६ में अकबर के पुत्र शाह मुराद का दक्षिण में देहान्त हो गया
इस पर अकबर को बड़ा दुख ही हुआ इससे इसने दक्षिण जाने की तैयारी
यह आगरे से धौलपुर होता हुआ ग्वालियर आया यहाँ से इसने राजारा
कछवाहे को महाराज वीरसिंह देव के पास बड़ौनी भेजा इन्होंने इस
अच्छा आतिथ किया और सम्मत्ति भी ली। अकबर भी राजाराम
जाने के बाद मौडो जाने के लिए नरवर (नलपुरा) चला आया। यहाँ
इसे राजाराम रामशाह बुन्देला मिला और राजाराम कछवाहा भी बड़ौ
से वापिस आ गया। वि० स० १६५७ में रामशाह के पुत्र संग्रामशाह
अब्दुल्ला खाँ ने बड़ौनी जागीर में दे दी थी। पर उस पर अधिकार कर
तो दूर रहा यह लोग उस ओर देख भी न सके। इससे इन्होंने यह मौ
हाथ से न जाने दिया और बड़ौनी पर चढ़ाई करने के लिए अकबर
सहायता माँगी। अकबर तो यह चाहता ही था इसने रामशाह के सा
राजसिंह को भी एक बड़ी सेना के साथ भेज दिया। यह सुन महारा
वीरसिंह देव की सहायता के लिए राव प्रताप तो स्वयम आये और रत
शाह के लड़के इन्द्रजीत ने सेना भेजी। इस समय महारज वीरसिंह दे
की भी अच्छी तैयारी हो गई थी। इससे राजसिंह ने संधि करने

सलाह की पर महाराज ने संधि करना स्वीकार न किया । अन्त में भाई हरवंश आनन्दी पुरोहित देवा पाथक के समझाने पर ईश्वर को बीच में दें संधि करली और बड़ौनी छोड़ दी । परन्तु रार्जसिंह ने अपना प्रण न निबाहा और इनके आते ही उस गाँव में आग लगा दी । यह बात वीरसिंह देव को बहुत बुरी लगी । उन्होंने अपने कुछ चुने हुये सामन्त बकसराय प्रधान, केशोराय, चम्पतराय, मुकुट गौंड़, कृपाराम, बलवन्त यादव, को लेकर रातों रात धावा कर दिया । इधर एक मैंना ने इनके आने की खबर रार्जसिंह को दे दी रार्जसिंह ने अपने लड़के के साथ एक बड़ी सेना भेजी और दामोदर को भी उसके साथ कर दिया दोनों में घमासान युद्ध हुआ महाराज के चुने हुए सिपाहियों और सामन्तों ने डटकर युद्ध किया । यदि रार्जसिंह ग्वालियर न भाग जाता तो मारा जाता ।

अकबर के सलीम मुराद और दानियाल तीन लड़के थे इसमें से मुराद की मृत्यु हो गयी थी । और सलीम को वह चाहता भी न था । इससे दोनो में बैमनस्य हो गया । इससे सलीम वि० सं० १६५६ में आगरे से निकल भागा और इसने अवध और कहा मानिकपुर अपने अधिकार में कर लिया इधर महाराज वीरसिंह देव भी अकबर से युद्ध करते परेशान हो गये थे इससे इन्होंने यादव गौड़ सेनापति की सलाह से भावी बादशाह से भेंट करने की सलाह से प्रयाग पहुँचे । जैसे शूरवीर थे उसी तरह धार्मिक भी थे इससे पहले इन्होंने गंगा स्नान किया फिर शाहजादा सलीम से भेंट की । सलीम तो वह चाहता ही था । महाराज का यथोचित सत्कार कर उसने इन्हें अहने पक्ष में कर लिया महाराज ने भी भावी उन्नति का विचार करते हुये अबुल फजल के मारने का वचन दे दिया सलीम के राज विद्रोह करने पर अकबर ने इसे परास्त करने की इच्छा से अबुल फजल को वि० सं० १६५९ में दक्षिण से बुला भेजा महारांज वीरसिंह देव भी सैयद मुजफ्फर के साथ प्रयाग से बड़ौनी आ गये । यहां पर इन्हें अवुल फजल के आने और नरबर पहुँचने का हाल मालूम हुआ अबुल फजल ने सिन्ध नदी पार

करआंतरी के पराइछे नामक ग्राम में डेरा किया। दूसरे दिन प्रातः काल कू करते ही महाराज वीरसिंह देव ने इसे आ घेरा दोनों में घमासान युद्ध हु महाराज की बहुंत सी सेना घायल हुई पर महाराज ने अबुल फजल क खिर काट लिया और उसे वह अपने साथ बड़ौनी ले आये वहाँ से चम्पत राय की संरक्षकता में शाहजादा सलीम के पास प्रयाग भेज दिया। उ देख वह फूला न समाया इसके बाद उसने महाराज वीरसिंह देव का राज तिलक करने के लिये चम्पतराय के साथ अपना ब्राह्मण भेजा और साथ एक रतन जटित तलवार छत्र, चंवर तथा डकानिशान भी भेजे यह राज तिलक बड़ौनी में हुंआ।

वि० सं० १६५९ में महाराजा वीरसिंह देव ने अबुल फजल मार डाला जब इसकी खबर अकबर को मिली तब उसे इस बात बहुत दुख हुआ उसने दो दिन तक भोजन नहीं किया उसको सात्वना देने अं सहानुभूति दिखाने के लिए खानआजम, राजाराम कछवाहा, शेख फरी राजा भोजराय, दुर्गादास दरबारी और उमराव गये। इन लोगों ने बहुत धीरज बंधाया पर उसे धैर्य न हुआ। अन्त में उसने वीरसिंह देव पकड़ने सेना भेजी। जिसके साथ राजासिंह राजाराम रामशाह भी साथ आ ग्वालियर में इन्हें ओरछा के सुजानराय पवार, प्रतापराय और सुजान भी अपनी सेना के साथ आ मिले। वहाँ से यह सब आँतरी आये। देख शाहजादा सलीम ने राजा वीरसिंह देव को युद्ध न करने की सल दी इससे यह बड़ौनी छोड़कर दतिया चले आये। यहाँ पर राजार रामशाह और राजसिंह एक हो गये। इससे वीरसिंह देव दतिया छोड़ ऐरछ चले आये। परन्तु शाही फौजों ने उनका पीछा न छोड़ा और र आते ही उन्हें घेर लिया वहाँ वीरसिंह देव के लघु भ्राता हरसिंह देव विकट संग्राम हुआ इस युद्ध में कई बड़े बड़े योद्धा खेत रहे और जमान का पुत्र जमाल खां भी मारा गया। उसी समय महाराज दूनी ना ग्राम में चले गये। जब इस बात की खबर शाही फौज को लगी तब

भी उनको पकड़ने के लिये दूनी ग्राम पहुँची। इस प्रकार शाही फौजों को परेशान करते हुए वह दतिया चले आये यहाँ पर सलीम शाहजादे से भेंट हुई महाराज वीरसिंह देव को देख यह बहुत ही खुश हुआ। इसके पश्चात् तरड़ी बेग इन्द्रजीत को ऐरच का किला दे कछौवा चला गया। अन्त में अकबर परेशान हो गया और उसने शाहजादे सलीम को आगरे बुला भेजा। यह महाराज वीरसिंह देव को दतिया में छोड़कर वह आगरे चला गया।

महाराज वीरसिंह देव के इधर उधर भागते रहने पर उन सब स्थानों पर शाही झन्डा फहराने लगा परन्तु शाहजादा सलीम के जाते ही शाही सेना वापिस चली गई। फिर क्या था महाराज वीरसिंह देव ने इन्हें भेड़ बकरी की तरह काट डाला और उन सब स्थानों पर अपना अधिकार जमा लिया। सबसे पहले संग्रामशाह ने भांडेर पर अपना अधिकार जमाया पीछे हरिसिंह देव ने भसनेह को आधीन करना चाहा वहां पर खड़गराय से युद्ध हुआ और हरिसिंह देव वीरता पूर्वक लड़कर मारे गये। इसका वीरसिंह देव को बड़ा दुख हुआ उसी समय संग्रामशाह और वीरसिंह देव से मेल हो गया इससे सँग्रामशाह ने वीरसिंह देव को भाँडेर दे दी। उन्होंने इसके बदले में गढ़ देने की प्रतिज्ञा की। इसके बाद बीरसिंह देव दूमलौटा गये वहां पर खड़गराय से युद्ध हुआ वह सपरिवार मारा गया। फिर लहचूरा ग्राम उन्होंने संग्रामशाह को दे दिया। इसके बाद बीरसिंह देव ने खड़गराय का सिर शाहजादा सलीम के पास आगरे भेज दिया इससे शाहजादा तो खुश हुआ, परन्तु अकबर बहुत नाराज हुआ। लेकिन उसने अपना क्रोध प्रकट न होने दिया। पीछे से उसने रामदास कछवाहे को बुलाकर शाहजादा सलीम के पास भेजा परन्तु उसने वीरसिंह देव का साथ छोड़ना स्वीकार नहीं किया। इससे दोनों में फिर बैमनस्य बढ़ गया और शाहजादा सलीम आगरा छोड़कर प्रयाग चला गया। खाँड़ेराव के मरने के बाद इनके छोटे भ्राता इन्द्रजीत ने बादशाह से फरियाद की। रामदास कछवाहे के समझाने पर बादशाह ने कुछ शर्तों पर इन्हें ओरछा देना स्वीकार किया। परन्तु उन्होंने ओरछा लेना स्वीकार नहीं किया।

वि॰ सं १६६१ में सलीम की माता जोधाबाई का स्वर्गवास हो गया इस समय अकबर ने उसे बुलाया। शाहजादा सलीम को अपनी माता जोधाबाई के मरने का बहुत दुख हुआ। जब आगरे सलीम पहुँचा तो अकबर ने बहुत कष्ट दिया इससे वह आगरे से फिर निकल भागा। अकबर को खडेंराव के मारे जाने का दुख बना ही था उसने वीरसिंह देव को पकड़ने के लिए अब्दुल्ला खाँ के सेनापतित्व में सेना भेजी। परन्तु वीरसिंह देव सलीम से मिलने प्रयाग गये थे यहां से जाने के बाद उन्होंने ओरछा पर अधिकार कर लिया। इस समय सग्रामशाह ने इनका साथ दिया था। उधर अब्दुल्ला खां भी अपनी सेना के साथ खम्हरौली में आ गया फिर क्या था महाराज वीरसिंह देव भी इन्द्रजीत, संग्रामशाह, रावप्रताप, उग्रसेन, केशवदास, इत्यादि सामन्तो के साथ लिए हुए युद्ध के लिए निकले। दोनों सेनाओं का ओरछे से आधा कोस पर सामना हो गया और बात की बात में घमासान युद्ध छिड़ गया। इस समय राजा राजसिंह और अब्दुल्ला खां को प्राण बचाना कठिन हो गया। मुगल सेना ने पीठ दिखाई और वीरसिंह देव ने विजय लक्ष्मी पाई। इन्होंने शाही सेना से झन्डे के ऊपर की निशानी माही मण्तव छीन लिए। यह देख राजसिंह भी ओरछा छोड़ कठौली चला गया इस युद्ध की हार से अकबर को बड़ा दुख हुआ। अतः उसने फिर सेना भेजने का प्रबन्ध किया। किन्तु जरावस्था के कारण वह कमजोर हो गया था। इस पर भी दानियाल की मृत्यु हो गई। मुराद पहिले ही मर चुका था। इन सब कारणों से वह बीमार हो गया उसी समय सलीम आगरा चला गया सलीम के इस समर्पण से उसे क्षमा कर दिया गया उसे अपना पहिला सम्मान प्राप्त हो गया उसके विरुद्ध चल रहा षड़यंत्र असफल रहा। सम्राट की बीमारी बढ़ती गई और स्पष्ट हो गया कि उसका अन्त समय निकट है। जिस आवाज़ से न जाने कितने अभियानों का संचालन किया था अब थकित थी। वह अब बोल न सकता था किन्तु वह समझता था कि उसके चारों ओर क्या हो रहा है। सलीम अपने शय्यागत पिता की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने भूमि पर पड़कर नम्रता पूर्वक प्रणाम किया और

अपने अपराधों की क्षमा माँगी। बादशाह ने उसे राजसी वस्त्र धारण करने और अपने बिस्तर के पास पड़ी हुई हुमाँयु की तलवार अपनी कमर में लटका लेने का संकेत किया। सलीम ने उसकी आज्ञा का पालन किया। उसकी इच्छानुसार ही सलीम कमरे के बाहर चला गया। थोड़ी देर बाद ही परम प्रतापी सम्राट अकबर इस संसार से चला गया। शव सस्कार में सलीम ने एक कर्त्तव्य शील पुत्र के समान स्वयम् कन्धा लगाया।

वि० सं० १६६२ (२४ अक्टूबर सन् १६०५ ई०) को अकबर की मृत्यु के बाद सलीम जहांगीर के नाम से गद्दी पर बैठा।

सम्राट जहांगीर ने गद्दी पर बैठते ही महाराजा वीरसिंह देव को बुला भेजा। वह बड़ी खुशी से आगरा चले और अपने साथ संग्रामशाह के पुत्र भारतशाह को भी लेते गये। ऐरछ में रामशाह से भी भेंट हो गई। यहां से इन्द्रजीत को भी इन्होंने साथ ले लिया। आगरा के पहुँचते ही सम्राट ने महाराज वीरसिह देव को बड़े ही आदर से लिया और उत्साह पूर्वक भेंट की। पीछे से महाराज ने शाही दरबार में भारत शाह और इन्द्रजीत से भी सम्राट से भी भेंट करवाई। इसके पश्चात उसने महाराज को सम्पूर्ण बुन्देलखंड का राज्य दे दिया। सात हजारी मनसब का सम्मान करते हुए कुछ परगने और बहुमूल्य परितोषिक देकर बिदा किया। सम्राट ने जतारा भी दे दिया आगरे से विदा होकर महाराज ऐरछ आये यहां पर अन्याय कुटुंबियों के साथ रामशाह भी मिलने आये। पर बातों ही बातों में बिगाड़ हो गया। महाराज ने इन्हें बहुतेरा समझाया परन्तु वह पठारी वापिस चले गए। और महाराज वीरसिह देव भी पिपरहट आ गये। वहाँ पर अब्दुल्ला खां और दरिया खां मिलने आये। पीछे से रामशाह ने पठारी को छोड़ दिया और वह वनगुवां में रहने लगे। इससे पठारी में वीरसिह देव का अधिकार हो गया। इस प्रकार दोनों राजाओं के बीच में केवल आधा कोस का अन्तर रह गया। इसी समय महाराज वीरसिह देव ने इन्द्रजीत के साथ

अपने पुत्र जुझार सिंह को रामशाह के पास मिलने के लिए भेजा इससे फिर इन दोंनो में मेल हो गया। पीछे से राजा रामशाह ने अपने नाती संग्रामशाह के पुत्र भारतशाह को बरेठी भेजा। इस व्यवहार से दोनों में संधि हो गई। इससे रामशाह के मंत्रियों ने भारतशाह को महाराज के पास ही रहने दिया। महाराज वीरसिंह देव और रामशाह से एकता हो ही गई थी। भारतशाह महाराज के पास था ही। अब इन्द्रजीत के आने पर रामशाह ओरछा चला आया। यहाँ से इसने अंगद-प्रेमा और केशवदास मिश्र को चिरस्थायी संधि करने के निमित्त भेजा, किन्तु प्रेमा और अंगद ने संधि के बदले विग्रह करा दिया। इन दोनों ने राजा रामशाह और रानी कल्याण देवी के कान भर दिये जिससे इन्होंने भारतशाह को बरेठी से बुला लिया इसी समय से कुलनाश का अकुर फूट गया और विग्रह शुरू हो गया वीरसिंह देव भारतशाह के चले आने पर वि० स० १६६३ में बरेठी से वीरगढ़ चले गये और उन्होंने बबीना पर अधिकार कर लिया। इधर भारतशाह के आ जाने पर रामशाह भी युद्ध की तैयारी करने लगा। यद्यपि केशवदास ने फिर भी समझाया पर इनके मन में एक भी अच्छा नहीं लगा। महाराज वीरसिंहदेव भी अपनी सेना तैयार कर ओरछे पर आक्रमण करने का विचार करने लगे। इतने में जहांगीर ने कालपी के सूबेदार अब्दुल्ला खाँ को ओरछे पर आक्रमण करने भेज दिया। मुगल सेना के आते ही रामशाह ने इन्द्रजीत और राव भूपाल को युद्ध स्थल पर भेजा इन दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हो गया मुगल सेना भागने वाली थी कि महाराज वीरसिंह देव युद्ध स्थल पर पहुँच गए इनको देखते ही राव भूपाल शंकित हो उठे और इन्द्रजीत पहिले ही घायल हो मूर्छित हो गये।

इससे इनके साथी इन्हें रणभूमि से उठा ले गये। फिर क्या था मुगल सेना दुगने उत्साह से युद्ध करने लगी जिससे राव भूपाल के भी पैर उखड़ गये महाराजा वीरसिंह देव ने देखा कि कुलनाश हुआ ही चाहता है तब उन्होने अपने सामन्त सुन्दर प्रधान को संधि करने के लिये रामशाह

राजा के पास भेजा परन्तु राजा रामशाह वीरसिंह देव से नहीं मिले और अब्दुल्लाखां से मिलने रामशाह गये तो उसने रामशाह को गिरफ्तार कर लिया। और दिल्ली कैंद करके ले गया। इसका महाराज वीरसिंह देव को दुख हुआ अब इन्हें रामशाह को कैंद से छुड़ाने की चिन्ता हुई इससे उन्होंने हरि को तो ओरछा के प्रबन्ध का भार दिया और राव भूपाल को बीहठ इन्द्रजीत को गढ़ कुडार और प्रतापराव को बेंधा की जागीर देकर रामशाह को कैंद से छुड़ाने के लिये आगरा चले गये। इनके जाते ही देवराय ने भारतशाह को साथ में लेकर पठारी पर अधिकार कर लिया और वेतवा किनारे के कई गाँव जला डाले। इनके जाते ही जहाँगीर ने वीरसिंह देव को मधुकरशाह का सारा राज्य दे दिया और रामशाह को चँदेरी और बानपुर का राज्य दे दोंनो में मेल करा दिया। महाराज को जब यहाँ की सब घट॰ नाओं का हाल मालूम हुआ तब वह आगरे से चले आये और यहाँ आते हीं शान्ति हो गई।

महाराज वीरसिंह देव के तीन विवाह हुये (१) शाहावाद के दीवान श्यामसिंह धधेरे की कन्या अमृत कुंवरि से हुई इससे इन रानी के पाँच लडके हुए जुझारसिंह, पहाड़सिंह, नरहरिदास, तुलसीदास, बैनीदास लड़कों ने जन्म लिया था इनमें से जुझारसिंह और पहाड़सिह ओरछे के राजा हुए नरहरिदास को धामौनी, तुलसीदास को गढ़ तथा बैनीदास को पहारी की की जागीर दी गई। (२) दूसरा विवाह खैरवान के प्रमारसिंह की कन्या गुमान कुंवरि के साथ हुआ। इन रानी से चार पुत्र पैंदा हुए औरएक कन्या भी पैंदा हुई। दिमान हरदौल को बड़ागाँव, भगवन्त राव को दतिया, चन्द्र-भान को जैतपुर कोंच आदि परगने, तथा किशुनसिंह को देवराहा मिला, कन्या कुंजावति (कुंजकुंवरि) का विवाह दतिया के राजा देवीसिंह राजा के साथ हुआ था इन्हीं की गद्दी पर भगवन्त राव राजा हुये थे। (३) तीसरा विवाह शहर शाहबाद के पूरनसिंह धंधेरी की कन्या पंचम कुंवरि के साथ हुआ था। इन रानी से तीन पुत्र पैदा हुए (१ बाघराज-गरौली के

जागीदार (२) माधवसिंह को खरगापुर जागीर दी गई (३) परमानन्द ओरछा ही उपस्थिति रहे।

उस समय महाराज के प्रधान योग्य सेनापति कृपारामासिंह गौर थे और पं० कान्हरदास ब्राह्मण मंत्री थे।

वि० सं० १६७५ में श्री चतुर्भुज मन्दिर को पूर्ण करवाया था इस मन्दिर पर अमरेश द्वारा सवा मन सोने का कलश वि० सं० १६६३ (सन् १६०६ ई०) में चढ़वाया गया था उसी समय पन्ना के विशाल मन्दिर श्री जुगल किशार (पन्ना) पर सवा मन सोने का कलश चढ़वाया था जो स्टेट पन्ना गजेटियर पृष्ट १७४ पर ऐसा लिखा है।

इस सवा मन सोने की चोरी अगस्त ७० से लगायत माह नवम्बर ७० तक क्रमशः होती रही थी। सन् १९७० में स्वर्ण कलश चोरी चला गया है। इसकी जाँच हो रही है। अभी तक स्वर्ण कलश की चोरी का पता नहीं चला है।

दिनाँक १८/१९ अगस्त ७० पहली घटना चोरी की हुई स्वर्णकलश की
दिनाँक १२/१३ सितम्बर ७० दूसरी ,, ,, ,,
दिनाँक २२/२३ सितम्बर ७० तीसरी ,, ,, ,,
दिनाँक १३/१४ अक्टूबर ७० चौथी ,, ,, ,,
दिनाँक ५/६ नवम्बर ७० पाँचवी ,, ,, ,,

आचार्य के रूप में केशव ने हिन्दी काव्य धारा को एक नई दिशा प्रदान की। यह कहना अनुययुक्त न होगा कि बुन्देलखण्ड का गौरव केशव ने ही बढ़ाया था।

वि० स० १६६३ में जहाँगीर स्वयं वीरसिंह के राज्य सिंहासन

रोहण के अवसर पर ओरछा पधारा था। राजा ने इस उपलक्ष्य में बड़ा समारोह मनाया। फूल बाग उसकी स्मृति में सजाया गया। जहाँगीर महल आज भी इस बात की याद दिलाता है। ओरछा के फूलबाग में एक विशाल प्रस्तरीप प्याला है जिसे वीरसिंह देव ने जहाँगीर के स्वागत के उपलक्ष में मधुर मदिरा के लिए स्थापित किया था। राज्य की आमदनी दो करोड़ रुपया वार्षिक कर ली।

महाराज वीरसिंह जू देव महान् धार्मिक व प्रजा पालक शासक थे। इनकी न्यायप्रियता करुणा एवं सहानुभूति से बुन्देलखण्ड के इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। इनके राज्य में कुल ८१ परगने एवं एक लाख पच्चीस हजार गाँव थे। तलवार के धनी होने के साथ-साथ महाराज एक कुशल शासक थे। राज्य संचालन का उन्हें पूरा-पूरा ज्ञान था। उन्होंने ऐसे अनेक लोकोपयोगी, सामाजिक एवं धार्मिक कार्य किये हैं जिनसे वे बुन्देलखण्ड के जनप्रिय शासक कहे जाते हैं। संक्षेप में उनके मुख्य महान् कार्य इस प्रकार हैं।

इक्यासी मन सोने की तुलादान

महाराज वीरसिंह जू देव के हृदय पटल पर भक्ति की तरंगे सदैव ही उठती रहती थी। महान् वीर योद्धा होने के अतिरिक्त वे एक भक्त हृदय शासक थे। उन्होंने बुन्देलखण्ड के बाहर अन्य क्षेत्रों में भी मन्दिरों का निर्माण करवाया तथा अनेक धार्मिक कार्य किये हैं। उनकी अटूट ईश्वर भक्ति का जीता जागता उदाहरण है उनके कर कमलों द्वारा की गई इक्यासी मन सोने का तुलादान जिसने उन्हें सदा के लिए अमर कर दिया।

महाराज वीरसिंह जू देव तीर्थ यात्रा के लिए मथुरा गये थे। वहाँ पर वे ९ मन सोना दान करना चाहते थे। अपना यह लक्ष्य उन्होंने अपने ९ राजकुमारों को लिखा। उनके पत्र का आशय सभी राजकुमारों ने पृथक

पृथक ६ मन सोना भेजने का लगाया। महाराज के सभी राजकुमारों ने अपने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए मथुरा में ८१ मन सोना भेज दिया। इस प्रकार ६ मन सोने के स्थान पर जब ८१ मन सोना इकट्ठा हो गया तब महाराज ने मथुरा के विश्राम घाट पर ८१ मन सोने का तुलादान किये। महाराज द्वारा तुलादान किये गये स्थान पर आज भी तुला स्थान पर उस तुलाको देखकर कथा सुना सकते हैं।

इष्टपूर्ति यज्ञ एवम् ५२ इमारतों का निर्माण

महाराज वीरसिंह जू देव के शासन काल में अनायास दुर्भिक्ष पड़ गया। इस महान् दुर्भिक्ष का समाधान करने के लिए महाराज ने माघ सुदी ५ सं० १६७५ वि० के शुभ मुहुर्त में इष्टपूर्ति यज्ञ करके ५२ इमारतों का शिलान्यास किया था।

"On Sunday the 5th Magh Sudi V. S. 1675 December 1618 the foundation of 52 buildings are said to have been laid". Orchha State Gazettier P. 23.

इस मुहूर्त में बने हुए विशाल भवन आज भी अपने पुरातन वैभव का निनाद कर रहे हैं। कई तालाब अपने अतीत की कहानी कहते हुए बुन्देलखण्ड को जलपान करा रहे हैं। उनके ५२ निर्माणों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है:—

केशव देव का मन्दिर

१-यह विशाल मन्दिर, मथुरा में बनवाया था। जिसकी विशालता के सम्मुख सम्राट औरंगजेब इतना ओरछा हो गया था कि अपनी धर्मान्धता के वशीभूत होकर सं० १७२६ वि० में उसने उसे तुड़वा दिया। इस मन्दिर

के निर्माण में ३३ लाख रुपये लगे थे। उस मन्दिर की चौकी पर बनी हुई इमारत उस ऐतिहासिक निर्माण के स्थान मात्र का संकेत कर सकती हैं–

"इस मन्दिर के निर्माण में तेतीस लाख रुपया व्यय हुआ था। वीर सिंह देव ने बड़ा दान भी किया था। मथुरा के विश्राम घाट पर ८१ मन सोने की तुला का दान किया था"।

पन्ना स्टेट गजेटियर पृष्ठ नं० १७४ पर अंकित हैं।

२–दतिया का वीरसिंह देव महल नौ खण्डों का एक अत्यन्त विशाल भवन है। यह स्वास्तिक के आकार को आधार में लेकर विन्ध्याचल की एक पहाड़ी पर निर्मित हुआ है। दतिया में यह पुराना महल (Old Palace) के नाम से ही प्रसिद्ध है। 'मआसिलरुल उमरा' में वीरसिंह जू देव के परिचय में लिखा है कि 'दतिया का राजमहल इन्हीं का बनवाया है, जिसके चारों ओर ३४ फुट ऊंची दीवार दी गई है। इसके बनने में लगभग ६ वर्ष लगे थे और ३५ लाख से अधिक रुपये व्यय हुए थे। (मआसिलरुल उमरा फारसी का हिन्दी अनुवाद, १ पृष्ठ ३६६ दतिया स्टेट गजेटियर नं० ६७ पर अंकित)

इस विशाल भवन के किसी भी द्वार में किवाड़ नहीं लगे हैं तथा उसका एक भाग अपूर्ण है। इससे प्रकट होता है कि वीरसिंह देव की मृत्यु होते ही इस पर आगे निर्माण कार्य जारी न रहा।

३–ओरछा का जहाँगीर महल बहुत कुछ दतिया के पुराने महल से मिलता-जुलता है। कहा जाता है कि यहाँ जहांगीर ने वीरसिंह का आतिथ्य स्वीकार किया था। अतः उन्हीं के नाम पर इस महल का नामकरण हुआ।

४–सन् १८५७ ई० के गदर में जिस दुर्ग से झाँसी में रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों पर गोले बरसाये थे वह किला वीरसिंह देव ने ही बनवाया था।

५–दतिया और माँडेर के बीच निर्जन बन में चन्देवा की बावड़ी भी (५२ निर्माणों में एक है। इसके चारों ओर विशाल दालाने सहस्त्रों व्यक्तियों क आश्रय दे सकती हैं। (६) उबरा के निकट (दतिया) सिन्ध नदी के किना श्री धूमेश्वर महादेव जी का विशाल मन्दिर बनबाया (७) मड़िया (टीक-मगढ़) में वीर सागर (८) कुंडार में सिंह सागर (९) दिनारे में दे सागर नामक तीन बड़े तालाब (१०) काशी में मणिकर्णिका घाट (११) विश्वेश्वर मन्दिर (१२) सिरौल में शिवालय (१३) ओरछा में चतुर्भु मन्दिर।

ब्रज में इन्होंने अनेक मन्दिर, घाट, कुण्ड आदि बनवाये जिनमें अधिकांश अभी वर्तमान हैं। (१४) वृन्दावन में हरीराम व्यास की समा (१५) कालीदह घाट (१६) इमला घाट (१७) ऊंची हवेली (१८) महा-प्रभु की बैठक (१९) बुन्देला बाग (२०) व्यास जी की बगीची (यह यमुन की बाढ़ में बहगई) (२१) बैन कूप (२२) वन खण्डेश्वर महादेव (वृन्द्रावन के व्यास सेरा मुहल्ला में) (२३) चतुरदासी की बगीची (२४) वीरसिंह गली 'वृन्द्रावन में राधा वल्लभ जी के मन्दिर के पास (२५) टक्सार गली में एक मकान (२६) ब्रह्मकुण्ड (२७) सेठ दिवाली (२८) विश्राम घाट (२९) काशी शेषसायी भगवान का मन्दिर (३०) बरसाने में श्री लाड़ली जी का मन्दिर (३१) कोकिला वन में कुण्ड (३२) वन्सीवट साकेत (३३) वरसाने का कुण्ड (३४) विमला देवी का मन्दिर (३५) वृन्द्रावन में श्री बिहारी जी का मन्दिर (३६) गोकुल में गोप कूप (३७) यमलार्जुन का मन्दिर (३८) नारद कुण्ड (कुशल सरोवर के पास) (३९) कल्लोल कुण्ड गोवर्धन (४०) गोपाल कुण्ड जतीपुरा (४१) गुलाल कुण्ड गाठौली (४२) चौरासी खम्भा का भवन (४३) गोविन्द कुण्ड, अनौर (४४) गोविन्द जी का मन्दिर अनौर (४५) मदन मोहन जी का मन्दिर महावन (४६) अक्रूर घाट पर देवालय (४७) वऊ जी का मन्दिर हसराज (४८) नर्मदा तट पर मन्दिर और दुर्ग (४९) मोंठ में बावरी (५०) ओरछा का बगीचा

(५१) ओरछा में सावन-भादों (राज वेध शाला (५२) पिछोर खनिया धाना में किला बावरी और तालाब।

भौतिक ५२ भवनों की नींव डालने के साथ-साथ परोक्षरूप से अगनित शिलान्यास किये। किला धामौनी, श्री लक्ष्मी जी का मन्दिर एवं श्री बनोवासी भगवान का मन्दिर ओरछा में बनवाये थे।

वीरसिंह जू का अद्भुत न्याय

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है महाराज वीरसिंह जू देव प्रजा के हितैषी और महान् न्याय प्रिय शासक थे। उन्हें सदैव प्रजा की सुख सुविधाओं का ध्यान रहता था। वे प्रजा की प्रत्येक बात को महत्व देते थे तथा उसी की इच्छानुसार कार्य करते थे। प्रजा के द्वारा अपने पुत्र की शिकायत किये जाने पर इन्होंने अपने पुत्र को मृत्युदण्ड दिया था। जिसकी घटना इस प्रकार है।

एक बार महाराज के राजकुमार शिकार खेलने वन में गये। वन में उन्हें एक हिरण दिखायी दिया किन्तु कुछ समय पश्चात् ही राजकुमार की आखोंसे वह हिरन ओझल हो गया। हिरण की तलाश में राजकुमार वन में आगेबढ़ते ही गये। कुछ दूर आगे जाने पर उन्हें एक साधु दिखाई दिया। राजकुमार ने साधु से हिरण का पता पूंछा तो साधु मौन रहा। साधु के मौन रहने का अर्थ यह लगाया कि मैं जिस मार्ग से जा रहा हूं हिरण इसी मार्ग से गया है क्यों कि राजकुमार ने साधू से यह पूंछा था कि "महाराज जिस रास्ते में जा रहा हूं हिरण क्या इसी रास्ते से गया है"? इस पर साधू की मौन स्वीकृति लेकर राजकुमार वन में आगे बढ़े। वे दिन भर हिरण को खोजते रहे, किन्तु हिरण न मिला। अन्त मे सायकाल क्रोध में चूर होकर राजकुमार वापिस लौटे और उन्हें व्यर्थ परेशान करने का दोषी साधू को मानकर उस पर अपने भूखे शिकारी कुत्ते छोड़ दिये। शिकारी कुत्तों ने साधू को जीवित ही नोचकर उसका मांस खा लिया। फलस्वरूप साधू के प्राण पखेरू उड़गये। शिकार खेलने के लिए राजकुमार के साथ

५-दतिया और मांडेर के बीच निर्जन बन में चन्देवा की बावड़ी भी (५२ निर्माणों में एक है। इसके चारों ओर विशाल दालाने सहस्त्रों व्यक्तियों को आश्रय दे सकती हैं। (६) उबरा के निकट (दतिया) सिन्ध नदी के किनारे श्री धूमेश्वर महादेव जी का विशाल मन्दिर बनवाया (७) मड़िया (टीकमगढ़) में वीर सागर (८) कुंडार में सिंह सागर (९) दिनारे में देव सागर नामक तीन बड़े तालाब (१०) काशी में मणिकर्णिका घाट (११) विश्वेश्वर मन्दिर (१२) सिरौल में शिवालय (१३) ओरछा में चतुर्भुज मन्दिर।

ब्रज में इन्होंने अनेक मन्दिर, घाट, कुण्ड आदि बनवाये जिनमें से अधिकांश अभी वर्तमान हैं। (१४) वृन्दावन में हरीराम व्यास की समाधि (१५) कालीदह घाट (१६) इमला घाट (१७) ऊंची हवेली (१८) महाप्रभु की बैठक (१९) बुन्देला बाग (२०) व्यास जी की बगीची (यह यमुना की बाढ़ में बहगई) (२१) बैन कूप (२२) वन खण्डेश्वर महादेव (वृन्द्रावन के व्यास सेरा मुहल्ला में) (२३) चतुरदासी की बगीची (२४) वीरसिंह गली 'वृन्द्रावन में राधा वल्लभ जी के मन्दिर के पास (२५) टकसार गली में एक मकान (२६) ब्रह्मकुण्ड (२७) सेठ दिवाली (२८) विश्राम घाट (२९) काशी शेषसायी भगवान का मन्दिर (३०) बरसाने में श्री लाड़ली जी का मन्दिर (३१) कोकिला वन में कुण्ड (३२) वन्सीवट साकेत (३३) बरसाने का कुण्ड (३४) विमला देवी का मन्दिर (३५) वृन्द्रावन में श्री बिहारी जी का मन्दिर (३६) गोकुल में गोप कूप (३७) यमलार्जुन का मन्दिर (३८) नारद कुण्ड (कुशल सरोवर के पास) (३९) कल्लोल कुण्ड गोवर्धन (४०) गोपाल कुण्ड जतीपुरा (४१) गुलाल कुण्ड गाठौली (४२) चौरासी खम्भा का भवन (४३) गोविन्द कुण्ड, अनौर (४४) गोविन्द जी का मन्दिर अनौर (४५) मदन मोहन जी का मन्दिर महावन (४६) अक्रूर घाट पर देवालय (४७) वऊ जी का मन्दिर हसराज (४८) नर्मदा तट पर मन्दिर और दुर्ग (४९) मोंठ में बावरी (५०) ओरछा का बगीचा

(५१) ओरछा में सावन-भादों (राज वेध शाला (५२) पिछोर खनिया धाना में किला बावरी और तालाब।

भौतिक ५२ भवनों की नींव डालने के साथ-साथ परोक्षरूप से अगनित शिलान्यास किये। किला धामौनी, श्री लक्ष्मी जी का मन्दिर एवं श्री बनोवासी भगवान का मन्दिर ओरछा में बनवाये थे।

वीरसिंह जू का अद्भुत न्याय

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है महाराज वीरसिंह जू देव प्रजा के हितैषी और महान् न्याय प्रिय शासक थे। उन्हें सदैव प्रजा की सुख सुविधाओं का ध्यान रहता था। वे प्रजा की प्रत्येक बात को महत्व देते थे तथा उसी की इच्छानुसार कार्य करते थे। प्रजा के द्वारा अपने पुत्र की शिकायत किये जाने पर इन्होंने अपने पुत्र को मृत्युदण्ड दिया था। जिसकी घटना इस प्रकार है।

एक बार महाराज के राजकुमार शिकार खेलने वन में गये। वन में उन्हें एक हिरण दिखायी दिया किन्तु कुछ समय पश्चात् ही राजकुमार की आखोंसे वह हिरन ओझल हो गया। हिरण की तलाश में राजकुमार वन में आगेबढ़ते ही गये। कुछ दूर आगे जाने पर उन्हें एक साधु दिखाई दिया। राजकुमार ने साधु से हिरण का पता पूंछा तो साधु मौन रहा। साधु के मौन रहने का अर्थ यह लगाया कि मैं जिस मार्ग से जा रहा हूं हिरण इसी मार्ग से गया है क्यों कि राजकुमार ने साधू से यह पूंछा था कि "महाराज जिस रास्ते मैं जा रहा हूं हिरण क्या इसी रास्ते से गया है" ? इस पर साधू की मौन स्वीकृति लेकर राजकुमार वन में आगे बढ़े। वे दिन भर हिरण को खोजते रहे, किन्तु हिरण न मिला। अन्त मे सायकाल क्रोध में चूर होकर राजकुमार वापिस लौटे और उन्हें व्यर्थ परेशान करने का दोषी साधू को मानकर उस पर अपने भूखे शिकारी कुत्ते छोड़ दिये। शिकारी कुत्तों ने साधू को जीवित ही नोचकर उसका मांस खा लिया। फलस्वरूप साधू के प्राण पखेरू उड़गये। शिकार खेलने के लिए राजकुमार के साथ

प्रजाजन, दरवारी व सैनिक आदि गये थे। सभी को राजकुमार का यह दुष्कर्म अखरा गया।

वन से वापिस लौटते ही प्रजाजनों ने महाराज से राजकुमार की शिकायत की और सारा वृतान्त सुनाया। राजकुमार के अपराध को सुनकर महाराज ने प्रजाजनों से कहा कि "तुम धैर्य धारण करो, वीरसिंह के राज्य में कभी अन्याय नहीं हो सकता। मैं अपने पुत्र के साथ पक्षपात न करूंगा"।

दूसरे दिन महाराज ने राज दरवार किया। जिसमें अपने सभी दरवारी, मन्त्री और प्रजाजनों को आमन्त्रित किया। दरवार भर जाने पर महाराज ने अपने अपराधी राजकुमार को बुलाया और उससे सही-सही बात पूंछी। उपस्थित दरवारियों से भी महाराज ने घटना की जानकारी ली और अन्त में भरे दरवार के मध्य अपने पुत्र कानिर्णय घोषित करने का विचार करने लगे।

यह दुखद समाचार सुनकर महाराज का हृदय आहत हो उठा था। हिन्दुत्व ने अंगड़ाई ली, क्षत्रित्व ने ललकारा। न्याय ने उन्हें आत्म चिंतन के लिए कहा एवं विवेक ने उन्हें सही मार्ग-दर्शन दिया। इसके फलस्वरूप महाराज ने बुन्देला शासकों की लाज रखने के लिए एवं प्रजा को सही न्याय देने के लिए अपने दरवारियों एवं प्रजाजनों के सामने अपने राजकुमार को मृत्युदण्ड देने का निर्णय सुनाया। यह अद्भुत न्याय सुनकर सभी आश्चर्य चकित होकर महाराज के न्याय की सराहना करने लगे। महाराज के आदेशानुसार राजकुमार को मृत्युदण्ड दिया गया। इस प्रकार न्याय की वेदिका पर अपने लाड़ले बेटे एवं गोद के श्रृंगारको होम कर महाराज ने अपने स्वाभिमान की रक्षा कर बुन्देलों का नाम अमर कर दिया जो सदियों तक कायम रहेगा।

अकबर के समय में यह राज्य मुगलों के अधीन रहा। उस प्रतापी सम्राट के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में वीरसिंह देव के नेतृत्व में बुन्देलों ने अपनी खोई सत्ता प्राप्त करने हेतु प्रयास प्रारम्भ कर दिये। विवाह

पंचमी, रामनवमी के अवसर पर ओरछा में बड़े-बड़े मेला लगवाते। इन मेलों में रण कौशल सम्बन्धी प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता। मल्लयुद्ध, बनेले हिंसक पशुओं से पेंतरे बाजी, घुड़सवारी की प्रतियोगिता हाथियों का दंगल इस कार्यक्रम के विशिष्ट अंग होते। मृत्यु कोलल करने वालों को सम्मानित किया जाता। योग्य व्यक्तियों को सेवा में लिया जाता दूर-दूर से लोग अपने करतब दिखा पुरस्कार और सम्मान प्राप्ति की लालसा से ओरछा में उपस्थित होते थे। सुदृढ़-सैन्य-शक्ति निर्माण हेतु कुशल योद्धाओं की खोज इन प्रतियोगिताओं द्वारा करना महाराज का लक्ष्य था। उनकी सूझ बूझ, साहस और शौर्य का ही परिणाम था कि अगले २५ वर्ष में बुन्देलखण्ड का बड़ा राज्य संगठित हुआ और ओरछा ने यौवन पाया।

जब आप ओरछा जायें तो वहां के निवासी सुरङ्गों के बारे में जिन्हें भोंयरा कहा जाता है, कहानियां सुनाते हैं। फूलबाग में ऐसे एक भोंयरे का द्वार अच्छी हालत में विद्यमान है। उपयोग में न आने से यहां भोंयरे समयानुसार भुला दिये गये। उनकी हालत खस्ता हो गई और उनमें प्रवेश करना कठिन हो गया। भूले भटके घुस जाने पर दुर्घटनायें हो जाती हैं। अतः इन्हें बन्द करवा दिया गया। उस काल में जबकि किले की रक्षा को सुदृढ़ इकाई माना जाता था, भोंयरों का अपना महत्व था। तब किले ऐसे बनते थे कि शत्रु का आक्रमण होने पर किले के फाटक बन्द कर महीनों तक उसका सामना किया जा सके। किले का घेरा पड़ने पर किले में बन्द लोगों का बाहर से सम्पर्क टूट जाता था। सुरंगों के द्वारा यह सम्पर्क गुप्त रीति से सम्भव था। किले के निर्माण के साथ साथ इन सुरंगों का भी निर्माण कराया जाता। गढ़ टूटने की दशा में इन गुप्त मार्गों से राज घराने के लोग बच निकलते। गुप्त भेंट वार्ताओं के लिये इनका उपयोग किया जाता। इन मार्गों के बारे में खास लोगों को ही पता रहता था। किला जहाँगीर महल, राज महल, शीशमहल के नीचे बहुत

विशाल सुरंग और भोंयरे अच्छी हालत में बने हैं। जाने के मार्ग गुप्त बने हैं। इन सुरंगों द्वारा नीचे ही नीचे जंगल तक जाने का रास्ता है। प्रत्येक इमारत के नीचे तहखानें बने हुए हैं। किले से फूलबाग, किले से प्रवीणराय के भवन तक रास्ते हैं।

ओरछा के इतिहास में उन्नति काल का श्री गणेश हुआ। बिन्दा और महेबा के जागीरदार महाराज के लिए उनकी शक्ति का स्तम्भ बने महाराज को उन पर गर्व था। वह भी उनके इशारे पर मृत्यु का भय खाये बिना कठिन से कठिन कार्य हेतु कमर कसे रहते। पूरी सेना का इतना भय न था जितना कि इनका किसकी मजाल जो उनके सामने आंख उठा सके। कहने के लिए इन्हें अधिकृत-रूप से कोई पद तो न दिया गया पर अपने अपने क्षेत्र की हर कार्यबाही में इनका हाथ रहता। बिन्दर की रूचि रिसाले में थी। नियमित रूप से कुछ न होते हुये भी बहुत कुछ थे।

महाराज वीरसिंह जू देव ने अपने शासन काल में शान्ति व्यवस्था की स्थापना की थी।

महाराजा वीरसिंह देव द्वारा खजाने की स्थापना वि० सं० १६५७ में निम्न प्रकार स्थानों में धन गढ़ा है

१ सैयर के पहाड़ में धन धरो २५०००० लाख रुपया
२ सिरौल की हवेली में भीतर की दालान दक्षिण तरफ की पर्दा में धन २५०००० लाख रुपया
३ दतिया के किले के चौक में धन ७५०००० लाख रुपया
४ दिनारे के तालव के बाँध में धन १७०००० लाख रुपया
५ ओरछा के नौ चौकिया महल में २२५००००० लाख रुपया
६ जहांगीर महल के पूर्वी तहखाना में ४५०००००० लाख ,,
७ किला झांसी के दक्षिण परदा तहखाना में ६०००००० लाख रुपया
८ जैतपुर के गंगोही परदा में १३५००० लाख रुपया

९ दतिया के महल में आगे के चौक में ५११०००० लाख रुपया
१० सेवड़ा के महल में गंगोही परदा ५५०००० लाख रुपया
११ सिरौल की मडिया के पास ७१५००० लाख रुपया
१२ दिनारे के तालाब के पास चीरा लगो २१०००० लाख रुपये
१३ बाऊनी में खजानों ३६१७०००० लाख रुपये
१४ दतिया महल के पीछे १७५०००० लाख रुपया
१५ सेवड़ा के किले के पीछे ३२००० लाख रुपया
१६ कुपराम गोरे की हवेली में ३०५००० लाख रुपया

कुलनकदी रुपया गढ़े जमीन में ६३६४८०००० लाख रुपया

१७ राजा ताल ओरछा में बीजक लगो संख्या का अंक नहीं कितना है
१८ राय प्रवीन महल के तहखाने में नौ लखाहार एक खन जरित सोने का सिंहासन तथा ७ दिन को सम्पूर्ण पृथ्वी भर को भोजन राशि है। आगे भाग और सामने के भाग में बीजक लगे हैं।

चम्पतराय को महेबा (नुना) की जागीर मिली थी। यह जागीर भी ओरछे के राज्य में थी। परन्तु चम्पतराय अपनी शूर वीरता के कारण बहुत विख्यात हो गये थे इन्हें वीरसिंह देव का मुगलों के आधीन रहना अच्छा नहीं लगता था। इससे वीरसिंह देव ने जहांगीर के मरते ही शाह जहां को इनकी सलाह से कर देना बन्द कर दिया और ओरछे को स्वतन्त्र कर लिया। यह बात शाहजहां को अच्छी न लगी इससे उसने बाकीखाँ नामक सरदार को एक बड़ी सेना साथ में देकर बुन्देलों को बश में करने के लिए भेजा। इस समय चम्पतराय, वीरसिंह देव तथा अन्य बुन्देले एक हो गये। इससे बाकीखाँ की इस बड़ी सेना को हार खानी पड़ी। बाकीखाँ हार मानकर वापस चला गया। और बुन्देलों की स्वतंत्रता कायम रही। इसी युद्ध के समय जबकि बाकीखाँ अपनी फौज लेकर हार कर वापस जा रहा था, चम्पतराय का बड़ा लड़का सारबाहन उसे मिला। वह शिकार

खेलने गया था । वाकीखां ने ठस लड़के अकेले को जिसके पास थोडी सी सेना थी घेर लिया और उसे युद्ध में मार डाला, सारबाहन था तो छोटा पर उसने समर भूमि में उसके छक्के छुड़ा दिए ।

शाहजहाँ को जब बाकीखाँ की हार मालूम हुई तब उसे बहुत फिक्र हो गई । मुगल लोग भारत वर्ष में अपने बराबर किसी को बलवान नहीं समझते थे । और कोई ऐसा राज्य भारत वर्ष में न था जो मुगलों की सेना को हरा सके । परन्तु ओरछे महाराजा वीरसिंह देव चम्पतराय ने शाही सेना को पराजित कर दिया । इसका कारण चम्पतराय की स्वतंत्र प्रियता और आत्मविश्वास था । चम्पतराय उस सयम भी शाही सेनाओं का सामना करते रहे जिस समय उनके पास बहुत सेना थी । बुन्देलों की विजय देख शाहजहाँ से बिलकुल न रहा गया और वह स्वय अपने बड़े सेना नामकों को साथ लेकर सम्पूर्ण सेना के साथ आक्रमण करने ओरछे आया शाहजहाँ की सेना ने भरपूर प्रयत्न किय परन्तु ओरछे पर विजय नही हुई उस समय चम्पतराय की विलक्षण बुद्धि और शौर्य ने ही ओरछे की विजय कराई बादशाह शाहजहाँ अपनी साठ हजार सेना सहित चम्पतराय से हार मान कर दिल्ली वापस चला गया और बुन्देलखण्ड पर बुन्देलों का स्वतंत्र राज्य हो गया । शाहजहाँ ने ओरछे राज्य बुन्देलखण्ड को अपने सम्राज्य में फिर से ले लेने का उपाय करना न छोड़ा वह चारों तरफ से सेना इकट्ठी करने के प्रयत्न में लग गया । आगरे से मुहब्बतखाँ, दक्षिण से खानजहान और प्रयाग से अब्दुल्लाखाँ आये । सारे मुगल साम्राज्य की सम्पूर्ण शक्ति फिरसे ओरछा राज्य बुन्देलखण्ड पर आकर्षित हो गई । चम्पतराय ने शाही सेना का सामना एक खुले मैदान में करना ठीक न समझा, न उन्होंने संधि ही की । अपने शौर्य से स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने के प्रण पर अड़े रहे । मुसलमान अपनी असख्य सेना लेकर बुन्देलखण्ड के बड़े बड़े मैदानों में पड़े पड़े बुदेलों की बार देखते रहे और बुन्देला अपनी थोड़ी सेना में से कुछ तो किले के भीतर और कुछ मुगलों के मार्ग की घाटियों में रख कर लड़ाई

की बाट देखने लगे कुछ दिन बिना युद्ध के ही बीत गये इस सेना को बहुत दिन तक मुगल लोग यहाँ पर नहीं रुख सके। वह वापिस जाने की शोच ही रहे थे बुन्देलों के प्रधान सेनापति चम्पतराय ने शीघ्र आक्रमण कर दिया इस युद्ध में मुगलों के प्रसिद्ध सेनानायक शाहबाज खाँ, बाकीखाँ, फतेहखाँ मारे गये। इस प्रकार फिर से मुगलों की हार हो गई और बुन्देलों की विजय हुई। उसी समय बुन्देलों की विजय हुई। उसी समय बुन्देलों ने सिरौज के राजा को अपने अधिकार में कर लिया और भिलसा तथा उज्जैन लूट कर बहुत सा माल ले आये। शाहजहाँ ने यह सुनकर फिर ओरछा पर वि० स० १६८४ चढ़ाई करने का विचार किया अब की बार मुहम्मद सुभानु वलीबहादुरखाँ अब्दुल्लाखाँ और नौरोजखा सेना नायकों को यह कार्य सौंपा गया। इन लोगों ने सम्पूर्ण युद्ध की तैयारी करके ओरछा पर आक्रमण किया बुन्देलों ने फिर वीरता से सामना किया शाहजहाँ ने अब बुन्देलों से लड़ना ठीक न समझा और संधि की बातचीत शुरू कर दी। महाराज वीरसिंह देव का इसी समय वि० सं० १६८४ में देहान्त हो गया इससे शाहजहाँ ने वीरसिंह के लड़के जुझारसिंह को ओरछे का महाराजा स्वीकार किया और शाहजहाँ ने चंदेरी के राजा भारतशाह ओरछे के राजा जुझारसिंह और उनके भाई पहाड़ सिंह, नरहरिदास धामौनी के राजा को चार हजारी मनसब दिए चम्पतराय की वीरता की सराहना करते हुए शाह जहाँ ने कोंच की जागीर प्रदान की और चम्पतराय की गिनती शाही दरबार के अमीरों में करना स्वीकार किया। इस प्रकार दिल्ली दरबार ने ओरछा को स्वतन्त्र राज्य माना और चम्पतराय के शौर्य की प्रशसा की।

चम्पतराय के साथ एक वीर योद्धा का नाम बिन्दा था यह हमेशा अपने स्वामी चम्पतराय की सेवा में रहता था जब चम्पतराय देहली दरबार में रहने लगे थे। चम्पतराय ने उस समय बिन्दा को अपनी तरफ से महेबा का शासक बना दिया था। महेबा में बिन्दा सुखी जीवन बिताने लगा था। अपना समय भगवत भजन में व्यतीत करता था। वि० सं०

१६६२ में बिन्दा के एक पुत्र हुआ था उसका नाम बिन्दा का बेटा प्रचलित था यह भी अपने पिता की तरह चम्पतराय को ही अपना स्वामी मानता था।

वि० सं० १६८५ में बिन्दा ने चम्पतराय के साथ बड़ी वीरता दिखलाई थी जुझारसिंह के प्रथम बिद्रोह में बिन्दा शामिल था वि० स० १६९० में बिन्दा ने जुझारसिंह के द्वितीय विद्रोह में सहायता दी।

महाराजा जुझारसिंह वि० सं० १६८४ से १६९० वि० तक अर्थात् सन् १६२७ ई० से १६३३ ई० तक

महाराजा वीरसिंह प्रथम की मृत्यु के बाद आपके जेष्ठ पुत्र जुझार सिंह वि० स० १६८४ में राज्य के अधिकारी हुए।

राजा जुझारसिंह बहुत घमन्डी और शकी थे। वि० स० १६८८ में यह अपने विमान्न हरदौल से किसी कारण अप्रशन्न हो गया। इससे इसने अपनी रानी चम्पावती से कहकर उनका नेवता करवाया और उसी से हरदौल को विष दिलवा दिया। रानी चम्पावती हरदौल को पुत्रवत् चाहती थी। इससे रानी चम्पावती ने अपने देवर हरदौल से सच्ची घटना कह सुनाई कि राजा जुझारसिंह की आज्ञा से आज आपको विष दिया जा रहा है। फिर भी जानबूझ कर सहर्ष हरदौल ने वह विष-मिश्रित भोजन कर ही लिया। वि० स० १६८८ में हरदौल का देहान्त हो गया था। भक्त मीरा-बाई की भाँति हरदौल ने यह विष-पान किया था। यह कथा बुन्देलखण्ड में बहुत प्रचलित है। हरदौल लाला के चबूतरे प्रत्येक गाँव में बने हुए हैं।

हरदौल लाला बहुत वीर योद्धा पहलवान भी थे। और चम्पतराय के साथ स्वतन्त्रा संग्राम में कई युद्धों में विजय प्राप्त की थी। मुसलमानों को बहुत परेशान कर दिया था। बुन्देलखण्ड को सदा के लिए स्वतन्ता करने की योजना थी स्वतन्त्रता के अमर सेनानी, क्रान्तकारी वीर हरदौल लघुभ्राता थे।

जहांगीर की मृत्यु के बाद शाहजहाँ मुगल सम्राट हुआ । जुझारसिंह आगरा दरबार में उपस्थित रहा करते थे। इनके छोटे भाई हरदौल ओरछा में ही रहते थे, पिता की मृत्यु पर हरदौल ने राज-काज की देख माल की। उनका मन साफ था। शासक वह जुझार सिंह को ही मानते थे, स्वयं शासक बनने की न तो उन्होंने कामना की, न प्रयत्न। राज्य को बड़े भाई की अमानत मान उसने राज्य भार सम्भाला। जुझारसिंह की अनु-स्थिति के कारण ही उन्हें ऐसा करना पड़ा। वह राज्य के स्वाभिमानी सेवकों से भली भाँति परिचित थे, अतः सबको यथावत् रहने दिया। बिन्दा का सम्मान जैसा का तैसा रहा।

जुझारसिंह के आगरा आवास की अवधि में एक अज्ञात खंगार ने जुझार की अच्छी सेवाकी। जुझार सिंह को उसने प्रसन्न कर रखा था। वह चाहता था कि जुझारसिंह शीघ्र ओरछा पहुंच जायें।

शाहजहां को बुन्देलों की बढ़ी हुई शक्ति का पता था। वह अभी अभी सिंहासन पर बैठा था और अपनी जड़ें मजबूत करना चाहता था। आगरा के समीप वह बुन्देलों को और न बढ़ने देना चाहता था, उनका शासक उसके दरबार में बना रहना नीतिपूर्ण था। राज्य के कार्य वाहक शासक से खतरा न होगा। ऐसा शाहजहां का विचार था। शासक जुझारसिंह कहलायें पर रहें आगरा में ही। शाहजहां ने निर्णय किया। जुझारसिंह प्रतीक्षा करते रहे कि सम्राट स्वयं उन्हें ओरछा जाने की अनुमति दें, पर उसके आसार न दिखाई दे रहे थे। वह और धैर्य से काम लेते पर खगार को धैर्य न था। उसने जुझारसिंह को उकसाना आरम्भ किया। जुझारसिंह को खंगार की बात जंच गई। वह ओरछा आ गये। उनका इस प्रकार चला आना उनके लिए कितना घातक सिद्ध होगा उन्हें अनुमान न था।

ओरछा आकर खंगार ने सबसे पहला प्रयत्न यह किया कि वह लोग

जिन्हें वह अपना सबसे बड़ा विरोधी मानता था दरबार से दूर हट जाय। अपने प्रयत्न में वह सफल भी हो जाता परन्तु हरदौल और अन्य सरदारों के कारण वह कुछ न कर सका। इन लोगों ने महाराज को समझाया कि विपत्ति में काम आने वाले उन स्वामिभक्त कुशल लोगों को न हटाया जाय। महाराज को झुकना पड़ा। खंगार ने महाराज को आगाह किया कि जब तक दरबारी पुराने ही बने रहेगें हरदौल के आगे महाराज की स्थिति हीन बनी रहेगी। दोनों भाइयों में फूट का बीज बोने के अतिरिक्त खंगार को कुछ हासिल न हुआ।

इसी समय महेबा (नुना) के जागीरदार चम्पतराय की सलाह से जुझारसिंह ने कर देना बन्द कर दिया। शाहजहाँ के पास बढ़ा चढ़ाकर सूचना पहुँचाई गई थी। सम्राट जुझारसिंह की अवज्ञा से नाराज तो था ही यह समाचार पर और क्रोधित हो उठा। जुझारसिंह ने स्पष्टीकरण देना चाहा पर उसका कथन तोड़ मरोड़कर सम्राट को, जो उसके विरूद्ध भड़क चुका था, और भड़काया गया। आगरा जाने का दरवाजा बन्द हो गया। सन् १६२८ ई० में जुझारसिंह को विद्रोही घोषित कर दिया गया।

वि० सं० १६८५ में जुझारसिंह के प्रथम विद्रोह के नाम से जाना स० १६८५ वि० में शाहजहां ने महाबतखाँ के आधीन सेना ओरछे पर चढ़ाई करने भेजी साथ में नरवर का राजा रामदास, दतिया का राजा भगवन्तराय, चंदेरी का भारनशाह, कालपी का सूबेदार अब्दुल्ला खाँ और ऐरछ के जागीरदार पहाड़सिंह अपनी सेना सहित ओरछे पर चढ़ाई करने को आ गये थे। इसके अतिरिक्त खाने जहाँ भी अपनी सेना सहित आ गया। इस सेना को देखते ही जुझार सिंह ने संधि करली। बहुत सा इलाका भी छीन लिया। इसके उपलक्ष में पहाड़ सिंह को शाही डंका शाहजहाँ की तरफ से दिया गया।

वि० सं० १६८६ में खानेजहाँ ने बगावत की तब उसे धौलपुर के

सूबेदार अब्दुल्ला हसन ने उसे युद्ध में पराजय किया तब वह चम्बल पार करके ओरछे राज्य की सीमा में प्रवेश कर गया उस समय जुझारसिंह दक्षिण में गये थे व वापिस ओरछा आ गये ऐरछ से पहाड़सिंह, धामौनी से नरहरिदास, जैतपुर से चन्द्रभान, दतिया से भगवन्तराय को शाहजहां ने खानेजहाँ को पकड़ने सेना भेजी। राजौरी नामक स्थान पर युद्ध हुआ। इस युद्ध में नरहरिदास तथा बहादुरखाँ मर गये और खानेजहां लड़ाई में हारकर दक्षिण को चला गया।

वि० सं० खानेजहाँ दक्षिण हैदराबाद से भागकर नर्बदा उत्तर धरमपुरी (मालवा) में ठहरा। वहां के सूबेदार अब्दुल्ला खाँ और मुजफ्फरखाँ ने उसे मार भगाया। भाँडेर के पास नीमी गाँव में युद्ध में भाग खड़ा हुआ और कालिंजर के पास बरा नामक ग्राम में वह मारा गया इस पर चम्पतराय को ही हजारी मनसब शाहजहाँ ने प्रदान किया।

उस समय बिन्दा और उसका बेटा भी चम्पतराय के साथ में युद्ध करने गया था। बिन्दा का देहली दरबार में अच्छा सम्मान था। वीर सामन्तों में इसकी गणना थी। बिन्दा सदैव चम्पतराय का शुभ चिन्तक और सच्चा स्वामी भक्त था।

जुझारसिंह ने अभी इतना आत्म सम्मान न खोया था कि अपमान सहनत हो जाय। वह आने वाली विपत्ति का सामना करने की तैयारी में जुट गया। युद्ध के मामले में जुझारसिंह ने उस नीति से काम न लिया जो वीरसिंह (प्रथम) ने अपनाई थी। उसके अनेक कारण थे। उस समय बुन्देला शक्ति संगठित न थी जबकि अब बुन्देलखण्ड का विशाल राज्य बन चुका था। इस समय शाहजहाँ गद्दी पर बैठा ही था और उसमे अधिकार प्राप्त होने की आशा न थी। वह अपने प्रतिद्वन्दियों से निपट चुका था। जुझारसिंह का ऐसा कोई मित्र न था जैसा कि वीरसिंह (प्रथम) का जहाँगीर। यदि जुझारसिंह ओरछा छोड़ भी जाता और शाहजहाँ को कब्जा कर लेने

देता तो शीघ्र ही मुक्ति की आशा न थी । यह भी निश्चित न था कि शाही फौज जुझारसिंह का पीछा छोड देगी । अकबर का ध्येय था वीरसिंह को दण्ड देना शाहजहां की मंशा थी बुन्देलों की बढ़ी शक्ति को नष्ट करना । युद्ध अवश्यम्भावी हो गया । सं० १६८५ वि० (१६२८ ई०) में बुन्देलों के दमन हेतु शाही फौज तीन ओर से आगे बढ़ी । महावतखाँ खान-खाना अन्य बड़े-बड़े सहकारी सेनापतियों के साथ उत्तर की ओर बढ़ा । खानजहां कई सरदारों के साथ मालवा से चन्देरी होते हुए बढ़ा । उसकी सहायता के लिए कई हिन्दू सरदार नियुक्त किये गये थे । एक और बड़ी सेना कन्नौज के जागीरदार फीरोज जग के अधीन पूर्व से बुन्देलखण्ड में घुमी । पूरी शाही फौज में सब मिलाकर सत्ताइस हजार सवार छः हजार पैदल और पन्द्रह सौ बन्दूकची थे । जुझारसिंह ने भी अपनी सेना सुदृढ़ कर ली थी । और युद्ध सामग्री इकट्ठी कर ली थी । पर उसमें इतनी बड़ी सेना का सामना करने की शक्ति न थी । शत्रु की अधिक शक्ति के समक्ष भी वह प्राण पत्र से रक्षा हेतु कटिबद्ध था ।

मुगलों के पूर्वज मध्य एशिया से आये थे । वहाँ के निवासी खाना बदोशी जिन्दगी बसर करते हैं । इसलिए शाही सेना पड़ाव में रहना पसन्द करती थी । पड़ाव एक जंगम नगर समान होता था । जिसमें सब प्रकार की सुविधायें प्राप्त रहतीं । अफसरों की बीबियां तथा उनकी प्रेमिकायें भी पड़ाव के साथ ही साथ रहती । बिन्दा आदि की योजना यह थी कि ऐसे पड़ाव में छुट-पुट हमले कर अव्यवस्था फैलाई जाय । शाही सेना एक तो ओरछा तक पहुँचे ही नहीं । यदि पहुंचे भी तो क्षीण होकर ताकि महाराज की विजय की सम्भावना बढ़ जाय । बिन्दा और उसके साथी अपने ध्येय में शायद सफल हो जाते । परन्तु पूर्वाभास होने के कारण शत्रु सर्तक था । उन्होंने प्रत्येक दिशा से आती फौज को दो-दो दलों में विभक्त कर दिया । मुख्य दल बड़ा और दूसरा छोटा रक्खा गया । छोटी टुकड़ी आगे रखी गई और बड़ा दल पीछे । उसका आशय यह था कि छिपे हुए बुन्देले यदि आक्रमण करें तो छोटी टुकड़ी में उलझे रहेंगे और बड़ा दल मार्ग बदल कर

ओरछा की ओर बढ़ जायेगा। हुआ भी यही। बिन्दा आदि ने मार्ग में रुकावट डाली। पर वे अग्रिम दल को शत्रु की पूरी फौज समझने की भूल करते रहे।

जब ब्रिन्दा आदि सोच रहे थे कि वह सफलता पूर्वक शाही फौज का मार्ग अवरुद्ध किये थे, शत्रु सेना ओरछा पहुंच चुकी थी। युद्ध हुआ और बुन्देली सेना के दो तीन हजार आदमी मारे गए। किले पर शाही सेना का अधिकार हो गया। महाराजा जुझारसिंह को आत्म समर्पण करना पड़ा।

जुझारसिंह शाहजहाँ के सामने हाजिर हुआ। उसे १००० मुहरें नजर में देनी पड़ी और १५ लाख रुपये जुर्माने में। इसके अतिरिक्त ४० हाथी भी देने पड़े। उसके पास इतनी जागीर रहने दी गई ४००० जात और ४००० सवार के पद के लिए उपयुक्त थी। शेष राज्य खानजहाँ लोदी, अब्दुल्ला खां, सैयद मुजफ्फर खां और राजा पहाड़सिंह बुन्देला के बीच बाँट दिया गया। जुझारसिह को दक्षिण की चढ़ाई में सम्राट की सहायता के लिए २००० सवार और २०० पैदल सैनिक तैयार रखने की आज्ञा भी दी गई। शर्तें अत्यन्त अपमानजनक थीं। पर विवश हो स्वीकार करनी पड़ी।

बुन्देले हार अवश्य गये थे पर उनका मनोबल न टूटा था। विद्रोह करने के फलस्वरूप जुझारसिंह को बड़ी क्षति उठानी पड़ी थी। उनका राज्य सीमित कर दिया। उस पराजय का अपमान उसे खटकता रहा। वह अपने खोये राज्य को पुनः पा लेना चाहता था। बादशाह की शक्ति के समक्ष यह असम्भव सा था। राजा हिम्मत न हारा। जुझारसिंह ने चौरागढ़ पर चढ़ाई कर वहां का विशाल कोष हस्तगत किया था।

वि० सँ० १६८९ में जुझारसिंह के पुत्र विक्रमाजीत ने दौलताबाद लेने के समय बड़ी शूरता दिखलाई थी। इससे शाहजहाँ ने प्रसन्न होकर इसे और पहाड़सिंह तथा पहाड़ी के बैनीदास और चतुर्भुज को अच्छा परितो-

षिक दिया विक्रमाजीत को दो हजारी मनसब और युवराज की पदवी शाहजहाँ ने प्रदान की।

वि० सं० १६९० में जुझारसिंह ने गौडवाना के राजा प्रेमशाह और उसके मन्त्री उदय बाजपेई को मार डाला और उसका किला चौरागढ़ अपने राज्य में मिला लिया। इस पर प्रेमशाह के लड़के हृदयशाह का पक्ष लेकर शाहजहां ने वि० स० १६९१ में ओरछे पर चढ़ाई की। राजा जुझारसिंह वहाँ से धामौनी गया। परन्तु शाही सेना ने उसका पीछा किया जिससे चौरागढ़ होता हुआ वह चांदा की ओर चला गया। यहां पर भी शाही सेना ने इसका पीछा न छोड़ा। अन्त में वह अपने कुटुम्बियों को दक्षिण की ओर भेजकर जगल मे जा छिपा। उस जंगल में गौड़ो ने जुझारसिंह तथा उसके लड़के विक्रमाजीत को पकड़कर बड़ी निर्दयता से वि० सं० १६९१ में मार डाला और खानेजहाँ ने दोनों के सिर काट कर शाहजहाँ के पास भेज दिए। इसके बाद जुझारसिंह का छोटा लड़का दुर्गभान और विक्रमाजीत का लड़का दुर्जनसाल मुसलमान बनाए गए और इनके नाम इस्लाम कुलीखाँ तथा अली कुलीखां रखे गए छोटा लड़का भी जो गोलकुन्डे में उदयभान और श्याम दौआ के पास था मुसलमान बनाया गया और इस्लाम कुलीखाँ के साथ पढ़ने भेज दिया गया। उदयभान और श्याम दऊवा मुसलमान होने से इन्कार करने पर मारे गए। इस समय सेनापतित्व औरंगजेब को दिया गया था और उसकी मदद के लिए अब्दुल्ला खां बहादुर फीरोज जंग और खान दौरान के सिवाय चन्देरी के राजा देवीसिंह, रीवां के बघेल राजा अमरसिंह, एरछ के पहाड़सिंह और जैतपुर के चन्द्रभान आये थे।

महाराजा देवीसिंह वि० स० १६९१ से वि० स० १६९३ तक

वि० स० १६९१ में राजा देवी सिंह ने ओरछा की चढ़ाई के समय शाही सेना का साथ दिया था। इससे शाहजहां ने जुझारसिंह के मारे जाने के बाद देवीसिंह को ओरछा का राजा बनाया गया था। पर वह शान्ति स्थापित

न कर सका इससे वि० स० १६९३ में वह ओरछा की गद्दी से विमुख करके चँदेरी वापिस कर दिया।

(सन् १६३४ ई० से सन् १६३६ ई० तक राजा रहे)

महाराजा पृथ्वीराज (सन् १६३६ ई० से सन् १६३७ ई० तक) (वि० स० १६९३ से वि० स० १६९४ तक)।

महाराजा जुझारसिंह का छोटा लड़का पृथ्वीराज को शाहजहां ने ओरछा की राज गद्दी पर बैठाया गया किन्तु वह छोटा बालक था इससे ऐसे कठिन समय में जबकि चम्पतराय के समान योद्धा, जिसके आक्रमणों को मुगलसेना भी न रोक सकती थी, मुंह बाए ओरछे को निगलना चाहता था ऐसे छोटे बालक से प्रबन्ध होना कठिन था और भी अराजकता छा गई। इससे वि० स० १६९४ में कैदकर ग्वालियर भेज दिया गया। इसके कैद होते ही चम्पतराय ओरछा की गद्दी पर आसीन हुए।

महाराजा चम्पतराय (सन् १६३७ ई० से सन् १६४१ तक) वि०स० १६९४ से वि० स० १६९८ तक चम्पतराय ओरछा के महाराजा होते ही शाही सेना पर छापे मारना प्रारम्भ कर दिए। अन्त में शाहजहां ने हार मान कर चम्पतराय को दबाने के लिए शाहबाज खां के सेनापतित्व एक बड़ी सेना भेजी और उसकी सहायता के लिए फत्ते खां और बाकीखां भी आये, किन्तु ऐसी बड़ी सेना भी चम्पतराय के सामने न ठहर सकी। और हार मान कर वापिस चली गई। इसके जाते ही चम्पतराय सिरौंज-भेलसा धार उज्जैन को लूटते हुए धामौनी आये। इस समय वहां पर सरदारखां रहता था उसे भी अपने प्राण बचाना कठिन हो गया। अन्त में उन्होंने धामौनी को लूट लिया और ग्वालियार पर छापा मारा। इस तरह से उन्होंने नर्वदा से लेकर चम्बल के हाते तक के देश लूट लिए। इनके आक्रमणों की खबर शाहजहां को मिली तब उसने खानेजहाँ के नेतृत्व में एक बड़ी सेना फिर भी चम्पतराय को दबाने के लिए भेजी। इसकी मदद

के लिए सैयद मुहम्मद बहादुर खां और अब्दुल्ला खां भी आये। पर चम्पतराय का कुछ न कर सके। हार मान कर वापिस चले गये। इस तरह लगातार चार वर्ष तक परेशान होने के पश्चात् वि० स० १६९८ में शाहजहां ने ओरछा का राज्यकार्य भार पहाड़सिंह को सोंप दिया।

वि० सं० १६९५ में (सन् १६३८ ई०) में महाराजा चम्पतराय ने अपने राज्य शासन काल में श्री जुगलकिशोर भगवान की मूर्तियां ओरछा से ले जाकर पन्ना राज्य में विराजमान कराई विशाल मन्दिर पन्ना में अब तक विद्यमान है।

महाराजा पहाड़सिंह (सन् १६४१ ई० से सन् १६६३ ई० तक) (वि० सं० १६९८ से वि० सं० १७२० तक) शाहजहां ने वि० सं० १६९८ में पहाड़सिंह को ओरछे की गद्दी दे दी थी। पश्चात् उसने इसे पांच हजारी मनसव दिया और दो हजार सवार रखने की आज्ञा दे दी। पहाड़सिंह से मिलने के लिए चम्पतराय महेवा से आए और इस्लामाबाद (जतारा) में पहाड़सिंह ने उनका बड़ा स्वागत किया। पहाड़ सिंह का एक बड़ा विश्वासी मन्त्री नसीमुद्दौला नामक मुसलमान था बुन्देलों का यवनों के विरूद्ध आन्दोलन इसे प्रसन्द नहीं था। और चन्देरी वाले पहिले ही से ओरछा से असन्तुष्ट थे। इतना ही नहीं किन्तु इन्होंने ने मुसलमानों और गौंड़ लोगों को ओरछा के विरूद्ध सहायता भी दी थी। परन्तु ओरछा के राजा और चम्पतराय का मेल ही इस समय बुन्देलखण्ड की रक्षा कर रहा था। ओरछा के मन्त्री नसीमुद्दौला ने इसे भी नष्ट कर देना चाहा चम्पतराय पहाड़सिंह का बहुत मान करते थे और उनके नेतृत्व में रहना स्वीकार करते थे परन्तु चम्पतराय की बहादुरी किसी से छिपी न थी। राज्य भर में जितना मान चम्पतराय का था। उतना और किसी का न था। इससे पहाड़सिंह को ईर्ष्या उत्पन्न हुई और बजीर नसीमुद्दौला भी समय समय पर उनके कान भरा करता था एक दिन उसने चम्पतराय के मारने की सलाह

दी। पहाड़सिह उसके कहने में आ गया और निमन्त्रण के बहाने चम्पतराय को बुलाकर उसने भोजन में विष देने का विचार किया चम्पतराय को निमंत्रण भेजा गया वह ओरछा आये। इस समय पहाड़सिह ने बड़ा स्वागत किया परन्तु भोजन के समय किसी कारण से इनके भाई भीम को सन्देह हो गया। इससे उसने अपने पराक्रमी और वीर भ्राता चम्पतराय की रक्षा के लिए जो थाल चम्पतराय को दिया गया था उस थाल को भीम ने स्वयम् अपने सामने ले लिया और अपने सामने का थाल चम्पतराय को भोजन करने को दे दिया गया था। इस विष-मिश्रत भोजन करने के कुछ देर बाद भीम ही के प्राण पखेरू तो उड़ गये परन्तु पहाड़सिह का अभीष्ट सिद्ध न हो पाया। जिस जगह चम्पतराय आदि को भोजन करवाया गया था उस जगह ऐसा प्रबन्ध किया गया था यदि भीम चम्पतराय से साफ साफ कहते तो दोनों की जान जाती, इससे भीम वहाँ कुछ न बोले और उन्होंने चम्पतराय की बला अपने ऊपर ले बन्धु प्रेम की वेदी पर अपना बलिदान कर दिया। पहाड़सिह के इस कुकृत्य से ओरछा राज्य और चम्पतराय में अनबन हो गई। अब पहाड़सिह चम्पतराय को हानि पहुँचाने के लिए तरह तरह के जघन्य उपाय करने लगे। यह घटना वि० स० १६९९ व वि० सं० १७०० के बीच में घटित हुई थी।

भीम की मृत्यु के पश्चतु राजा पहाड़सिह और चम्पतराय में अनबन हो गई थी। इससे पहाड़सिह हर समय चम्पतराय को हानि पहुँचाने के षड़यत्रों में लगा रहता था। अन्त में उन्होंने शाहजहां से संधि करना ही उचित समझा। शाहजहां भी इनसे तंग आ गया था इससे उसने भी इनके बुलाने में बिलम्ब न किया। ज्योंही महाराज चम्पतराय शाही दरबार में पहुँचे, शाहजहां ने इनका बड़ा सत्कार किया और पाँच हजारी मनसब दे सन्धि कर ली। उस समय शाहजहाँ कन्दहार में शान्ति स्थापित करने में लगा हुआ था। पर कई बार सेना भेजने पर भी शांति स्थापित न कर सका था। इस समय वह अपने ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह को पराक्रम और

शूरता का पूर्ण परिचय था। इससे वि० सं० १७१० में उसने अपने पुत्र दाराशिकाहे के साथ महाराज चम्पतराय को भी कन्दहार की चढ़ाई पर भेज दिया। वहां पहुंचते ही महाराज ने बड़ी शूरता दिखलाई और प्राणों की बाजी लगा कर विजय प्राप्त की। वहां से वापस आते ही शाहजहां ने इन्हें कोंच की जागीर दी और बारह हजारी मनसब दे इनकी वीरता की भूरि भूरि प्रशंसा की। इसे सुन दाराशिकोह मन ही मन कुढ़ा और उन्हें हानि पहुँचाने की चेष्टा करने लगा। ऐसा कहते हैं कि इस षड़यन्त्र में पहाड़सिंह भी मिल गया और दोनों ने सलाह कोंच की जागीर निकाल लेने का मनसूबा बांधा। इस समय राज्य प्रबन्ध का बहुत सा काम दाराशिकोह ही किया करता था इससे इसे मनमानी करने का मौका हाथ लगा। महाराज चम्पतराय कोंच की जागीर से बादशाह को सिर्फ एक लाख रुपया देते थे।

यह सब हाल जब बिन्दा को मालूम हुआ तो उसने चम्पतराय को स्वतंत्रता संग्राम करने की सलाह दी और मुगलों की स्वाधीनता में रहने का विरोध किया। परन्तु चम्पतराय ने बिन्दा को समझाया कि मैं अवश्य ही अब क्रान्तिकारी दल को इकट्ठा करने की बात सोच रहा हूं।

वि० सं० १६९७ में कन्दहार के अलीमर्दा ने ईरान के बादशाह से परेशान हाकर अपना इलाका शाहजहां बादशाह को दे दिया और उससे मदद लेकर ईरान पर चढ़ाई की, पर कुछ लाभ न हुआ। पहाड़सिंह को शाहजहां ने ओरछा की गद्दी और पाँच हजारी मनसब दिया था और इसने उसकी फरमाबरदारी कबूल कर ली थी। पर जब राजा जगतसिंह कोटा और मुराद के सेनापतित्व में भेजी हुई सेनाए भी कन्दहार निष्फल फिरी। और वहां शान्ति स्थापित न कर सके। तब शाहजहाँ ने औरंगजेब के सेनापतित्व में वि० सं० १७०२ में फिर भी सेना भेजी और इसकी सहायता के लिए ओरछा के राजा पहाड़सिंह को भी साथ में भेज दिया। इसके बाद में

पहाड़सिंह को वि० सं० १७०५ में फिर भी कन्दहार भेजा गया।

वि० सं० १७०८ में जब चौरागढ़ का प्रबन्ध सरदार खां से नहीं हो सका जो धामौनी में रखा गया अयोग्यता के कारण पहाड़सिंह को चौरागढ़ की जागीर बादशाह ने दे दी साथ ही उसका एक हजारी मनसब और बढ़ाया गया। इससे पहाड़सिंह ने हृदयशाह पर चढ़ाई की वह भयभीत होकर रीवा के बघेल राजा अनूपसिंह के पास में चला गया। गौड़वाने में गाये भी जोती जाती थी इस प्रथा को बन्द करने पहाड़सिंह की इच्छी थी। इससे यह दौलताबाद तक बढ़ते गये। यहाँ पर उन्होंने पहाड़सिंहपुर गाँव बसाया जिसकी आमदनी ओरछा राज्य में जमा होती थी। वहां से वापिस आने पर पहाड़सिंह ने रीवां पर चढ़ाई की, राजा अनूपसिंह और हृदयशाह दोनों जंगल की ओर भाग गये। पहाड़सिंह ने रीवाँ को मनमाना लूटा। इतने में औरंगजेब के साथ जाने के लिए शाहजहाँ ने पहाड़सिंह को बुला भेजा। वह लूट में से एक हाथी तीन हथिनियाँ लेकर शाहजहाँ से मिला वि० स० १७०९ में फिर भी कन्दहार की लाड़ाई में भेजा गया।

पहाड़सिंह गौ भक्त और धर्म पालक थे। गौड़वाने में प्रेमशाह राज्य करता था। जिसके राज्य में गौ माता हल में जोती जाती थी। एक भाट ने ओरछा आकर राजा पहाड़सिंह को निम्न पद द्वारा गायों की ओर से प्रार्थना की

पड़ी हैं पिसाचन माहिं जुतती हैं आठौंयाम,
सुधहुं न लेत पावी तुनन के खाने की।
कान्हजू की काम धेनु करती विलायरो य,
कपिला की जाति कहुं भाग नहीं जाने की।
रोय करतीं है अर्ज उठ मोर भानुजू सूं
फौज चढ़धाओं 'केशोराय' वीरवाने की।
बीरसिंह जू के कुंवर प्रबल पहाड़सिंह
तेरी राय हेरती हैं गौएं गौड़वाने की।

कवि के निवेदन करते ही पहाड़सिंह की भृकुटी टेढ़ी हो गई। ओष्ठ और भुजायें फड़कने लगीं। तुरन्त उनका दाहिना हाथ तलवार की मूठ पर गया, और वह साहस पूर्ण एवं भावप्रवण वाणी से प्रतिज्ञा करके बोले मैं अन्न जल अब जब ग्रहण करूंगा जब गोंड़वाने को विजय कर वहां की गायों को मुक्त नहीं करा दूंगा। उन्होंने सेनापति को आदेश दिया कि चढ़ाई के लिए सेना शीघ्र तैयार करें।

मन्त्री बड़े विचार शील व्यक्ति थे। उन्हें गोंड़वाने के वीरों और वहाँ के सुदृढ़ दुर्ग का पूर्ण अनुभव था। उन्होंने विचार कर राजा पहाड़सिंह से निवेदन किया कि—"महराजा की आज्ञा सभी को शिरोधार्य है, किन्तु जो आपने अन्न–जल ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा की है, उसमें मेरा यह अनुरोध है कि यहां एक गोबर का गोंड़वाना निर्माण किया जाय और महाराज उस पर बिजय प्राप्त कर फिर सेना का विधिवत गठन करके गोंड़वाने पर धावा बोलें। इस प्रकार महाराज और सैनिकों को सब प्रकार की सुविधायें प्राप्त हो सकेंगी"।

मन्त्री का परामर्श मानकर पहाड़सिंह ने नगर के बाहर चहारदीवारी नामक स्थान पर गोबर का एक गोंड़वाना प्रस्थापित करने का आदेश दिया जिसका तुरन्त पालन किया गया। लेकिन जब उस गोबर निर्मित गोंड़वाने पर पहाड़सिंह ने धावा बोला, तभी ओरछा सेना के एक गोंड़वाने वीर ने तलवार खींच कर रण में अपनी मात्र–भूमि की रक्षा के लिए कूदने का दुस्साहस किया। उस वीर ने दो घन्टे तक डटकर, युद्ध किया। जिससे बुन्देली सैनिकों के छक्के छूट गये। यह देखकर पहाड़सिंह को बड़ा आश्चर्य हुआ।

मन्त्री का परामर्श मानकर पहाड़सिंह ने नगर के बाहर चहार दीवारी नामक स्थान पर गोबर का एक गोंड़वाना प्रस्थापित करने का आदेश दिया जिसका तुरन्त पालन किया गया। लेकिन जब उस गोबर निर्मित गोंड़वाने

पर पहाड़सिंह ने धावा बोला, तभी ओरछा सेना के एक गोंड़वाने वीर ने तलवार खींच कर रण में अपनी मातृ-भूमि की रक्षा के लिए कूदने का दुस्साहस किया। उस वीर ने दो घण्टे तक डटकर युद्ध किया। जिससे बुन्देली सैनिकों के छक्के छूट गये। यह देखकर पहाड़सिंह को बड़ा आश्चर्य हुआ। अन्त में वह वीर पहाड़सिंह द्वारा धराशायी हो वीरगति को प्राप्त हुआ।

पहाड़सिंह पुनः मन्त्री को बुलाकर गोंडवाने को विजय करने पर विचार करने लगे। मन्त्री ने महाराज को गोंड़वाने दुर्ग और व्यूह रचना के अनेक सुझाव दिये। इस योजना के अनुसार चढ़ाई की गई और पहाड़सिंह ने अपने विपुल रण-कौशल द्वारा गोंड़वाना नरेश को परास्त कर विजय-श्री प्राप्त की। गोंड़वाने से श्री हनुमान जी की विशाल प्रतिमा ओरछा लाई गई जिसकी स्थापना सं० १७०१ वि० (सन् १६४४ ई०) में ओरछा से लगभग ४ कि० मी० पश्चिम में वहीं की गई जहाँ गोबर का गोंड़वाना बनवाया था।

चम्पतराय बड़े वीर योद्धा और गऊ भक्त भी थे। जब गोंड़वाना पर ओरछा के महाराजा पहाड़सिंह ने वि० सं० १७०१ (सन् १६४४ ई०) को विजय प्राप्त की थी उस बिजय का कारण चम्पतराय की तरफ से बिन्दा नामक सामन्त व बिन्दा के वेटे की शूरवीरता थी। बिन्दा और उसके बेटे ने इस युद्ध में बहुत ही वीरता से युद्ध किया था। जब बिन्दा गोंड़वाना की लड़ाई से ओरछा वापिस आया तो उसकी वीरता की प्रशंसा ओरछा दरबार की गई और बिन्दा के बेटे को ओरछा राज्य की सेना का सबसे बड़ा सेनानायक बनाया गया। महेबा (नुना) में बिन्दा के नाम से कुछ भवन बनवाये गए। इसी वर्ष बिन्दा का वि० सं० १७०१ (सन् १६४४ ई० में देहान्त हो गया। बिन्दा का बेटा चम्पतराय की सेना में वापिस चला गया और वि० सं० १७६० में बिन्दा के बेटे की मृत्यु (छत्रसाल के शासन काल में)

हो गई थी यह दोनों बड़े स्वामी भक्त थे। इनके स्मारक नुना महेबा में बने हैं।

पहाड़सिंह ने चम्पतराय के मारने का बहुत उपाय किया परन्तु वह सफल नहीं हुए। ऐसे समय में बुन्देलखण्ड (ओरछा) को भाइयों की लड़ाई से बहुत हानि पहुँची। पहाड़सिंह ने चम्पतराय को हानि पहुँचाने का एक उपाय और भी किया। शाहजहाँ ने जब बुन्देलों से सन्धि की तब कोंच की जागीर चम्पतराय को दी थी। चम्पतराय की महेबा (नुना) की जागीर बहुत छोटी थी कोंच की जागीर मिल जाने से उनका खर्च सम्बन्धी काम अच्छा चलने लगा था पहाड़सिंह ने यह चम्पतराय की जागीर लेने का उपाय किया उस समय शाहजहां के दरबार में दारा की बहुत चलती थी दारा शाहजहाँ का बड़ा लड़का था और उसने राज्य का सब कार्यभार उसी के सुपुर्द कर दिया था। ओरछे के राजा पहाड़सिंह ने बहुत नम्रता पूर्वक दारा से यह विनती की कि चम्पतराय की जागीर मुझे दे दी जावे। मैं तीन लाख रुपया जागीर से मुगल दरबार को दूंगा। और चम्पतराय से अच्छा प्रबन्ध करूंगा। उस समय चम्पतराय केवल एक लाख रुपए उस जागीर से बादशाह को दिया करते थे। पहाड़सिंह ने तीन लाख रुपया देने का वचन देकर जागीर माँगी। दारा ने लालच में आकर पहाडसिंह को वह जागीर दे दी। इस बात पर चम्पतराय को बहुत बुरा लगा और उन्होंने मुगल दरबार में ही दारा के काम की निन्दा की। और मुगलों की आधीनता में न रहने का निश्चय कर लिया। इस प्रकार से चम्पतराय से जागीर तो ले ली गई परन्तु जिस वीरता के लिए चम्पतराय को यह जागीर मिली (कंदहार विजय करने स० १७१० वि० के उपलक्ष में) वह गुण चम्पतराय से कोई नहीं ले सका। उन्हें भी दारा से बदला लेने का अवसर अच्छा मिल गया। औरंगजेब दारा से विरोध रखता था। दरबार में दारा ही सब राजकाज करता था और यह बात औरंगजेब को बहुत बुरी लगती थी। औरंगजेब चाहता था कि शाहजहाँ के पश्चात् मुझे बादशाहत मिले परन्तु शाहजहाँ अपने बड़े लडके दारा को ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता

था और उसके कई सरदार भी दारा की मदद करते थे। इस कारण औरंग-जेब ने दारा के प्रभाव को घटाना शुरू किया उस समय औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार था उसने दारा के प्रतिकूल चम्पतराय से सहायता माँगी। चम्पतराय दारा से बदला लेना चाहते ही थे इसलिए उन्होंने औरंगजेब की सहायता करना स्वीकार कर लिया।

वि० स० १७१४ में शाहजहाँ के लड़कों में यह खबर फैल गई कि बादशाह बीमार हो गया है। यही कारण था कि उनके लड़कों ने इस आशा से कि उनका पिता शीघ्र ही मर जायगा राज्य के लिए लड़ना आरम्भ कर दिया। चम्पतराय का उद्देश्य औरंगजेब की सहायता करने में केवल इतना ही था कि वह दारा से बदला ले सकें। और बुन्देलखण्ड (ओरछा) को मुगलों से स्वतन्त्र कर सकें। दारा के पास बादशाह की बहुत सी सेना थी इसने अपने लड़के सुलेमान क्शिोह को भेजकर बगाल से आने वाले शुत्रा को सबसे पहिले हराया फिर दारा ने औरंगजेब की सेना का सामना करने के लिए धौलपुर के पास चम्बल नदी का घाट रोक लिया। मुराद शाहजहाँ का सबसे छोटा लड़का था। वह उस समय गुजरात मे था औरंगजेब बड़ा ही स्वार्थी, दगावाज और चालबाज था। इसने मुराद से फकीर बनने का ढोंग किया और यह कह दिया कि मैं तुम्हीं को बादशाहत दूंगा। मुराद उसकी चिकनी चुपड़ी बातो में आ गया। औरंगजेब तो यह चाहता ही था मुराद अपनी सारी सेना सहित औरंगजेब से मिल गया औरंगजेब ने सम्पूर्ण फौज लेकर उज्जैन पर चढ़ाई कर दी वहाँ पर मुकुन्दसिंह हाड़ा सूबेदार था उसने बहादुरी से सामना किया परन्तु मारा गया।

औरंगजेब उज्जैन होकर नरबर आया। यहां उसने चम्पतराय को बुलाने के लिए अब्दुल्ला खाँ को भेजा वह भी अपनी प्रतिज्ञानुसार औरगजेब को सहायता देकर अपना मनोरथ पूरा करने के लिए आ गए। दारा ने चम्बल का मुख्य घाट तो रोक ही लिया था इससे उन्होंने दूसरे घाट से नदी पार की। और सेना को लेकर दारा की सेना का सामना आगरा के पास

समोगढ़ में वि० सं० १७१५ में किया उस समय दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ ।

दारा के सेनापति बूंदीगढ़ के छत्रसाल हाड़ा थे वह चम्पतराय से युद्ध में हार गये । युद्ध के पश्चात् औरंगजेब ने मुराद को शराब पिलाकर उसे कैद कर लिया । उसे ग्वालियर के किले में बन्दी कर दिया तथा वह स्वयं बादशाह हो गया दारा और शाहजहाँ को भी औरंगजेब ने कैद कर लिया ।

औरंगजेब वि० सं० १७१५ में सम्राट हुआ उसकी विजय का प्रधान कारण चम्पतराय की सहायता ही थी । इसलिए औरंगजेब ने बुन्देला वीर चम्पतराय को ओरछा से यमुना तक का देश जागीर में दिया और चम्पतराय को दिल्ली दरवार का उमराव समझा । वह १२००० हजार सवारों का मनसबदार भी विख्यात किए गए ।

औरङ्गजेब ने जिस प्रकार बादशाही पाई उसका वर्णन:-

किबले के ठौर बाप बादशाह साहिजहाँ,
ताको कैद कियो मानो मक्के आगि लाई है ।।
बड़ौ भाई दारा बाको पकरि कैद कियो,
मेहरहु नाहि बाको सगो भाई है ।।
बन्धु तो मुराद बक्स बादि चूक करिबै को,
बीच ले कुरान खुदा की कसम खाई है ।।
भूषन कवि कहें सुनौ औरङ्गजेब,
ऐते काम कीन्हें फेरि बादशाही पाई है ।।

लोक साहित्य में कल्पित रानी सारन्धा

महाराजा चम्पतराय जन्म वि० स० १६२४ देहान्त वि० स० १७२१ वि० आयु ९७ वर्ष

महारानी लालकुवरि (कल्पित नाम—सारन्धा)

जन्म–वि० स० १६८३ देहान्त जागीर टेकड़ी जन्म भूमि थी। वि० स० १७२१ आयु ३८ साल

[बुन्देलखण्ड केसरी महाराज छत्रसाल की माता का नाम सारन्धा नहीं अपितु लालकुंअरि था। इनके पिता फतेहसिंह पमार वेरछा वालों की गढ़ी ललितपुर के निकट ग्राम दैलवारा में स्थित थी। इसी ग्राम में महाराज चम्पतराय के परम विश्वसनीय सामंत एवं मित्र बखतवली भट्ट के पुत्र भानु भट्ट एवं वली पटेल का निवास स्थान था। महारानी लालकुंवरि को 'सारन्धा' नाम देने का श्रेय मुन्शी प्रेमचन्द्र जी को है। पाठकों के मनोरंज–नार्थं यहाँ लालकुंवरि की सच्ची ऐतिहासिक घटना कल्पित नाम 'सारन्धा' देकर प्रस्तुत की जा रही है] —लेखक

इस कथा की नायिका सारंधा बुन्देलखण्ड के एक साधारण जमीदार की पुत्री थी। टेकड़ी मे सारंधा का जन्म स० १६८३ वि० में हुआ था। अपनी सुन्दरता और साहस के लिए दूर–दूर तक उसकी प्रसिद्धि थी। उन दिनों बुन्देलखण्ड में मुगलों और पठानों के आक्रमण बार–बार होते रहते थे, इसलिए स्त्रियां भी शास्त्र संचालन जानती थीं। रानी सारन्धा बचपन से ही निर्भीक, स्वाभिमानी, देश जाति और धर्म पर अपने प्राणन्यौछाबर करने वाली थीं।

ओरछा नरेश चम्पतराय ने सं० १६९८ वि० में उसके सौन्दर्य और शौर्य के बारे में सुन रखा था। उन्होंने सारंधा के बड़े भाई ठाकुर अनिरूद्ध सिंह के पास बिवाह का सन्देश टेकड़ी भेजा। ठाकुर फूले नहीं समाये।

फिर भी उन्होने कहलवाया कि महाराज के चार रानियां पहले से हैं। यदि मेरी बहिन को पटरानी बनावें और इसका पुत्र ही राज्याधिकारी होतो सम्बन्ध हमें स्वीकार है।

ऐसा ही हुआ। उससे चार पुत्र हुए-(१) अंगद (२) रतन शाह (३) छत्रसाल और (४) गोपाल। चम्पतराय शाहजहाँ के दरवार में बड़े मनसबदार थे। ओरछा के अलावा कालपी भी उनकी जागीर में थी। जब औरंगजेब तख्त पर बैठा तो उसने उनका दर्जा बढ़ाकर बारह हजारी मन सब दार कर दिया। उस समय हिन्दू राजाओं में सिवाय जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह के इतना बड़ा सम्मान और किसी का नहीं था।

चम्पतराय व रानी सारन्धा पुत्रों के साथ बीच बीच में दिल्ली रहते थे। उनके पास एक इराकी घोड़ा था, जिसकी जोड़ का सलतनत में दूसरा नहीं था। किसी समय यह घोड़ा शाहजहाँ के सेनापति अली बहादुर का था, जिसे चम्पतराय युद्ध में जीतकर लाये थे। अब अलीबहादुर औरगजेब का आला सेनापति हो गया था। अतः घोड़े को वापिस लेने का मौका ढूढ़ रहा था।

एक दिन छत्रसाल घोड़े पर चढ़ कर सैर को जा रहे थे, अलीबहादुर खाँ के सिपाहियों ने घोड़ा छीन लिया। छत्रसाल उस समय केवल १४ वर्ष के थे। घर आकर रानी को पूरी घटना सुनाई। उस समय चम्पतराय किसी युद्ध पर गये थे। दिल्ली में रानी अकेली थी। वह अपने पच्चीस विश्वस्तसिपाहियों को लेकर बादशाह के दरवार में पहुंची और अलीबहादुर खाँ को ललकारा।

बादशाह औरंगजेब अपने मुस्लिम सेनापति का भरे दरवार में अपमान होता देखकर क्रोध से कांपने लगा, परन्तु वह बहुत कूटनीतिज्ञ था। राजा चम्पतराय की वीरता और साहस को जानता था। उसने रानी की

और दृष्टियात करके कहा—'रानी साहिबा मैं बदौलत अपकी बहादुरी से बहुत खुश हैं परन्तु अपने एक घोड़े के लिए सल्तनत के आला सेनापति को नाराज करना आपके और राजा साहब के हक में अच्छा नहीं होगा।

रानी ने कहा कि 'बादशाह सलामत, सवाल घोड़े का नहीं है बल्कि आन का है। हम बुन्देले अपनी इज्जत और मान के लिए सब कुछ छोड़ने को तैयार हैं'। औरंगजेब ने कहा, 'रानी, अगर राजा यहाँ होते तो हमारे हजूर में शायद ऐसे अल्फाज कहने की गुस्ताखी नहीं करते। खैर। आप लोग अपने डेरे पर जाइये। घोड़ा आपको मिल जायेगा, परन्तु उसकी बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी। रानी सारन्धा ने उसी समय घोड़ा वापिस लेकर और घोड़ा पर सवार होकर शाही दरबार का अपमान करके अपने महल में आ गई थी। दारा की लड़ाई के समय चम्पतराय ने वि०स० १७१५ में एक बहुत अच्छा घोड़ा को पकड़ लिया था। यह घोड़ा बहादुर खाँ का था। उसे औरंगजेब ने चम्पतराय से माँगा परन्तु चम्पतराय ने घोड़ा देने से इनकार कर दिया क्योंकि उनको यह घोड़ा युद्ध के समय (विजय में) मिला था।

चम्पतराय को इस समय स्वतंत्रता संग्राम करने का अच्छा मौका मिला था उस समय शुत्रा का युद्ध जारी था। चम्पनराय ने यही मौका औरंगजेब से स्वतन्त्र होकर अपना राज्य स्थापित करने योजना शुरू कर दी और सम्राट से विरोध करने के उपाय करने लगे। विन्द्रोह करने का मुख्य कारण घोड़ा से शुरू हो गया था। चम्पतराय मुगल सत्ता को समाप्त करना चाहते थे।

कुछ समय बाद औरंगजेब और चम्पतराय में फिर अनबन हो गई। इस अनबन के कई कारण थे। इसी समय सम्राट का भ्राता शुत्रा फिर बड़ी सेना लेकर इलाहाबाद लड़ने आया। तब सम्राट ने चम्पतराय को आज्ञा दी कि आप इलाहाबाद शुत्रा से लड़ने जावे। परन्तु चम्पतराय ने

सम्राट की आज्ञा मानने से इनकार कर दिया इन सब बातों से सम्राट और चम्पतराय में बिरोध हो गया। चम्पतराय स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की इच्छा में लगे थे।

औरंगजेब सदा से ही चम्पतराय को परेशान करने का उपाय किया करता था परन्तु उसे एक हिन्दू वीर बुन्देला का सम्मान विबश हो करना पड़ता था और वह भी अपने स्वार्थ के लिए सब करता था। परन्तु वह हमेशा किसी बहाने से चम्पतराय की जागीर वापस लेने के प्रयत्न में था चम्पतराय को औरंगजेब की यह कपट भावना अच्छी तरह मालूम हो गई थी इसी बजह से चम्पतराय ने बादशाह की दी हुई सनदें और अस्त्र शस्त्र वापिस कर दिए और स्पष्ट तरह से बादशाह की आधीनता में रहने से इन्कार कर दिया।

परतत्रता को त्याग स्वतन्त्रता का डंका बजाते हुए चम्पतराय ओरछा आये चम्पतराय की वीरता का सुयश सारे देश में फैल चुका था। ओरछा वापिस आते ही तमाम सेना सरलता से मिल गई इस सेना के सहारे और अपनी अतुल वीरता के वल से राजा चम्पतराय ने एक के पश्चात् दूसरा किला जीतना शुरू कर दिया औरंगजेब चम्पतराय की वीरता चतुरता को जानता ही था कि चम्पतराय से कोई मुसलमान सेनापति विजयी नहीं हो सकता है। इससे दतिया के राजा शुभकरण को, जो कि सूबे बुन्देलखन्ड का दिल्ली की बादशाहत की ओर से सूबेदार भी नियत किया गया था सेना के सेनापतित्व के लिए चुना गया शुभकरण बुन्देलखण्ड के प्रत्येक भाग से परिचित था और वह बुन्देलखण्ड में पहिले लूटमार भी किया करता था बादशाह औरंगजेब ने एक बड़ी भारी सेना देकर शुभकरन को चम्पतराय का विनाश करने भेजा।

औरंगजेव के पास से आने के बाद चम्पतराय ने भांडरे को लूटा, फिर ऐरछ का किला ले लिया और यहीं पर अपने रहने का स्थान बनाया

फिर इसी स्थान से बुन्देलखन्ड को स्वतन्त्र करना शुरू कर दिया उसी समय मुगलों का नौकर बनकर शुभकरण, अपने बुन्देलखन्डी महान वीर के स्वतन्त्र होने के प्रयत्न को निष्फल करने के लिए, बहुत सी मुगलसेना लेकर आ पहुँचा शुभकरण की सेना को कई बार चम्पतराय ने युद्ध में पराजय किया। चम्पतराय के नेतृत्व में सेना को अधिक सुख मिलता था। औरंगजेब ने जब देखा कि शुभकरण हार कर भाग आया है तब वह स्वयम् अपनी बड़ी सेना लेकर ओरछा पर चढ़ आया और चम्पतराय को घेर लेने का प्रयत्न किया चम्पतराय वीरता से सामना करते रहे। बुन्देलखन्ड में औरंगजेब की सेना बिना बुन्देलों की सहायता के कुछ भी न कर सकती थी। इससे औरंगजेब ने अपनी सेना में बहुत से बुन्देला भर्ती किए इनकी और शुभकरण की सहायता से चम्पतराय के ठहरने के सब मार्ग औरंगजेब को मालूम होते गये औरंगजेब को चम्पतराय से युद्ध करते समय इन ही की सहायता ने बहुत ही काम दिया औरंगजेब की बड़ी सेना होने पर भी चम्पतराय और उनकी सेना ने वीरता और धीरता से युद्ध किए परन्तु धीरे धीरे चम्पतराय की सेना कम होती गई। उसी समय में चम्पतराय और पहाड़सिंह के पुराने विरोध ने विघ्न डाला।

वि० स० १७२० में पहाड़सिंह का देहान्त हो गया परन्तु पहाड़सिंह की रानी हीरादेवी ने अपने पति विरोधी चम्पतराय को हराने के हेतु चम्पतराय के मित्र और सुजानराय को बेदपुर में धोखे से मरवा डाला। सुजानराय की मृत्यु से चम्तपराय को बहुत दुःख हुआ और उनकी कार्य सिद्धि में एक बड़ी बाधा प्रगट हुई। इस युद्ध में चम्पतराय के पुत्रों ने भी बहुत वीरता से सहायता दी। चम्पतराय की फौज कम हो जाने के कारण वह सिहोरा के जमीदार इन्द्रमाणी के पास गये। इन्द्रमाणी चम्पतराय के पुराने मित्र थे परन्तु घर पर नहीं मिले फिर भी साहिबसिंह घंघेरे ने चम्पतराय का स्वागत किया। इसके बाद चम्पतराय ने अपने पुत्र छत्रसाल को थानसिंह के पास भेज दिया। वह छत्रसाल के बहनोई थे, परन्तु ऐसे अबसर पर छत्रसाल का स्वागत करना तो दूर

रहा बहिन ने बात तक नहीं पूछी। थानासिंह घर में नहीं थे वह रात्रि को आये।

सिहोरा में भी रहना चम्पतराय ने उचित न समझा वह बीमारी की हालत में अपनी रानी लालकुंवर (सारंधा) को साथ ले मोइन गांव जाने को निकल पड़े सिहोरा के साहिबसिंह धंधेरे ने अपने दो सौ सिपाही चम्पतराय की सुरक्षार्थ साथ में भेज दिए थे सिपाहियों ने फिर से सिहोरा वापिस चलने की सलाह दी।

वि० सं० १७२१ में जब राजा चम्पतराय बीमारी हालत में सिहोरा के जगल में चले जा रहे थे तब रानी हीरादेवी पहाड़सिंह की पत्नी ने दलेल दऊवा के साथ सोलह हजार सवार और इन्द्रमाणी को पीछा करने भेजा गया था चम्पतराय नाला फाँदते समय घोड़ा से गिर कर घायल भी हो गये थे शाही सेना अपना घेरा डाले हुए चम्पतराय पर आक्रमण कर रहे थे लेकिन रानी सारन्धा ने बहुत वीरता पूर्वक युद्ध किया था। मुगलों की सेना के सहित दलेल दऊवा हार कर चार कोस पीछे भाग गये थे।

रानी सारन्धा ने अपने पति चम्पतराय की आज्ञा लेकर घोड़े पर सवार होकर बहादुरखां और दलेल दऊवा और रानी हीरादेवी के पुत्र इन्द्रामनी (पहाड़सिंह के पुत्र) युद्ध भूमि में आकर घमासान युद्ध हुआ इस लड़ाई में रानी सारन्धा ने इन्द्रमानी को हरा कर भगाया और दलेल दऊवा को सोलह हजार सेना सहित मार डाला तथा शाही सेना के दस हजार योद्धा लड़ाई में रानी सारन्धा के हाथ में मार डाले गये। इस युद्ध में रानी सारन्धा की विजय हुई। परन्तु बहादुरखां ने मोरनगांव के पास फिर आक्रमण कर दिया। उस समय रानी सारन्धा के पास केवल दो सौ सिपाही थे।

रानी भी बड़ी हिम्मत और बहादुरी से लड़ी, परन्तु बड़ी फौज के सामने उस अकेली की भला क्या हस्ती थी? गम्भीर रूप से घायल हो

गई। जल्दी से बार नचाती हुई राजा की पालकी के पास जाकर कहने लगी, "महाराज, अन्तिम विदाई लेने आई हूं भूल चूक क्षमा करेंगे। आपके चरणों की सेवा करने के लिए वहाँ प्रतीक्षा करूंगी।"

राजा ने कहा कि "रानी बीस वर्षो से सुख-दुख की साथी थी, आज मुझे इन दुश्मनों के हाथ में बीमार हालत में छोड़कर जाते हुए तुम्हें कुछ भी चिन्ता नहीं होती? क्या मुझे उम्र भर मुगलों की कैद में छोड़ जाओगी? मेरा मन कहता है कि तुम्हारे वीर पुत्र जिन्दा हैं, वे दुश्मनों से अवश्य बदला लेंगे। अतः यह तलवार पहले मेरी छाती में चुभा दो और फिर अपनी में।"

रानी ने रोते हुए कहा कि "महाराज क्या आप मुझे पति हन्ता होना बनाना चाहते है?" पर अन्त में रानी ने वास्तविक स्थिति को अनुभव कर वैसा ही किया। मुगल सिपाही जब वहां पहुंचे तो दो तड़पती हुई लाशों को देखा। रानी का सिर पति की छाती पर टिका हुआ था। इस प्रकार सं० १७२१ वि० में ८७ वर्ष की उम्र मे चम्पतराय का देहान्त हो गया। आज भी स्फुट रूप में यह लोकगीत कहीं कहीं सुना जा सकता है:—

रानी खैंच सुघर कटार
करदई पति के तन से पार
अब तो जीवन खों धिक्कार
सोच समझ जा अपने मन में
मारी तेग दुधारू जू
सुनो सकल नर नारी जू।

सुजानसिंह (प्रथम) सन् १६६३ ई० से १६७२ ई० तक

बि० सं० १७२० से बि० सँ० १७२९ तक

सं० १७२० वि० में पहाड़सिंह की मृत्यु के पश्चात पहाड़सिंह के पुत्र सुजानसिंह (प्रथम) राजा हुए। इनकी रानी कंचन कुंअर ने अपने नाम पर ओरछा में कंचन घाट बनवाया। अड़जार का तालाब, मऊ के पास रानीपुर कंचनपुरा ग्राम बसाए।

अलमगीर औरङ्गजेब यद्यपि क्रूर था परन्तु उसकी पुत्रियाँ सदय थीं शाहजादी बदरुन निशां सुजानसिंह (प्रथम) के भाई ओरछा युवराज इन्द्रमणि से प्रेम करती थी। उसी करुणा भावावेश में उसने अपने पिता के सिपाह सालार रण दूलहखां द्वारा ओरछा के चतुर्भुज मन्दिर की टूटने से रक्षा की थी। घटना इस प्रकार है:—

वि० सं० १७२८ की ऐतिहासिक घटना

औरङ्गजेब के सिपहसालार रण दूलहखाँ की आज्ञा हुई थी कि चतुर्भुजी का मन्दिर तोड़कर उसके स्थान पर एक मस्जिद बना दी जाय। नगर में इस समाचार से बड़ी बेचैनी फैली हुई थी। लोग दुःख और क्रोध में भरे थे, परन्तु शाही सेना के निर्दय अत्याचार का प्रतिवाद करने की शक्ति उनमें न थी। वे अपना शोक मन हो मन दबाये लहू का घूंट पी रहे थे।

ओरछा में बादशाह औरंगजेब के सेनापति रण दूलहखां आकर ठहरे हुये थे। इस समय ओरछा का ही अमलदारी में था।

ओरछे के विशाल चतुर्भुज मंदिर के भीतरी प्राँगण में कुछ वीर पुरुष बैठे गुप्त मंत्रणा कर रहे थे। फाटक के भारी भारी किवाड़ बन्द थे औैर द्वार पर पहरे लगे थे। किसी भी व्यक्ति को भीतर आने की आज्ञा न थी।

सूर्योदय से ही झुंड के झुंड नागरिक चतुर्भुज के अंतिम दर्शन के लिए एकत्रित होने लगे थे। सारे नगर में दुख का रोना, शोक की ध्वनि

और आत्म निन्दा के वाक्य सुनाई दे रहे थे। उस दिन नगर वासियों ने अन्न जल त्याग दिया था। लोगों में छिपे छिपे यह चर्चा भी चल रही थी कि 'प्राणनाथ प्रभु' आ गये हैं। इस खबर से लोगों के हृदयों में आशा का संचार हो रहा था। परन्तु मंदिर के पट प्रातः काल से ही बन्द थे और उस दिन चतुर्भुज भगवान को भोग नहीं लगा था। यद्यपि लोगों को यह गुमान न था कि प्राणनाथ प्रभु भीतर बैठे परामर्श कर रहे हैं, फिर भी झुंड के झुंड लोग मंदिर के चारों ओर खड़े थे।

भीतर जो लोग एकत्रित थे उनमें से एक ने कहा, "देखिये, अब मामला यहाँ तक पहुँच गया हैं कि हमें कुछ न कुछ कर ही डालना चाहिए।" जो लोग वहाँ बैठे थे उनके चेहरे क्रोध से तमतमा रहे थे। उन पर दृष्टि डालकर प्रथम व्यक्ति ने कहा, "सरदारो! क्या बुन्देलखण्ड हम बुन्देलों का नहीं है? यह मंदिर क्या स्वर्गीय राजाओं की विजय कामनाओं का केन्द्र नहीं रहा? क्या आप भूल गये कि उन वीरों ने विजय पर विजय करके किस प्रकार इसकी देहली पर मस्तक टेके थे? भाग्यवान तो वीरगतियों कों प्राप्त हुये और हम उनके दरबारी और सरदार हैं, सो क्या इसलिए कि चुपचाप उनकी दी हुई जागीर को खाते रहें? क्या हमने विचारा है कि हमारी पीढ़ियों से चली आती हुई अजेय शक्ति कहाँ चली गई है और हम उसे खोकर किस उद्देश्य से जी रहे हैं और जागीर भोग रहे हैं? श्रोतागण सिर नीचा किये चुप बैठे थे। उसने फिर कहा "आपको मालूम है कि आपके' हमारे, ओरछा के और समस्त बुन्देलखण्ड के सिर पर लात मारकर जो अधिपति बनकर आए हैं वे कौन है? मुझे कहते घृणा होंनी है। वे न उच्च कुलीन हैं और न कोई सज्जन या वीर पुरुष हैं। वे एक पतित और दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति हैं, परन्तु उनकी विशेषता यही है कि उनकी पुत्री को शाही खिदमत बजा लाने का सोभाग्य प्राप्त हुआ है। बस, यही उनकी योग्यता है। यह सारंगी बजाने का काम करते थे। समझे

आप ! सारंगी बजाने का । आप क्या कहते हैं, क्या आप लोग उस अधम पुरुष की प्रजा बनकर रहेंगे ?"

"सरदारो !" उसने अपने लोहे के दस्ताने पहने हुए एक हाथ को दूसरे पर रखते हुए कहा, "इस कमीने आदमी के अधीन, जो न प्रतिष्ठित है और न योग्य, किन्तु बादशाह की कृपा से वह हमें अपनी स्वेच्छाचारिता से जेर करना चाहता है, क्या हमें सब सहते रहना उचित है ? इस गन्दे घास फूस को क्या हम उखाड़ कर न फेंक दें और अपना मार्ग साफ न करें ? सज्जनो ! मैं आप सबसे पूछता हूं, आपका क्या उत्तर है ?"

एक स्वर से सब चिल्ला उठे, "अवश्य, भले ही हमें प्राणों की बाजी लगानी पड़े ।" प्रत्येक पुरुष क्रोध और आवेश में बोल रहा था और गुम्बज में उनकी ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही थी । एक मात्र प्राण नाथ प्रभु शान्त बैठे थे । अब वे बोले ! उन्हें बोलने का उपक्रम करते देख सभी चुप हो गए । प्राणनाथ ने हंसकर कहा, "यह सब तो ठीक है, पर म्याऊं का ठौर कौन पकड़ेगा ? कहो, किसमें इतना साहस है ?"

सर्वत्र सन्नाटा हो गया । इस मण्डली में एक कोने में एक अल्पवयस्क बालक बैठा था । यह अपरिचित एवं विदेशी था । इसे प्राण नाथ प्रभु की सिफारिश पर इस गुप्त सभा में शामिल किया गया था । उसने धीरे से खड़े होकर मुस्कराकर कहा, "यदि प्रभु का आदेश हो, तो यह सेवा यह तुच्छ सेवक करेगा ।" प्राण नाथ प्रभु हस दिये । सभा ने विस्मित होकर देखा यह अद्भुत बालक कौन है ?

एक व्यक्ति ने झरोखे में से झाँककर देखा और चिल्लाकर कहा, "देखो, वह आ रहा है ।" सब लोगों ने झरोखे में से देखा सवारों का एक दल हथियारों से सुसज्जित आ रहा है । रण दूलहखां बहुमूल्य और भड़कीले वस्त्र पहने एक अरबी घोड़े पर सवार सबसे आगे चला आ रहा है । एक

प्यादा उस रकाब के साथ हुक्का लिए और दूसरा पीकदान लिए आगे बढ़ रहा है। उसके पीछे पाँच सौ सवार हथियारों से लैस आ रहे हैं। इस गर्वीले दल को देख यह छोटी सी मण्डली दांत पीसने लगी। बाहर कोलाहल होने लगा। मन्दिर में सिंहद्वार पर भारी-भारी चोटें पड़ने लगीं। सभी लोग द्वार पर आकर एकत्र हो गये। प्राण नाथ प्रभु ने कहा, "देखो, सभी लोग संयम में रहना, शीघ्रता न करना मैं और यह सुन्दर युवक सब कुछ ठीक कर लेंगे। अभी तुम लोग भीतर ही रहो।"

यह कहकर प्राणनाथ प्रभु सिंहद्वार पर आकर बोले, "तुम कौन हो?'

"मैं सिपाह सालार रण दूलहखां हूं, द्वार खोल दो।"

"मैं भीतर जाऊंगा।"

"किसलिए ?"

"मैं बुतशिकन हूं। मैं मन्दिर को ढहा दूंगा, मूर्ति को तोड़ूगा।"

"यह काम तुम किसकी आज्ञा से करते हो ?"

"अपनी आज्ञा से।"

"और यदि द्वार न खोले जायें ?"

'तो जबरदस्ती दरवाजा तोड़ दिया जायेगा।"

"बल-प्रयोग का प्रयोजन नहीं, द्वार खोलता हूं।"

इसके बाद प्राण नाथ प्रभु ने फाटक की भारी साँकल पर हाथ डाला एक भयानक चीत्कार करके द्वार खुल गया। प्राण नाथ प्रभु अपना भगवा परिधान पहने बाहर निकल आए। तत्क्षण एक प्रचण्ड जयघोष हुआ। सहस्त्रों नर-नारी चिल्ला उठे "प्राण नाथ प्रभु की जय।"

रण दूलहखाँ उस सतेज मूर्ति को आगे बढ़ते देख पीछे हट गया। प्रचण्ड जयघोष ने उसे घबरा दिया। परन्तु तुरन्त उसने साहस कर कहा, "बागी, तू कौन है, क्यों इतनी भीड़ लगा रखी है ?" प्राणनाथ प्रभु एक शब्द भी न बोले। वे चुपचाप खड़े रहे। रणदूलह खां ने क्रोध में पागल

होकर कहा, "अरे गुस्ताख पूंछता हूं और तू जबाव नहीं देता। ठहर मैं अभी तेरा सिर भुट्टे-सा उड़ाता हूं।" यह कहकर और तलबार खींच कर वह आगे बढ़ा।

प्राण नाथ ने बज्र गर्जन करके कहा, "वहीं खड़ा रहा।"

दूसरे ही क्षण मन्दिर में से अनेक वीर निकल कर प्राण नाथ प्रभु के पीछे आ खड़े हुए। उन्होंने तलवारें सूंत लीं।

रण दूलहखाँ ने फिर साहस संग्रह किया। उसने कहा, "समझ गया। तू प्राणनाथ गुसाईं है, जो तमाम मुल्क में बगावत फैलाता फिरता है।" प्राणनाथ प्रभु बोले नहीं, बज्र दृष्टि से उसे देखते रहे। रण दूलहखां ने फिदाईखाँ फौजदार को हुक्म दिया, "क्या देखते हो, इस बागी की गर्दन एक ही हाथ में उड़ा दो।" परन्तु फिदाईखाँ की हिम्मत न हुई। उसने अपने एक हवलदार से कहा, "हैदरखाँ तलवार के एक ही हाथ में इस गुसाईं का सिर धड़ से अलग कर।" रण दूलहखाँ ने जो काम फिदाईखाँ को सौंप था, फिदाईखाँ ने वह हैदरखाँ को सौंप दिया। यह देख प्राणनाथ प्रभु मुस्करा दिये। उन्हें मुस्कराता देख हैदरखाँ ने एक सिपाही से कहा, "मुहम्मद खाँ, खां साहेब का हुक्म बजा लाओ और एक ही हाथ में उसका सिर भुट्टे की भाँति उड़ा दो।" मुहम्मदखां ने तपाक से कहा, "वल्लाह, हुजूर की मौजूदगी में एक काफिर को कत्ल करूं? मुझसे हरगिज यह गुस्ताखी न होगी। जनाव के एक ही हाथ में इस बदनसीब का सिर कला मुण्डी खा जायगा।" रण दूलहखाँ यह देखकर कुढ़ गया। पर यह समझ गया कि इस गुसाईं पर हाथ डालना साधारण आदमी का काम नहीं है। उसने होंठों को दाँतों से दबाकर तलवार सूंत ली और आगे बढ़ा।

हजारों की संख्या में खड़े नर-नारी विचलित और उत्तेजित हो उठे। प्राणनाथ प्रभु ने फिर गर्जन से कहा, "खबरदार, सब लोग शान्त खड़े

रहे ।" रण दूलहखां थर–थर कांपने लगा । पर उसने आगे बढ़कर कहा, "गुसाईं मरने को तैयार होजा ।"

"मूर्ख, में अभी नहीं मारूंगा ।"

रण दूलहखाँ ने तलवार ऊपर उठाई । प्राणनाथ प्रभु बज्र की भाँति खड़े थे ।

अब वह युवक तेजो से मन्दिर के कक्ष से निकला और प्राण नाथ प्रभु के सामने खड़े होकर महीन किन्तु तीव्र स्वर में बोला, "खामोश रण दूलह खाँ, तलवार जमीन पर रख दो और इस बुजुर्ग से दस्तबस्ता माफी माँगो ।"

"तू कौन है, तेरी हिम्मत पर आफरीन है ! हट जा बच्चे, वरना यह तलवार तेरे खून से ही पहले सुर्ख होगी, क्या तू सिपाह सालार रण दूलह खां के गुस्से को नहीं जानता ?"

युवक जोर से खिल खिलाकर हंस पड़ा । इसके बाद उसने अपने सिर की पगड़ी उतार कर फेंक दी । एड़ी तक लटकने वाली सघन काली घूंघर वाली केश राशि बिखर गई । उसने दर्प से कहा, "पीछे हट जा, शाहजादी बदरुन निशाँ तुझे हुक्म देती है कि अपनी तलवार जमीन पर रखकर झट इस बुजुर्ग से माफी माँग ।"

रण दूलहखाँ का चेहरा पीला पड़ गया । वह थर–थर काँपने लगा । उसने तलवार शाहजादी के चरणों पर रख दी और कहा, "हुजूर, गुलाम की गुस्ताखी माफ फरमाई जाए, हुजूर को मैं पहचान न सका ।"

"इस तरह तुम डाकू और बदमाशों की तरह शहंशाह की रिआया पर जुल्म करते हो ?" शाहजादी ने कहा ।

"हुजूर……………"

"पहले उस बुजुर्ग से माफी मांग ।"

रण दूलहखां घुटनों के बल प्राणनाथ प्रभु के चरणों पर गिर गया । प्राणनाथ हंस पड़े और हाथ उठाकर उसे अभय किया ।

फिर प्रचण्ड जयघोष हुआ, "प्राणनाथ प्रभु की जय।"

प्राणनाथ प्रभु ने कहा, "रण दूलहखां, तुम यदि बादशाह के सच्चे सेवक हो, तो तुम्हें कोई ऐसा काम न करना चाहिए जिससे प्रजा के मन में शहंशाह के प्रति क्रोध या घृणा उत्पन्न हो। कोई राजा बल से देर तक प्रजा पर हुकूमत नही कर सकता, जब तक कि वह उसका दिल न जीत ले।"

रण दूलहखां जल्दी-जल्दी शाहजादी और प्राणनाथ प्रभु को बार-बार सलाम कर अपनी फौज सहित चला गया।

जब औरंगजेब की सेना का प्रमुख अधिनायक रणदूलह खाँ माह बैसाख शुक्ल १४ दिन भोमवार सं० १७२८ वि० में ओरछा से वापस चला आया। ओरछा की घटना का समाचार बादशाह को सुनाया तो बादशाह औरंगजेब ने सेनापति रणदूलहखां के सहित ग्वालियर के सूबेदार फिदाईखां को सहायतार्थ भेज कर वि० सं० १७२८ में पुनः ओरछा के मन्दिरों को तोड़ने मूर्त्तियों के फौड़ने की आज्ञा देकर भेजा गया उस समय ओरछा के राजा सुजानसिंह मुसलमानों के आधीन थे इस घटना का अब दूसरा अवसर आ गया था बादशाह का हुक्म मानना ओरछा के राजा को धर्म के प्रतिकूल था परन्तु हुक्म का न मानने से उनके राज्य का भी निकल जाना निश्चित था। उस समय चम्पतराय के वीर पुत्र छत्रसाल का समाचार ओरछा राजा सुजानसिंह को मिला कि छत्रसाल अपनी सेना लिए मोरपहाड़ी (जतारा) के जंगल में ठहरे हैं। दिन प्रति दिन मोरपहाड़ी में छत्रसाल के सैनिकों का जमाव अधिक होता जाता था। राजा सुजानसिंह के मन्त्रियों ने छत्रसाल से सहायता लेने की सलाह दी। राजा भी भली भाँति जानते थे कि छत्रसाल धर्म की रक्षा अवश्य करेगें। राजा सूजानसिंह ने छत्रसाल को सहायता के लिए ओरछा में बुलाया तो वह सेना सहित धर्म की रक्षार्थ शीघ्र ओरछा आए। साथ में अगदराय और बलदिवान भी ओरछा आ गये।

राजा सुजानसिंह ने छत्रसाल का यथोचित सम्मान किया। सुजानसिंह और छत्रसाल की बड़ी देर तक सलाह होती रही। अन्त में छत्रसाल और राजा सुजानसिंह दोनों ओरछा के श्री रामराजा मन्दिर में आये छत्रसाल ने धर्म रक्षार्थ मन्दिर में होकर प्रतिज्ञा की। बुन्देलखन्ड को स्वतन्त्र बनाया जावे। छत्रसाल ने इस कार्य करने का सकल्प किया थोड़ी देर बाद शाही सेनायें बड़े वेग से ओरछा आ गई और घमासान युद्ध हुआ रणदूलहखाँ और फिदाईखाँ लड़ाई में हार कर भाग गये। छत्रसाल की विजय हुई उसी वर्ष वि० सं० १७२६ में सुजानसिंह राजा का देहान्त हो गया था।

(इन्द्रमणि सन् १६७२ से सन् १६७५ ई० तक)

वि० सम्बत् १७२९ अर्थात् सन् १६७२ ई० में सुजानसिंह के नि:सन्तान निधन से उनके भाई इन्द्रमणि ओरछा की गद्दी पर आसीन हुए। जिन्होंने सं १७२६ वि० से सं० १७३२ वि० (सन् १६७२ से सन् १६७५ ई० तक) राज्य किया। सं० १७३२ वि० में इन्द्रमणि का निधन हो गया।

जसवन्तसिंह (सन् १६७५ से सन् १६८४ ई० तक) (वि० सं० १७३२ से वि० स० १७४१ तक)

इन्द्रमणि के निधन के पश्चात् स० १७३२ वि० में अर्थात् सन् १६७५ ई० इन्द्रमणि के पुत्र जसवन्तसिंह ओरछा के शासक बने। जसवन्त सिंह ने सं० १७३२ वि० से सं० १७४१ वि० (सन् १६७५ से १६८४ ई० तक ९ वर्ष ओरछा का शासन किया। यह साधु सेवक प्रजा पालक राजा थे। इन्होंने अपने नाम पर जसवन्तपुरा बसाया। इनके सामने ही इनके पुत्र भगवन्तसिंह का बचपन में ही निधन हो गया था। अपने पुत्र भगवन्त सिंह के नाम पर इन्होंने भगवन्तपुरा बसाया था। इनकी महारानी अमर कुमारी ने पिछोर ग्राम में श्री रसिक विहारी और श्री रनछोर जी के दो मन्दिरों का निर्माण कराया था। पिछोर से १० मील की दूरी पर बानपुर में किला, तालाब और बावरी का निर्माण कराया। अमर कुमारी ने अपनी

पुत्री हिमाचल कुमारी को ४५ गाँव खनियाधाना में दान स्वरूप प्रदान किये थे। शिला-लेख से प्रमाण मिलता है। सं० १७४१ वि० में महाराज जसवन्तसिंह का निधन हो गया। वे निःसन्तान मरे।

उद्दोतसिंह (सन् १६८४ से सन् १७३६ ई० तक) (वि० स० १७४१ से वि० स० १७९३ तक)

सं० १७४१ वि० में जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् रानी अमर कुमारी ने श्री दिमान हरदौल लाला के नाती को जो उस समय बड़ौनी ऐरछ के जागीरदार उद्दोतसिंह को गोद लेकर ओरछा के सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया था।

महाराज उद्दोतसिंह बड़े बलशाली और वीर थे। कितने ही युद्धों में अपने वीरत्व का परिचय दिया था और मुगल सम्राट तक से खिलयत प्राप्त की थी। तत्कालीन मुगल सम्राट बहादुरशाह से प्राप्त हुई एक तलबार जिस पर बहादुरशाह का नाम भी अंकित है आज भी ओरछा राज्य के शास्त्रालय में सुरक्षित है। यह तलबार इन्हें मुगल सम्राट बहादुरशाह ने इनके वीरत्व से प्राभावित होकर दी थी। इन्होंने एक बार अकेले ही एक शेर को मार डाला था। इसी प्रकार और भी अनेक घटनायें इनके सम्बन्ध में प्रसिद्ध हैं। सं० १७६६ वि० में पहाड़सिंहपुरा जिसे औरंगाबाद कहते हैं अधिकार का फरमान आपको मिला। सं० १७९१ वि० में १३ महल मिलनें की सनद भी मिली थी।

Bahadur Shah had Succeeded Aurangabad in 1707 Udot Singh One day when in attendance On the emperer, pilled a tiger single handed, in commen Oration of which Bahadur shah prese-nled him with a sword engraved with the name 'Baha dur shah' which is still reserved.

Udot Singh was On' Ist Rajjab 1121 A. H. (A. D 1702) pranted a forman Confirming him in possession of the village of Paharsingh Pura near Aurangabad.

In 1734 by a grant (dated 10th shawal 1147 A. H.) udot singh was given 13 Mahal)"

Orchha state Gazettier.

महाराज उद्दोतसिंह को हिन्दी साहित्य से बहुत प्रेम था। इनके दरवार में एक सौ कवि सम्मान पूर्वक रहा करते थे। महाकवि हरिसेवक मिश्रः ने इनके आश्रय में कामरूप नामक महाकाव्य की रचना की थी। दिग्गज धनराज गोप कवि इनके दरबार के रत्न थे। इनके पुत्र देवीसिंह और रणधीरसिंह इनके समय में ही मृत्यु को प्राप्त हुये थे। स० १७९३ वि० अर्थात् सन् १७३६ ई० में ५२ वर्ष शासन करने के बाद महोबा में इस संसार से महाराज उद्दोतसिंह बिदा हुए।

पृथ्वीसिंह (सन् १७३६ से सन् १७५२ ई० तक) (वि० स० १७९३ से वि० स० १८०९ तक)

सं० १७९३ वि० उद्दोतसिंह के नाती पृथ्वीसिंह ओरछा के सिंहासन पर आसीन हुए। इन्होंने स० १७९३ वि० से सं० १८०९ वि० तक अर्थात् (सन् १७३६ ई० से सन् १७५२ ई०) शासन किया। इन्होंने अपने नाम पर पृथ्वीपुर नामक ग्राम बसाया था। इनके एक मात्र पुत्र अमरसिंह शेर के शिकार में मृत्यु को प्राप्त हुए थे। सं० १८०९ वि० में इनकी मृत्य हो गई।

सामन्तसिंह सन् १७५२ से १७६५ ई० तक (वि० सं० १८०९ से वि० सं० १८२२ तक)

सं० १८०९ वि० में पृथ्वी सिंह की मृत्यु के पश्चात् इनके नाती सामन्तसिंह राजा हुए। इन्होंने सामन्तनगर बसाया। यह बड़ागाँव वालों

की साखा में थे। ओरछा गजेटियर में इनके समबन्ध में इस प्रकार लिखा है:-

Sawant Singh died in 1766 and was follod Uccesively by Hate Singh, Man Singh and Bharti Chand All these Succeeded On adaption Hate Singh being a Grand son of Udot Singh Man Singh a Grate son of Udot Singh and Bharti Chand a Member of the Baragaon branch of the house.

इन्होंने सं० १८०९ वि० से स० १८२२ वि० (सन् १७५२ से सन् १७६५ ई०) तक शासन किया। वि० सं० १८२२ में देहान्त हो गया था।

विक्रमाजीत (सन् १७६५ से सन् १८१७ ई० तक) वि० सं० १८२२ से वि० सं० १८७४ तक

सं० १८२२ वि० महाराजा विक्रमाजीत ओरछा के राजा हुए। इन्होंने सं० १८२२ से १८७४ वि० (सन् १७६५ से १८१७ ई०) तक राज्य किया। सं० १८४० वि० में यह ओरछा से अपनी राजधानी स्थानान्तरित करके टीकमगढ़ ले गये। राजघराने के सभी व्यक्ति टीकमगढ़ में निवास करते हैं लेकिन ओरछा नरेश कहलाते हैं। स० १८३५ वि० से स० १८४४ वि० (सन् १७७८ से सन् १७८७ ई०) तक ९ वर्ष में टीकमगढ़ का किला बनाया था। सं० १८४० से स० १८४४ वि० तक लिधौरा राजधानी रहने का लेख है लेकिन स० १८४० वि० से टीकमगढ़ ही राजधानी समझी जाती है।

यह कविता प्रेमी थे। अपना नाम (लघु) कविता में लिखा है। इन्होंने बड़ी कुशलता से अपने राज्य के खोये हुए भाग को फिर से जीतकर

अपना राज्य बढ़ाया था। आपने ही सं० १८६६ में ब्रिटिश सरकार से सन्धि की थी। [23rd December 1811 Creaty & alliance with the British] इनकी रानी श्री लड़ई सरकार ने टीकमगढ़ में स० १८६४ वि० में श्री राधा माधव मन्दिर बनवाया था। इन्होंने सं० १८७० वि० में ओरछा से ४ मील दूर से बारी नामक पुल जामने नदी पर बनवाया था। सं० १८७४ वि० में इनका देहान्त हो गया।

धर्मपालसिंह सन् १८१७ ई० से सन् १८३६ तक (वि० सं० १८७४ से वि० सं० १८९३ तक)

सं० १८७४ वि० में विक्रमाजीत के पुत्र धर्मपालसिंह राजा हुए। इनकी रानी गड़ई सरकार ने सं० १८७८ वि० में टीकमगढ़ के नजरबाग मन्दिर का निर्माण कराया। इन्होंने सं० १८७४ वि० सं० १८९३ वि० (सन् १८१७ ई० से सन् १८३६) तक १९ वर्ष राजा रहे। यह निःसन्तान मरे।

तेजसिंह सन् १८३६ से सन् १८४२ ई० तक वि० सं० १८९३ से वि० सं० १८९९ तक।

धर्मपालसिंह निःसन्तान मरे। अतः विक्रमाजीत के भ्राता एवं धर्मपालसिंह के चाचा तेजसिंह स० १८९३ वि० में राजा हुए। इन्होंने सं० १८९३ वि० से १८९९ वि० (सन् १८३६ से सन् १८४२ ई०) तक छः वर्ष राज्य किया।

महाराजा सुजानसिंह (द्वितीय) सन् १८४२ ई० से सन् १८५५ ई० तक वि०सं० १८९९ से वि० सं० १९१२तक

राजा तेजसिंह की मृत्यु के बाद उनका लड़का सुजानसिंह द्वितीय ने राज्य शासन प्राप्त वि० १८९९ में प्राप्त किया था। किन्तु धर्मपालसिंह की पत्नी लड़ई रानी ने आपत्ति की और गोद लेने का दावा किया। इससे

रियासत के दो भाग हो गये जिन्हें नया और पुराना राज्य कहते हैं। लड़ई रानी का हिस्सा पुराना राज्य कहलाता था। इस झगड़े के सबब से राजा सुजानसिंह झांसी चले गये और झाँसी में दो साल तक रहे। बाद में ओरछा आये परन्तु इनके साथी पृथ्वीपुर में लड़ाई में मारे गये जिससे वह फिर झांसी चले गए। सरकार ने राजा तेजसिंह की मृत्यु के पश्चात इनकी गद्दी नसीनी स्वीकार कर ली थी। इससे यही ओरछा की गद्दी पर अधिकारी हुए। लड़ई रानी का दावा खारिज कर दिया गया किन्तु वे छोटे थे। इससे लड़ई रानी ही प्रबन्ध कर्ता मानी गई। इनके कोई सन्तान नहीं थी। इससे इनकी मृत्यु के बाद देवीसिंह ने दावा किया परन्तु सरकार ने उनका दावा खारिज करके लड़ई रानी को हम्मीरसिंह को वि० सं० १९१२ में गोद लेने की आज्ञा दे दी इनके पिता दिगौड़ा रहते थे जो मदनसिंह जो दिमान हरदौल के बशज, दसवीं पीढ़ी में थे। हरदौल विजयसिंह, परतापसिंह, भगवन्तसिंह, रतनसिंह, खुमानसिंह, शत्रजीतसिंह, रामसिंह, मदनसिंह, हम्मीरसिंह हुए। वि० सं० १९१४ (सन् १८५७ ई०) के राज्य विद्रोह के समय रानी ने अंग्रेजों का पक्ष समर्थन किया जब अंग्रेज लोग ग्वालियर से भागकर बानपुर से टीकमगढ़ आये तब राजा ने अंग्रेजों का अच्छा सत्कार किया और झांसी तोड़ने के समय नत्थेखां बजीर ने स्वत: जाकर अंग्रेजों की सहायता की थी। वि० स० १९१६ में हम्मीरसिंह को गोद लेने की सनद मिली थी। रानी लड़ई सरकार वि० सं० १९१४ में मर गई थी।

बुन्देलखण्ड के राजाओं के साथ अंग्रेजों की सन्धियाँ हुई थी। इन सब लोगों को अपने अधिकार में रखने के लिए इन लोगों ने छावनियों मे फौज रखी और उनके प्रबन्ध की देखरेख के लिए पोलिटिकल एजेन्ट रखे। सं० १८९२ (सन् १८३५ ई०) में पश्चिमोत्तर प्रदेश के लेफ्टिनेन्ट गवंनर के सुपुर्द उन सब राज्यों की देखरेख का भार था। चार साल के बाद सागर और दमोह के जिले पश्चिमोत्तर प्रदेश से अलग कर दिये गये। इन जिलों का अधिकार कमिश्नर को दिया गया। यह कमिश्नर झाँसी के पोलिटिकल एजेन्ट के आधीन था।

पीछे झाँसी का पोलिटिकल एजेन्ट नौगांव चला गया और बुन्देलखण्ड ग्वालियर के रेजीडेंट के आधीन हो गया। कुछ वर्षो बाद वि०सं० १९११

में मध्यभारत के सब राज्य सेंट्रल इंडिया कहलाने लगे और इनकी देख रेख इसी एजेन्सी के एजेन्ट के सुपुर्द कर दी गई । तदुपरांत वि० स० १९४५ में बनियांधाना राज्य ग्वालियर रेजिडेन्ट के अधिकार में कर दिया गया। बुन्देलखन्ड में सबसे मुख्य रियासत ओरछा का मानी गई थी ।

बुन्देलखन्ड के अन्य राज्यों को सनदे मिली और अंग्रेज सरकार को इन राज्यों के आंतरिक प्रबन्ध में भी हस्तक्षेप करने का बहुत कुछ अधिकार था। शासकों ने अंग्रेजों से सनदें लेकर अंग्रेजों की स्वाधीनता स्वीकार की इन सनद वाले राज्यों के भी दो विभाग थे पहिले विभाग में वह सब राज्य आते हैं जिन्हें फौजदारी और दीवानी के पूरे अधिकार हैं परन्तु कत्ल (खन) के मामलों में पोलिटिकल एजेन्ट की अनुमति लेनी पड़ती थी। इन विभाग में पन्ना, चरखारी, अजयगढ़ बिजावर, बावनी, और छतरपुर राज्य थे। दूसरे बिभाग के राज्यों की फौजदारी मामलों में भी पूरे अधिकार नहीं थे इन राज्यों के बड़े बड़े मुकद्दमे पोलिटिकल एजेन्ट करता था। इस विभाग में सगीला, धुरबई. बिजना, टोडी-फनेहपुर, पहाड़ी (बांका), जिगनी, लुगसी, बिहर बेरी अलीपुरा, गौरहार, गरौली और नयगुवां रिवई थी। परन्तु इन सब में ओरछा राज्य सबसे प्रमुख माना जाता था।

राजा सुजानसिंह के शासन काल में बुन्देला विद्रोह वि० सं० १८९९ सन् १८४२ई० में हुआ था इसमें सागर जिले में चन्दापुर के बुंदेला जवाहिर सिंह और मालथौन के समीप नराट घाटी में मधुकर शाह और गनेशजू ने बुन्देला विद्रोह किया था बहुत से पुलिस वालों को मार डाला था और बहुत से आदमियों के साथ खिमलासा, खुरई, नरयावलो, धामौनी, बिनौका लूट लिए थे। नरसिंहपुर के जमीदार देलनशाह गौड़ने भी उपद्रव आरम्भ किया था। उसने देवरी और उसके आस पास का इलाका लूट लिया था यह धूम साल भर तक मची रही अन्त में मधुकर शाह और गनेश जू मान पुर में पकड़े गये और मधुकरशाह को फांसी की सजा दी गई सागर जेल के पीछे अभी चबूतरा बना है सब लोग पूजा करने जाते है। गनेश जू को

कालापानी की सजा दी गई थी। वि० सं० १९१२ में महाराजा सुजान सिंह स्वर्गवासी हो गये थे।

महाराजा हम्मीरसिंह (सन् १८५५ ई० से सन् १८७४ ई० तक) वि० सं० १९१२ से वि० सं० १९३१ तक

महाराजा सुजानसिंह की मृत्यु के बाद इनके कोई सन्तान नहीं थी इससे लड़ई सरकार ने वि० सं० १९१२ में हम्मीरसिंह को गोद लिया था यह दिगौड़ा के मदनसिंह के पुत्र थे हरदौल के बंशज थे। आपने ओरछा का राज्य १९ साल किया। हम्मीरसिंह के सन्तान नहीं थी इससे आपके निज भ्राता प्रतापसिंह को गोदी लिया गया था।

रानी छिपरावाली लड़ई सरकार ने प्रतापसिंह को दिगौड़ा से गोद लिया था वि० सं० १९३१ में (सन् १८७४ ई०) में हम्मीरसिंह का देहान्त हो गया और रानी छिपरावाली वि० सं० १९३३ में मर गई थीं

महाराजा हम्मीरसिंह के शासनकाल में प्रजा बहुत सुखी थी गरीबों को शासन से सहायता दी जाती थी। धर्म सम्बन्धी अनेकों कार्य होते रहते थे। भक्तों और सन्तों का आदर सम्मान था। अनाथ बच्चों व विधवा औरतों को सरकारी भोजन मिलता था श्री लक्ष्मी जी मन्दिर में चित्रकारी मरम्मत आपके समय में हुई थी।

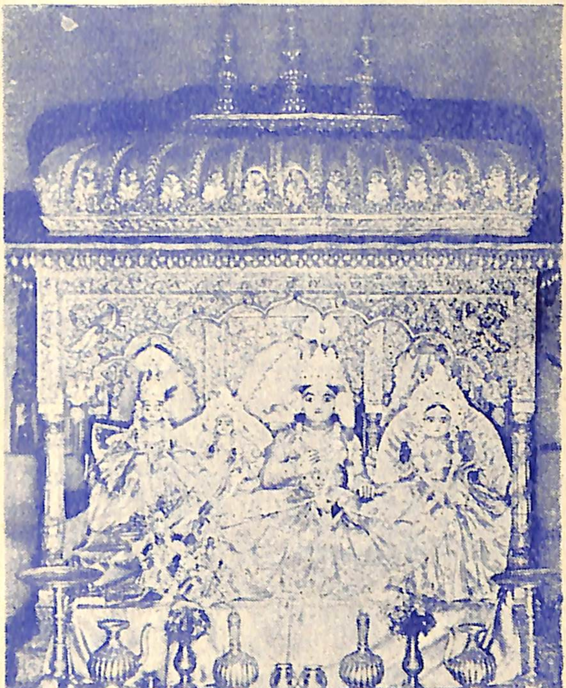
(सन् १८७४ ई० से सन् १९३० तक)

महाराजा प्रतापसिंह वि० सं० १९३१ से वि० सं० १९८७ तक

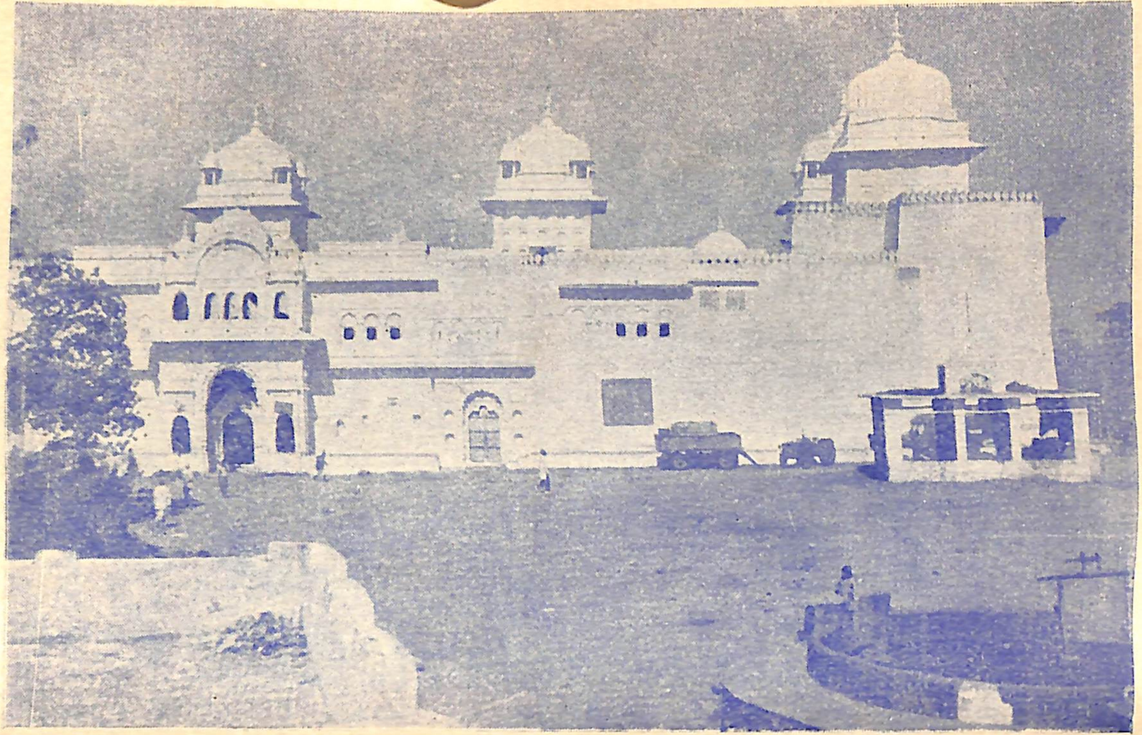
आपका जन्म बि० सं० १९११ में हुआ २० साल की उम्र में राजा हुये वि० स० १९३१ अर्थात् सन् १८७४ ई० में ओरछा महाराजा प्रताप सिंह हुए जो दिगौड़ा के मदनसिंह जागिरदार साहब के पुत्र थे गोदी में में ओरछा की गद्दी पर आसीन हुए। महारानी बृषभानकुवरि से दो पुत्र तथा तीन कन्याए हुई। सबसे बड़े पुत्र का नाम राजाबहादुर भगवन्तसिंह थे भगवन्तसिंह के चार पुत्र हुए (१) महाराजा वीरसिंह (२) श्री रावराजा करनसिंह (३) श्री रावराजा जयेन्द्रसिंह (४) श्री रावराजा महेन्द्रसिंह थे।

महाराजा प्रतापसिंह के द्वितिय पुत्र महाराजा बिजावर सामन्तसिंह जू देव थे जो वि० स० १९५५ में ओरछा से विजावर की गद्दी पर गोद

श्री किशोरी जी विजयते



श्री कनक भवन दरबार अयोध्याधाम



श्री रामराजा मन्दिर ओरछा   फोटो : देवेन्द्र कुमार बर्मा

लिए गये थे सामन्तसिंह को दो रानी थी (१) महारानी रतनकुवरि जिन्होंने चित्रकूट में विशाल मन्दिर रत्नेश्वर (रतनेश्वर) भगवान का बनवाया (२) महारानी कंचनकुबरि ने अयोध्या में कंचन भवन मन्दिर बनवाया था।

महाराजा प्रतापसिंह के जीवन काल मे आपके जेष्ठ पुत्र भगवन्तसिंह का देहान्त हो गया था जो राजाबहादुर कहलाते थे।। वि० सं० १९८७ में महाराजा प्रतापसिंह का देहान्त हो गया था।

महाराजा प्रतापसिंह की महारानी बृषभान कुवरि ने वि०सं० १९४८ से वि० सं० १९६५ तक अयोध्या में कनक भवन का निर्माण कराया था मन्दिर की सुरक्षार्थ जिला जौनपुर में १२ ग्राम कनकभवन के नाम से अर्पण किए थे

कनक भवन अयोध्या का मन्दिर इस समय भी ओरछा राज्य बंश की निजी सम्पत्ति है जिसका प्रबन्ध महाराजा ओरछा वर्त्तमान करते हैं।

बुन्देलखण्ड के देशी राज्यों में ओरछा का प्रथम स्थान है। ओरछा राज्य को अपने आंतरिक प्रबन्ध का पूरा अधिकार था। यह राज्य सनद वाले राज्यों में से नहीं था। ओरछा राज्य से अंग्रेजी राज्य से सन्धियां हुई थी। ओरछा राजा हम्मीरसिंह वि० सं० १९३१ में निसन्तान मरे थे।इन्हें वि० सं० १९२२ में महाराजा की पदवी मिली थी। इनके मरने पर इन्हीं के छोटे भ्राता प्रतपसिंह गद्दी पर आसीन हुए थे उस समय इनकी आयु २० साल की थी। पर राज्य नियमों से अनविज्ञ होने के कारण सरकार ने मेजर ए० मेन को राज्य का प्रबन्धकर्त्ता नियुक्ति किया था। महाराज की पूर्व रियासत ने वि० सं० १९१४ के राजविद्रोह के समय अंग्रेजों की अच्छी सहायता की थी। उसी के उपलक्ष में टारौली जागीर का तीन हजार रुपया वार्षिक कर जो पहिले झांसी के राजा को दिया जाता था और अब अंग्रेजी सरकार लेने लगी थी माफ कर दिया गया था। इसके सिबा मोहनपुर का

दो सौ रुपया वार्षिक लगान भी छोड़ दिया गया था महाराज को वि०स०१९४३ में सरामद०ई०हाई० राजा बुन्देलखण्ड और सबाई महेन्द्र की पदवियां दी गई थीं। और वि० स० १९५५ में जी० सी० आई० ई० की पदवी मिली थी। इसके पश्चात् बि० सं० १९६३ में जी० सी० एस० आई० की पदवी से विभूषित किए गये थे। इन्हें १९ तोपों की सलामी मिलती थी।

ओरछा का काश्तकारी लगान का कानून बहुत अच्छा था। यह कानून पुरानी प्रथा के ही अनुसार था इस कानून के अनुसार किसानों को लगान देने में कष्ट नहीं होता था। क्योंकि जब उपज हो जाती थी तब लगान सरकार को दिया जाता था। अंग्रेजी राज्य में लगान पहिले ही से नियत किया जाता था। और काश्तकारों को वह देना ही पड़ता था। यदि उपज न हुई तो लगान देने में कठिनाई होती थी। ओरछा में किसानों के लिए बीज और रुपया भी कर्ज में दिए जाते थे। जब उपज होती थी तब वसूल किए जाते थे। लगान आदि की वसूली मालगुजार करता था। वह गांव का प्रधान समझा जाता था। परन्तु किसानों के अधिकारों की रक्षा सरकार से होती थी। यहाँ पर राजा सब भूमि का मालिक नहीं समझा जाता था क्योंकि मालगुजारों के पास जो जमीन है उसके वास्तविक मालिक वही माने जाते थे। बुन्देलखन्ड के राज्यों में ओरछा की राज्य पृथा बहुत सराहनीय रही थी।

महाराजा वीरसिंह के पुत्र महाराजा देवेन्द्रसिंह जू देव हुए महाराजा देवेन्द्रसिंह के पुत्र राजा बहादुर मधुकरशाह सिंह हुए।

श्री राव राजा करनसिंह के पुत्र राव राजा नरेन्द्रसिंह जू देव तथा राव बहादुर ज्ञानेन्द्र जू देव हुए जो दिगौड़ा गोद गये थे।

श्री राव राजा जयेन्द्र के पुत्र राव राजा प्रद्युम्नसिंह जू देव हुए श्री राव राजा महेन्द्रसिंह के पुत्र दिनेशसिंह हुए।

महाराजा वीरसिंह जू देव द्वितीय

वि० सं० १९८७ से वि० सं० 2013 तक अर्थात् सन् १९३० ई० से
सन्१९४८ तक राजा रहे सन् १९५६ में स्वर्गवासी हुए

महाराजा प्रतापसिंह की मृत्यु सं० १९८७ वि० के बाद आपके नाती (प्रपौत्र) महाराजा वीरसिंह गद्दी पर वि० सं० १९८७ में महाराजा ओरछा हुए।

१७ दिसम्बर सन् १९४७ ई० को टीकमगढ़ में किले के मैदान में ओरछेश महाराजा वीरसिंह देव ने सेवा संघ की मेजर पार्टी मानते हुए ओरछा राज्य की पूर्ण सत्ता जनप्रिय मन्त्रियों के हाथ में सौंप देने की घोषणा की गई थी इस ऐतिहासिक घोषणा अपार जनसमूह ने करतल ध्वनि से स्वागत किया था देश के बहुत से नेताओं ने इस सफलता के लिए शुभ सन्देश भेजे और ओरछा के महाराजा की प्रशंसा की गई। ओरछा राज्य गजट दिनाँक १८-१२-४७ पृष्ठ १ व २ पर लिखा है।

आपके शासन काल में सन् १९३६ ई० में बेतवा नदी का पुल बना था महाराजा वीरसिंह देव की महारानी नन्द कुवरि बड़वान नरेश की कन्या थीं महाराजा देवेन्द्रसिंह का जन्म सन् १९२१ में हुआ था। महाराजा वीरसिंह देव की द्वितीय महारानी गौडल नरेश की कन्या कमला देवी राज माता थीं जो सन् १९७३ में स्वर्गवासी हुईं। महाराजा वीरसिंह देव का स्वर्गवास सन् १९५६ ई० में हो गया था।

वर्तमान महाराजा देवेन्द्रसिंह जू देव

महाराजा वीरसिंह की मृत्यु सन् १९५६ के बाद आपके पुत्र ओरछा के महाराजा देवेन्द्रसिंह हुए आपका जन्म सन् १९२१ ई० में हुआ था आपकी शादी दिनांक २४-४-३६ ई० को विजय नगर नरेश की कन्या उर्मिला देवी के साथ हुई थी। आपसे दिनांक १०-१-४५ को राजा बहादुर

मधुकरशाह सिंह का जन्म हुआ था। श्री महारानी साहिबा उर्मिला देवी का देहान्त १३-५-७३ई०को हो गया था श्री राजा बहादुर मधुकरशाह सिंह की शादी दिनांक ६-७-७३ ई० को श्री महाराजा नाभा जी दिल्ली की कन्या स्नेहलता के साथ सम्पन्न हुई थी। ओरछा राज्य बंश के सपरिवार सहित टीककगढ़ में निवास करते हैं टीकमगढ़ जिला म० प्र० में है।

पंचायती राज्य एवं टप्पा मंडल ओरछा राज्य में
(सन् १९३६ से सन् १९४७ ई० तक)

श्री महाराजा वीरसिंह देव के शासन काल में ग्राम पंचायत न्याय पंचायत कार्यालय प्रत्येक जगह खुले थे जिसमें एक प्रधान सरपच और २१ सदस्य पच होते थे। इन सब को प्रत्येक विभाग की गलतियों की रिपोर्ट देने का अधिकार था। दीवानी फौजदारी अन्य छोटे मोटे मामलों का फैसला देने का अधिकार था। वर्तमान युग की योजना ग्राम पंचायत और न्याय पंचायत से भी अधिक अधिकार उस समय राजशाही में प्रचलित थे। इनके कानून की पुस्तकें भी उस समय छपी थीं। महाराजा वीरसिंह देव के राज्य शासन काल में यह विभाग प्रजा मण्डल टप्पा मण्डल कहलाता था। यह समाज सरकारी काम करने में स्वतन्त्र थी सन् १९३६ से सन् १९४७ तक प्रजा में शान्ति रही। आपके राज्य में मधुकर नामक अंक मासिक, वार्षिक प्रकाशित होकर जनता में वितरित किए जाते थे।

ओरछा राज्य बुन्देलखण्ड के राज्यों का वर्गक्षेत्र आमदनी और उपाधियां अंग्रेजी राज्य तक की परिशिष्ट बुन्देला ठाकुर राज्य बंश उपाधी

नाम राज्य	वर्ग क्षेत्र	आमदनी	राज्यों की उपाधियां जो अंग्रेजों के समय में उपलब्ध थी
ओरछा	२०७९	१० लाख	हिज हाईनेन्स सरमद-ए-राजा-ए-

			बुन्देलखण्ड महाराजा महेन्द्र सर बहादुर जी. सी. एस. आई. जी. सी. आई. ई. बुन्देला
दतिया	९११	१८ लाख	हिज हाईनेन्स महाराजा लोकेन्द्र सर बहादुर के. सी. एस. आई.
समथर	१८०	३॥ लाख	हिज हाईनेन्स महाराजा सर बहादुर के० सी० एस० आई० (गूजर)
पन्ना	२५९६	१०। लाख	हिज हाईनेन्स महाराजा महेन्द्र सर बहादुर के. सी आई. ई.
चरखारी	८८०	६॥। लाख	हिज हाईनेन्स महाराजाधिराज सियहदारूलमुल्क देव बहादुर
अजयगढ़	८०२	३। लाख	हिज हाईनेन्स महाराजा सवाई बहादुर
बिजावर	९७३	३ लाख	हिज हाईनेन्स महाराजा सवाई सर बहादुर के. सी. आई. ई.
बावनी	१२१	२ लाख	हिज हाईनेन्स खान सफदर जंग पठान
छतरपुर	११३०	५॥ लाख	हिज हाईनेन्स महाराजा बहादुर पंवार ठाकुर
अलीपुरा	७३	५० हजार	राजा पड़िहार राजपूत
बाँकापहाड़ी	५	४ हजार	दीवान बुन्देला ठाकुर
बेरी	३२	४० हजार	राव पंवार ठाकुर
बीहट	१६	२७ हजार	राव बुन्देला ठाकुर

बिजना	८	७ हजार	दीवान बुन्देला ठाकुर
धुरबई	१५	१४ हजार	दीवान बुन्देला ठाकुर
गरौंली	३६	३५ हजार	दीवान बहादुर बुन्देला ठाकुर
गौरिहार	७१	५० हजार	जागीरदार जुझौतिया ब्राह्मण
जिगनी	२०	१४ हजार	राव बुन्देला ठाकुर
लुगासी	४५	३० हजार	दीवान बुन्देला ठाकुर
नैगुवाँ	१२	१४ हजार	जागीरदार दौआ अहीर
सरोला	३५	६० हजार	राजा बुन्देला ठाकुर
टोड़ी फतेहपुर	३६	२९ हजार	राव बहादुर दीवान बुन्देला ठाकुर

महाराजा छत्रसाल का जन्म

(वि० सं० १७०६ देहान्त वि० स० १७८८)

महाराज चम्पतराय का जन्म वि० स० १६२४ और देहान्त वि०सं० १७२१ में हुआ था। आपका सम्पूर्ण जीवन काल लड़ाई ही में बीता था। यह मुगलों की आधीनता स्वीकार करने में कभी तैयार नहीं हुए परन्तु सदा ही स्वतंत्रता के लिए युद्ध करते रहे थे मुगलों से युद्धके समय इनके अतुलरण कौशल का परिचय सारे भारत को मिल गया था। आपके पुत्र छत्रसाल का जन्म वि० स० १७०६में हुआ था। जिस समय वीर बालक छत्रसाल का जन्म हुआ उस समय मुगल लोगों से चम्पतराय की लड़ाई चल रही थी। छत्रसाल का जन्म मोरपहाड़िया (जतारा) के जंगल में हुआ था जहाँ पर मुगल लोग चम्पतराय को घेर लेने का प्रयत्न कर रहे थे। ज म से ही छत्रसाल को महलों की सेज सोने को नहीं मिली किन्तु प्रकृति देवी की गोद ही इन्हें जन्म से खेलने को मिली थी।

एक समय जब छत्रसाल की अवस्था सात माह की थी राजा चम्पतराय उनकी रानी लालकुवरि (सारन्धा) और कुछ सैनिक जंगल में

अपना भोजन बनाकर खा रहे थे। अचानक मुगल सेना ने इन सबको घेर लिया और इनका भाग कर निकल जाना भी कठिन हो गया। सब सैनिक भागे और चम्पतराय भी रानी लालकुंवरि (सारन्धा) के साथ भाग गये पर सात महीना के छत्रसाल को उठा लेने का किसी को ध्यान न रहा। चम्पत राय और उनके सैनिकों के भाग जाने के पश्चात् मुगलसेना उस स्थान पर आ पहुँची और चम्पतराय को वहाँ पर न देख करके चली गई। छत्रसाल उसी स्थान पर पड़े रहे और सौभाग्य से बच गये। इसके पश्चात् जब चम्पतराय ने देखा बालक छत्रसाल उनके साथ नहीं है तो उन्होंने ढूंढ़ने को अपने सिपाही भेजे और एक सिपाही छत्रसाल को उठा लाया। छत्रसाल को पाकर चम्पतराय को असीम आनन्द हुआ परन्तु उन्होंने छत्रसाल को ऐसी दशा में अपने पास न रखने का निश्चय किया। इस घटना को दूसरे दिन ही रानी लालकुंवरि (सारन्धा) अपने पुत्र छत्रसाल को लेकर अपने नैहर चली गई वहाँ पर छत्रसाल और उनकी माता चार वर्ष तक टेकड़ी ग्राम में रहीं थीं।

जब चम्पतराय और रानी लालकुवरि (सारन्धा) की मृत्यु वि० सं० १७२१ में हुई उप समय छत्रसाल सहरा नामक ग्राम में थे समाचार सुनकर शोक होना स्वाभाविक ही है। परन्तु वह उत्साही और धैर्यवान युवक थे इन्होंने अपने रहने का स्थान और सेना संग्रह करने का प्रबन्ध तुरन्त ही सोच लिया अपनी जागीर महेबा चले गये परन्तु शीघ्र ही ऐसा प्रसंग आया कि जिसमें छत्रसाल को अपना बाहुबल और रण चातुर्य की आवश्यकता पड़ी।

वि० सं० १७१९ में छत्रसाल ने दतिया के राजा शुभकरण के यहाँ नौकरी करली और अजमेर के राजा जयसिंह की सेना में वि० सं० १७२० में भर्ती हो गए वि० सं० १७२४ में वीर श्रेष्ट हिन्दूकुल कमल दिवाकर श्री शिवाजी से बीजापुर में भेंट हुई एक तलवार शिवाजी ने छत्रसाल को प्रदान की ओरछा के राजा सुजानसिंह का प्रोत्साहन पाकर आपकी प्रतिभा

चमत्कृत हो गई। मोर पहाड़िया के जंगल में सेना इकट्ठी करने लगे। और धामौनी-ऐरछ–सिहोरा को विजय किया छत्रसाल के पिता के साथी और उनके पुराने मित्रों ने बड़ी सहायता दी। जिन लोगों ने विशेष सहायता दी उनमें प्रधान यह हैं गोविन्दराय जैतपुर वाले–कुंवर नारायनदास–सुन्दरमन प्रमार–राममनदीआ-मेघराज पड़िहार धुरमागद–बखशी का यस्थ किशोरी लाल–अच्छे रावत–मानशाह–हरबंश–मानुभाट-बम्बल कहार और फत्ते वैश्य थे। छत्रसाल के भ्राता अंगदराय ने भी विशेष सहायता दी वि० सं० १७२४ में छत्रसाल का विवाह परी की प्रमारों की बेटी देवकुबंरि के साथ हो गया। औरंगावाद-धर्मगंज--चंदेरी-धसान का पूर्वी भाग पर विजय प्राप्त कर स्वतंत्र राज्य बनाया। वि० सं० १७२५ में खटोला वि० सं० १७२६ में वनधौरा सिरोज, महियर, ग्वालियर, पवाय, कटिया बाँसी, खादहनूरेक, मऊ, कौंच, जिगनी, जालौन, उरई, कालपी, कदौरा, जलालपुर, हमीरपुर, मुहदा, बाँदा, राजनगर, मनियादेव, कुलिया, झिन्ना, पदमापुरी, अजमगढ़, कालिंजर राजगढ़, नागौद पहाड़ी, डोरा, पातरकछार, चित्रकूट, शाहपुर, राजापुर मऊछावनी, वरगढ़ विजय कर स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। बुन्देला नाला को अपनी सरहद बनाया।

वि० सं० १७२८ में गढ़ा कोटा का किला विजय किया और उसी समय औरंगजेब का सेनापति रणदूलहखां और ग्वालियर का सूबेदार फिदाई खाँ अपनी विशाल सेना सहित ओरछा के मन्दिरों को तोड़ने और मूर्तियाँ फोड़ने के लिए आक्रमण ओरछा पर किया ओरछा के राजा सुजानसिंह ने छत्रसाल को सहायतार्थ बुलाया उस समय घमासान युद्ध हुआ और रण–दुलह खाँ, फिदाई खाँ हार मान कर वापिस चले गये।

छत्रसाल के भाई रतनशाह बिजौरी में रहते थे उसकी सहायता से औड़ेरा नामक ग्राम में आये यहां पर छत्रसाल के सब साथियों ने मिलकर अपना मुखिया बनाया। युद्ध में और लूट में जो माल मिले उसमें छत्रसाल

का हिस्सा ५५/१०० बलदिवान का हिस्सा ४५/१०० नियत हो गया सब बुन्देलों ने यहाँ आकर स्वाधीनता प्राप्त करने की प्रतिज्ञा की।

अपनी प्रतिज्ञाओं के नियम इस प्रकार निश्चित किए

१–क्षत्रियों का धर्म पालना २–देश और जाति की रक्षा करना ३–धर्म के विरुद्ध आचरण करने वाले और प्रजा को कष्ट देने वाले यवनो का नाश करना ४–उन राजाओं और सूबेदारों को दण्ड देना जो विजयातीत यवनों से मेल करके हिन्दूओं पर अत्याचार करे।

इस प्रकार छत्रसाल निश्चय करके युद्ध की तैयारी करके दिग्विजय आरम्भ कर दी। धंधेरखन्ड पर चढ़ाई कर दी कुंवर सेन धंधेरा युद्ध में हार गया उसने छत्रसाल की स्वाधीनता स्वीकार करली अपने भाई हिरदेशाह की लड़की दानकुवरि का बिबाह छत्रसाल के साथ बि०सं० १७२६ में हो गया।

वि० सं० १७३० में मुहम्मद हासिम खाँ सिरौज के थानेदार को तीन सौ सिपाही सहित मार कर भगा दिया और सिरौज तथा तिवरो ग्राम को लूट लिया। लूट का धन सिपाहियों को जो छत्रसाल की सेना में थे बाँट दिया इससे सेना में भारी उत्साह हुआ और स्वतंत्रता प्राप्त करने लिए पवित्र कार्य में सहायता देने के लिए दूर दूर के बुन्देला ठाकुर छत्रसाल की सेना में भर्ती होने लगे। बुन्देलखन्ड में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत में छत्रसाल की वीरता प्रसिद्ध हो गई।

धामौनो के जागीरदार छत्रसाल से युद्ध में वि० सं० १७३० में हार गया। छत्रसाल की स्वाधीनता स्वीकार करके चौथा हिस्सा आमदनी का सहर्ष देने लगा। मैहर पर आक्रमण कर माधव सिंह को हराया और तीन हजार रुपया वार्षिक कर छत्रसाल को मिलने लगा। बाँसा के जमीदार केशवराव दुरंगी को युद्ध में मार डाला और उसके पुत्र विक्रमाजीत को

अपनी सेना का सेनापति बनाया।

वि० सं० १७३३ में ग्वालियर के सूबेदार मुनौवर खाँ व उसके सेना पति बहादुर खाँ को युद्ध में हराया और ग्वालियर को लूटा सवा करोड़ रुपया बहुत से रत्नों को लेकर वापिस आये उस समय सिरौज के थानेदार मुहम्मद हासिम अंगदराय चौधरी ने कटिया नामक जगल में आकर छत्रसाल से युद्ध किया हार कर भाग गये विजय का पताका उड़ाते हुए छत्रसाल हनूटेक आये मोहर के धंधेर हरिसिंह की कन्या उद्दंत कुंविर के साथ विवाह हुआ। हनूटेक से वह मऊ आये और महेवा नामक दूसरा गाँव बसाया।

वि० सं० १७३४ में गढ़ाकोटा का किला को विजय करके सागर के पास रण दूलहखाँ ने फिर बड़ी भारी सेना से हमला छत्रसाल पर कर दिया युद्ध में रण दूलह खाँ के दस सरदार और सात सौ सिपाही मर गये दस तोपे छत्रसाल को मिली रणदूलह खाँ हार कर ललितपुर होते हुए नरवर आया छत्रसाल उसका पीछा करते गये। मार्ग में मुसलमानों के गांव लूटे। नरवर पर बहुत सा शाही खजाना लूट लिया। रणदूलह खां की हार और शाही खजाना लूटने का हाल औरंजेब को ज्ञात हुआ वह बहुत घबराया। और तुर्क सेना को अधिक संख्या में छत्रसाल से युद्ध करने भेजा। बसिया ग्राम में छत्रसाल ने तुर्की सेना के बारूदखाने में आग लगा दी। तुर्की सेना हार कर भाग गई छत्रसाल की विजय हुई। वह जिगनी ग्राम में आये वहां के जागीरदार हिन्दूसिंह परिहार की कन्या भगवानकुवरि की शादी छत्रसाल के साथ हो गई।

वि० सं० १७३७ में बसिया के युद्ध की हार का समाचार औरङ्गजेब को मिला वह बहुत ही व्याकुल हो गया कि छत्रसाल आकर दिल्ली भी न लूट ले। उसके सरदारों में एक तहब्बर खां नाम का सरदार बहुत प्रवीण था उसने छत्रसाल से खुले मैदान में युद्ध करना ठीक नहीं समझा। उसी समय अपनी बरात मऊ से सैड़वा बाजने में अपना व्याह कराने जा रहे थे।

भांवरें पड़ चुकी थी कि अचानक तहबरखां ने छत्रसाल पर हमला कर दिया परन्तु छत्रसाल की विजय हुई और तहबरखां हार मानकर दिल्ली वापस चला गया। फिर कालिंजर के किले पर आक्रमण कर दिया वहां के किलेदार का नाम करम इलाही था। छत्रसाल ने अपनी सेना लेकर चारों तरफ से किला को घेर लिया अठारह दिन तक लड़ाई होती रही मुसलमानो की सेना हारकर भाग गई छत्रसाल की विजय हुई कालिंजर के किले पर कब्जा हो गया फिर पन्ना होते हुए मऊ आये।

छत्रसाल ने वि० सं० १७४२ में सागर को लूटा फिर दमोह लूटा फिर बरहटा के राजा को विजय किया। फिर ऐरच की तरफ धावा किया ऐरच और जलालपुर को लूटा। वेतवा के समीप जलाल खां नामक मुसलमान सरदार ने छत्रसाल से युद्ध किया वह कैद कर लिया गया उसकी सेना भागकर सैयद लतीफ सरदार की सेना में शामिल हो गई। बि०सं० १७४३ में सैयद लतीफ ग्वालियर के समीप ही था कि छत्रसाल ने उस पर धावा मारा और लतीफ अपनी जान बचाकर दक्षिण की तरफ भाग गया। उसकी सेना के १०० अरबी घोड़े ७० ऊंट और १३ तोपें छत्रसाल को विजय में प्राप्त हुई। बांदा पर विजय प्राप्त कर राजगढ़ के समीप फिर तहबरखाँ की सेना मिली छत्रसाल ने इस सेना को हराया। मौहदा, मुस्करा इत्यादि को छत्रसाल ने लूटा। महोबा, राठ, पनवाड़ी आदि गाँव लूटे। अजनर पर विजय प्राप्त हुई। वि० सं० १७४४ में फिर छत्रसाल कालपी की ओर चले। वहाँ के सरदार दुर्जनसिंह परिहार ने छत्रसाल की शरण ली। कालपी का थाना और खजाने पर अपना अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् ग्वालियर पर आक्रमण किया वहां का सूबेदार तहबर खाँ युद्ध में हार गया और बीस हजार रुपया देकर आधीनता स्वीकार कर ली आमदनी का चौथा भाग देने लगा। फिर भिलसे के किले पर विजय प्राप्त की। तब औरङ्गजेब ने फिर से एक बहुत विशाल सेना सहित अनवर खाँ नामक प्रबल वीर योद्धा को छत्रसाल से लड़ने भेजा भिलसा के मैदान में

घमासान युद्ध हुआ इस युद्ध में छत्रसाल ने मुगल सेना का बिलकुल नाश कर दिया और सेनापति अनवरखाँ को छत्रसाल ने कैद कर लिया। तब अनवर खाँ ने सवा लाख रुपया देकर अपनी जान बचाई इस घटना से औरङ्गजेब व्याकुल हुआ और अनवरखाँ की भरे दरबार में बेइज्जती की और उससे सरदारी पदवी छीन ली।

वि० सं० १७४५ में औरङ्गजेब ने सब दरबारियों को बुलाया और छत्रसाल को विजय करने के लिए सदरुद्दीन नामक योद्धा भेजा और छत्र-साल पर हमला किया घमासान युद्ध हुआ मिरजा सदरुद्दीन कैद हो गया और छत्रसाल की स्वाधीनता स्वीकार करके चौथा भाग आय का देने लगा वि० सं० १७४६ में अब की वार खास दिल्ली के सूबेदार अब्दुल समद औरङ्गजेब का हुक्म पाते ही तीस हजार सवार और कई सौ पैदल सिपा-हियों की सेना बुन्देलखण्ड की ओर चला। इस विशाल सेना का मुकाम मौहदा पर हुआ। छत्रसाल भी अपनी सेना सहित मौहदा नामक स्थान पर गये दोनों सेनाओं का घनघोर युद्ध एक दिन भर हुआ इस युद्ध में अब्दुल समद की शाही सेना को बुरी तरह से छत्रसाल ने हराया इस युद्ध में छत्र-साल की विजय हुई और २१ तोपें बुन्देलों को मिली। अब्दुल समद हार मानकर वापस दिल्ली चला गया और छत्रसाल कालिंजर होते हुए पन्ना आये।

वि० सं० १७४७ में भिलसे के किले को छत्रसाल ने विजय कर लिया था। परन्तु छत्रसाल के वापस आने पर फिर मुगलों ने कब्जा कर लिया इस कारण छत्रसाल ने भिलसा पर फिर आक्रमण किया तो धामौनी का सरदार बहलूलखाँ ने नौ हजार काबुली सेना लेकर छत्रसाल से युद्ध करने आ गया। छत्रसाल का बहलूल खाँ से गहरा युद्ध हुआ इस युद्ध में बहलूल खाँ मारा गया। शाहगढ़ और धामौनी के किले छत्रसाल के अधिकार में आ गये इस बार विजय छत्रसाल की हुई।

धामौनी से छत्रसाल मऊ चले आये फिर कोटरे पर अधिकार किया वि०सं० १७५८में फिर वह महोबा पहुँचे महोबा व बाँदा में अपना प्रबन्ध देखते हुए सेंहुड़ा पहुंचे। उस समय सेंहुड़ा दलेलखाँ के सूबे में था। और दलेलखाँ की तरफ से उसका नायब मुराद खाँ इस प्रान्त का प्रबन्ध करता था छत्रसाल ने मुराद खाँ से युद्ध किया और लड़ाई में मुराद खाँ मारा गया।

वि० स० १७६१ में औरङ्गजेब ने बुन्देलखण्ड जीतने के लिए फिर उपाय किया सेनापति शाहकुली को भेजा। शाहकुली बहुत बड़ी सेना लेकर बुन्देलखण्ड में घुसा और शुरहट, कोटरा, जलालपुर इत्यादि छत्रसाल के विजय किए और वह नौली मुकाम पर ठहरा। यह पता लगते ही छत्रसाल सेना सहित शाहकुली से युद्ध करने लगे। इसी समय असमदखां नामक दूसरा मुसलमान सरदार अपनी सेना सहित शाहकुली की सहायता को आ गया इन दोनों सेनाओं में बड़ा भयकर युद्ध हुआ इस युद्ध में छत्रसाल की विजय हुई। असमद खाँ कैद हो गया शाहकुली हारकर वापिस दिल्ली चला आया और अपनी सहायता को और सेना माँगी। दिल्ली से औरङ्गजेब की आज्ञानुसार नन्दराम नामक सरदार आठ सौ सवार और सेना सहित शाहकुली के साथ फिर मऊ पर आक्रमण किया नवगांव छावनी स्थान पर युद्ध हुआ इस युद्ध में शाहकुली कैद हो गया।

वि० सं० १७६८ में छत्रसाल ने लोहागढ़ का किला जीतकर शिवाजी महाराज के नाती साहू जी को अर्पण कर दिया। बुन्देलखण्ड इस प्रकार स्वतन्त्र करके छत्रसाल पन्ना में रहने लगे।

महाराजा छत्रसाल की राजधानी कुछ दिनों तक मऊ के निकट महेवा में रही। उसके बाद राजधानी पन्ना में हुई। छतरपुर नामक नगर छत्रसाल का बसाया हुआ है।

महाराजा छत्रसाल का राज्य चम्बल नदी तक था कालपी, जालौन, कोंच, ऐरच इसी राज्य में थे। झाँसी पहिले ओरछा के राज्य में थी। जब बहादुरशाह ने छत्रसाल से सन्धि कर ली थी तब झाँसी छत्रसाल महाराज के पास आ गई। दक्षिण में छत्रसाल का राज्य नर्बदा तट तक पहुँचा था। सिरौज, गुना, धामौनी, गढ़कोटा, सागर, दमोह, सागर, बाँसा, मेहर यह सब छत्रसाल के राज्य में थे। पूर्व में राज्य की सीमा टोन्स नदी तक थी। कालिंजर, चित्रकूट छत्रसाल के राज्य में थे। उत्तरीय सीमा जमुना तक थी।

वि० सं० १७७८ में बहादुरशाह मर गया उसके बाद सैयद भाइयों को मुहम्मद बंगस ने सहायता दी थी। इसलिये सैयद भाइयों ने प्रसन्न होकर उसे नवाब की पदवी देकर बुन्देलखण्ड के ऐरच, कौंच, कालपी. सेंहुड़ा मौदा सीपरी और जालौन का सूबेदार बनाया गया। वि० सं० १७७८ में इलाहाबाद का सूबेदार हो गया। पीरखां मुहम्मद बंगस की ओर से कालपी का सरदार था उसे छत्रसाल ने कालपी से निकाल दिया और उसकी बनवाई मस्जिदें तुड़वा दी। दलेलखाँ एक जाति क्षत्रिय राठौर वंश का सरदार था। मुहम्मद बंगस ने उसे मुसलमान बना लिया था यह बात छत्रसाल को सहन नहीं हुई।

उसी समय मुहम्मद बंगस को कई बुन्देलों ने भी सहायता दी। इस समय ओरछे में हरदौल के प्रपौत्र उद्दोतसिंह का राज्य था। वह मुगलों की आधीनता स्वीकार कर चुके थे। इससे यह छत्रसाल के विरुद्ध मुसलमानों को सहायता दे रहे थे। सेंहुड़ा के बुन्देला पृथ्वीसिंह ने मुसलमानों को सहायता दी। दतिया के राजा उस समय रामचन्द्र थे वह पूरा सहयोग मुसलमानों को दे रहे थे। चन्देरी के राजा दुर्जनसिंह और मौहदा के जयसिंह भी मुसलमानों की सहायता कर रहे थे। इन सब ने छत्रसाल के विरुद्ध लड़ना स्वीकार कर लिया। ऐसे समय में सब बुन्देलों ने अपनी

जाति वंश धर्म बन्धुओं का साथ न देकर मुहम्मद बंगस को सहायता देना उचित समझा था। इन हिन्दू राजाओं के सिवाय इस समय मुगल सत्ता की पूरी शक्ति मुहम्मद बंगस की तरफ सहायता को हो गई थी।

मुगलों की प्रचण्ड सेना और समस्त बुन्देलों का छत्रपाल के विरुद्ध हो जाने से भी छत्रसाल की धीरता और वीरता को भी परिवर्तन नहीं हुआ और उनके संकल्प को और दृढ़ करने में सभी विरोधी सहायक माने गये थे। छत्रसाल ने युद्ध करने की तैयारी कर दी।

मुहम्मद बंगस और छत्रसाल के बीच कई युद्ध एक वर्ष तक वि० सं० १७८५-८६ तक होते रहे और मुसलमानों की तमाम सेना को मार डाला हमेशा छत्रसाल की विजय होती रही थी।

महाराजा छत्रसाल का उद्देश्य हिन्दू धर्म की रक्षा करना और भारत को यवन सत्ता से मुक्त करना था इस कार्य के लिए वह किसी भी स्वधर्माभिमानी हिन्दू से सहायता लेने को तत्पर थे महाराजा छत्रसाल अपना दोहरा बल इस समय उत्थान में प्राप्त कर चुके थे। प्रथम में प्रशासनिक अवस्था जो उनके बुन्देलखण्ड के राजाओं के विरोधी बनने में लाभ हुआ। द्वितीया बल औरङ्गजेब की कट्टर धार्मिक नीति से हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदायिक भेद उत्पन्न कर (चोटी बेटी का भय बतलाकर) परम्परा वादियों के माध्यम से जन बल प्राप्त कर अपने को हिन्दू धर्म का रक्षक की कोटि में खड़ा कर लिया था। छत्रसाल के पौरुष और पराक्रम मुगल सत्ता भयभीत होने लगी थी। उनका पराक्रम रूपी सूर्य चारों ओर देदीप्यमान होने लगा था।

मुहम्मद बंगस को बुन्देला राजाओं की तथा मुगल सत्ता की पूर्ण सहायता का अधिक अभिमान हो गया था वह हमेशा छत्रसाल पर आक्रमण करता रहता था। इसी समय महाराजा छत्रसाल ने मराठों से सहायता

लेना उचित समझा और उस समय मराठों के नायक बाजीराव पेशवा थे उनको एक दोहा पत्र में लिखकर भेजा :—

जो गति भई गजेन्द्र की, सो गति पहुँची आज ।
बाजी जात बुन्देल की, राखो बाजी लाज ॥

इस पत्र को पाते ही बाजीराव पेशवा अपनी बड़ी भारी सेना लेकर छत्रसाल की सहायता करने चल पड़े । उनके सामन्त मल्हाराव होलकर भी इस सेना के साथ आ पहुँचे ।

वि० सँ० १७८७ में जैतपुर के निकट मुहम्मद बंगस से महाराजा छत्रसाल का युद्ध दो माह तक होता रहा था । इस युद्ध में मुसलमानों की सेना बलहीन हो गई तो मुहम्मद बंगस का पुत्र कायमखां अपनी बड़ी सेना लेकर आ गया । उस समय छत्रसाल की सेना अजनर में थी । युद्ध से भागकर मुहम्मद बंगस फिर जैतपुर के किले के अन्दर घुस गया और किला के अन्दर से युद्ध छैः मास तक होता रहा था अन्त में मुगल सेना किला से भाग गई । मुहम्मद बंगस और कायमखाँ सहित अपने प्राण बचा-कर (औरत का भेष बनाकर) जैतपुर से हार कर भाग गया था । इस महायुद्ध में महाराजा छत्रसाल की विजय हुई और जो विरोधी राजा मुसलमानों की सहायता करते थे वह हार मानकर महाराजा छत्रसाल की शरण में आ गये थे ।

बुन्देलखन्ड के संक्षिप्त इतिहास पृष्ठ नं० २३१ पर महाराजा छत्र-साल की १७ रानियां और ६८ पुत्रों का वर्णन इस प्रकार लिखा है कि

(१) हृदयशाह हिरदेशाह (२) जगतराज (३) पदमसिंह (४) भारती चन्द्र (५) हमीर (६) माधोसिंह (७) देवीसिंह (८) खानजू (९) भगवन्त राय (१०) मरजादसिंह (११) तेजसिंह (१२) शम्भुसिंह (१३) दुर्जनसिंह (१४) गोबिन्दसिंह (१५) केशवराय (१६) धीरजमल (१७) सांलमसिंह

(१८) अर्जुनसिंह (१९) करनजू (२०) चतुर्भुज (२१) नौने दिवान (२२) कुंवरजू (२३) अनूपसिंह (२४) दलपतराय (२५) किसनसिंह (२६) मानसिंह (२७) राजाराम (२८) अनुरुद्धसिंह (२९) शिवसिंह (३०) खानजहान (३१) नबलसिंह (३२) अनन्तसिंह (३३) केशरीसिंह (३४) उदैतसिंह (३५ हिम्मतसिंह (३६) मानशाह (३७) पूरनमल (३८) दरयावसिंह (३९) गर्न्धवसिंह (४०) श्यामसिंह (४१) बरजोर सिंह (४२) खूबसिंह (४३) उग्रसिंह (४४) विसम्भरसिंह (४५) पहलवानसिंह (४६) बलबन्तसिंह (४७) हनुमतसिंह (४८) मकुन्दसिंह (४९) शमशेर बाहादुर (५०) रानासिंह (५१) उमरावसिंह (५२) कमोदसिंह (५३) भीमसिंह (५४) दिनदुलह (५५) गाजीसिंह (५६) मोहनसिंह (५७) दलसिंह (५८) देवीसिंह (५९) सामन्तसिंह (६०) अगंदजू (६१) रायचन्द्र (६२) जुरावनसिंह (६३) फूलसिंह (६४) अंचलसिंह (६५) खेलसिंह [६६] पर्वतासिंह [६७] सहायसिंह [६८] मिरजा राजा

वि० स० १७६४ अर्थात् सन् १७०७ ई० में सम्राट औरंगजेब की मृत्यु हो गई थी। उसी समय छत्रसाल ने मुसलिम प्रजा को लूटना शुरू कर दिया। बांदा, हमीरपुर, कालपी क्षेत्र में भारी लूट मार करदी। जन-जीवन त्रस्त, व्यस्त कर दिया था।

इतिहास वक्ताओं ने महाराज छत्रसाल के तेरह रानियों और बावन पुत्रों का होना सिद्ध किया है। चालीस पुत्रों को युद्ध में वीरगति प्राप्त हुई। शेष बारह पुत्रों को वि० सम्वत् १७७८ में छत्रसाल ने अपनी राज्य सीमा का भार पृथक-पृथक रूप में इस दृष्टि से सौंप दिया था कि राज्य की व्यवस्था ठीक रूप से चल सके, किन्तु फल विपरीत हुआ। अधिकार प्राप्त कर सभी पुत्र कर्त्तव्य त्यागकर विलासिता पूर्ण जीवन विताने लगे जिसके कारण बुन्देलखण्ड में प्रशासन व्यवस्था ढीली पड़ गई।

मुहम्मद खाँ बंगस को (इस युद्ध में) पराजय होने का महान दुख: था

वह तीन दिन तक बाहर नहीं निकला और भोजन नहीं किया तब उसकी बेगम इस प्रकार नवाव को समझाती हुई कहती हैं कि:—

हार कर आये जब बंगस नबाब गृह,
उन्हें हुर्मखाने में बेगम यह बताती है ॥
नाहक लड़े थे पिया उस बुन्देले से आप,
बदनामी हुई है न मुझसे सही जाती है ॥
बिप्र घनश्याम मैंने जाना था जइफ उसे,
बैन सुन बेगम यों वचन सुनाती है ॥
जानते नहीं हैं मियां मारू बैम बजते ही,
बूढ़े छत्रसाल पै ज्वानी दौड़ आती है ॥

छत्रसाल जैतपुर [अजनर] के युद्ध में विजयी तो हो गए परन्तु विजय महगी पड़ी। मराठों ने तीसरा हिस्सा मांगा तो छत्रसाल ने बहुत आनाकानी की। कई बार नकद रुपया रिश्वत में देकर टरकाते रहे:- देखिये छत्रसाल का यह पत्र अपने ज्येष्ठ पुत्र को 'ड़ेढ़ करोड़ की रियासत हमारी है रही पेसवा को एक करोड़ बताई हती ती में मे पच्चीस लाष की जाधा है हमारी राय जा है कै अवै लौ हमने वन कौ तीसरा हींसा नहीं दयौन दैन विचारे आयै पेशवा ने अपने लड़का को पठवायो हतो तिहरा मध्धैं सो मन मर दओ है व एक लाष रुपैया दवो हैं तिहरा नहीं दऔ तुम को चाहिए कै हमारे बपरान्त जहां लौ बने तहां लौ पेशवा कौ तिहरा न दऔ जावै जब आवे तब कछु रुपइया दै दय जावै फिर देषा जै है।" [महाराज छत्रसाल बुन्देला पं० ९८] परन्तु मराठे बड़े चतुर थे। रुपया भी खा गये एव तीसरा हिस्सा राज्य भी ले लिया।

Bajirao fully aliue to the political importance of such an alliance at once responded. In return

for the services he had randered, the made over a third share of his possession of his possession to Bajirao E.S G. Page 172.

महाराज छत्रसाल की चाल जब सफल न हुई तो पेशवर को अपना तीसरा बेटा मान लिया तथा बेटे को अपनी रखैल मस्तानी वैश्या भेंट कर दी। जिसका मतव्य था कि पेशवा के भय से बुन्देलखण्ड के असतुष्ट राजा उनके पुत्रों को परेशान न कर सकें। परन्तु छत्रसाल का यह विचार गलत निकला। मराठों ने बुन्देलखण्ड को बाद में रौंद ही डाला।

बुन्देलों की भूमि पर मराठों ने झांसी, सागर, बांदा, जालौन एव गुरसरांय ठिकाने स्थापित कर लिए जो बुन्देली जनता एवं राजाओं को कष्टकारक रहे।

महाराजा छत्रसाल की रानी श्री कमलवति अधिक रूपवती थी लड़ाई के समय यह युद्धों में महाराज छत्रसाल के साथ में रहीं और घोड़े पर चढ़ कर रण-भूमि में अतुल वीरता दिखाई। महाराज छत्रसाल की सम्पूर्ण रानियोंमें यह महारानी थी आपने पन्नामें धुबेला महल-धुबेला तालाब कमलावति घाट बनवाया था। महारानी कमलावति से हिरदेशाह (हृदय शाह) और जगतराज हुए यही दोनों पुत्र राज्याधिकारी हुए।

महाराजा छत्रसाल ने अपने ही जीवन काल में बाजीराव पेशवा तीसरा पुत्र (दत्तकपुत्र) मान लिया था। इससे पन्ना राज्य को तीन भागों में विभाजित कर दिया गया था।

१:- हिरदेशाह (हृदयशाह) पन्ना के राजा हुए पन्ना, मऊ, गढ़ाकोटा, कालिंजर, शाहगढ़ और इसके आस पास का इलाका राज्य मे मिला था। जिसकी आमदनी ४२ लाख रुपया थी।

२–जगतराज को जैतपुर, अजयगढ़, चरखारी, बिजाबर, सरीला, भूरागढ़ और बांदा राज्य में मिला था जिसकी आमदनी ३६ लाख रुपया थी।

३–बाजीराव पेशवा को राज्य का तीसरा हिस्सा मिला था जिसकी आमदनी ३३ लाख रुपया थी। पेशवा के हिस्से में कालपी, हटा हृदयनगर, जालौन, गुरसरांय, झांसी, सिरौंज, गुना, सागर, और छोटी-छोटी जागीरें भी राज्य में प्रदान की गई थी।

इस समय बाजीराव पेशवा और महाराजा छत्रसाल के दोनों पुत्रों के बीच में निम्न शर्त्तें रखी गई थी।

१–दोनों भाई हृदयशाह और जगतराज चम्बल और जमुना के उस पार का प्रान्त छोड़कर सब स्थानों में युद्ध के लिए बाजीराव के साथ जावेंगे और जो लूट में मिलेगा उसे बराबर बाटेंगे।

२–यदि बाजीराव दक्षिण के किसी युद्ध में लगे हों तो दोनों बुन्देले भाइयों को बुन्देलखण्ड भर की दो माह तक रक्षा करनी होगी।

३–छत्रसाल महाराज ने बाजीराव को पुत्र के समान माना था इस लिए बाजीराव भी हिरदेशाह और जगतराज को भाई के समान मानेगे।

परन्तु बाजीराव पेशवा ने अपना स्वार्थ सिध्दि करने के बाद सभी शर्त्तों और ठहराव के प्रतिकूल काम करने लगा अन्त में दोनों भाइयों को बहुत परेशान किया गया था।

महाराजा छत्रसाल का देहान्त वि० सं० १७८८ में जेठ बदी ३ दिन बुधवार अर्थात १२ मई सन् १७३१ को हुआ था। उस समय जब मृत्यु हुई तब बाजीराव पेशवा भी पन्ना में मौजूद थे।

ओरछा का राज्य छत्रसाल के अधिकार में नहीं था ओरछे के राज्य को प्राचीन बुन्देला वंश के शासक से निकाल लेना छत्रसाल ने ठीक नहीं समझा। ओरछे शासक कभी तो छत्रसाल के मित्र रहे और कभी वह भी

मुसलमानों से मिल कर विपरीत हो जाते थे। छत्रसाल की राजधानी के नगर के शासक हृदयशाह ने छत्रसाल की सेज के निकट एक समाधि बनवाई वहाँ पर एक पुजारी नियत किया और उसके खर्च के लिए सिगरावन नाम का एक गांव लगा दिया था। यह गाव छतरपुर राज्य में हैं।

महाराजा छत्रसाल की पुत्रबधू (महाराजा जगतराज की पत्नी)

बीराँगना महारानी विजय कुंवरि

सं० १७८८ में बुन्देला महाराज छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात बुन्देलखण्ड भूमि को वीर-विहीन समझ नवाब बंगस ने अपनी सन्धि को तोड़ बुन्देलखण्ड पर पुनः चढ़ाई की। उसने जैतपुर (हमीरपुर जिला) पर अपना पड़ाव डालकर युध्द का बिगुल बजा दिया।

वि० स० १७८६ में महाराज छत्रसाल के पुत्र जगतराज ने, जो अभी युवावस्था में पदार्पण कर रहे थे जब रण का बिगुल सुना तब उनके हृदय में मातृभूमि-रक्षा का भाव जागृत हो उठा और वह शीघ्र अपनी लघु सेना को साथ में ले युध्द भूमि के मोर्चों पर पहुंचे। घमसान युध्द हुआ, किन्तु वह घायल हो गये। यह सूचना जब उनकी रानी विजय कुंवरि को मिली तब वह घोड़े पर चढ़ युध्द भूमि में पहुंची और अपने रण-कौशल द्वारा नवाव बंगस को परास्त कर अपने घायल पति जगतराज को साथ लेकर विजयश्री प्राप्त कर महल में लौट आई।

यह घटना वि० स० १७८६ अर्थात् सन् १७३१ ई० की है।

महाराजा मर्दनसिंह, बानपुर

जन्म वि० सं० १८५५ मृत्यु वि० सं० १९२६ अर्थात सन १७९८ ई० में जन्म और मृत्यु सन् १८६९ ई० बृन्दाबन में हुई थी।

अमर सेनानी क्रान्तिकारी वीर मर्दनसिंह बुन्देला बानपुर के राजा ने सन १८५७ ई० के गदर में महारानी लक्ष्मीवाई झाँसी के साथ सहायता

देकर अंग्रेजों से स्वतन्त्रता साँग्राम किया।

बुन्देलखण्ड की वीर-प्रसू भूमि के वीरों ने हमेशा स्वतन्त्रता साँग्राम के लिए बलिदान किए हैं, और मरते दम तक यही प्रयास किया है कि उनका ध्वजा ऊंचा रहे। ऐसे ही वीरों में ओरछा नरेश मधुकरशाह के पुत्र वीर सिंह देव प्रथम के भ्राता रामशाह चंदेरी बानपुर के राजा वि० सं० १६६३ में हुए थे जिसकी आमदनी दस लाख रुपया थी।

राजा रामशाह के बाद में क्रमशः संग्रामशाह, भारतशाह, देवीसिंह दुरगसिंह, दुर्जनसिंह, मानसिंह, अनुरुद्धसिंह, रामचन्द्र मोर पहलादसिंह राजा बानपुर चन्देरी के हुए थे इसी राज्य बंशज राजा मर्दनसिंह बुन्देला का जन्म सन् १७९९ ई० में हुआ। (वि० सं० १८५५ में) राजा मर्दनसिंह बुन्देला ने विदेशी सत्ता को देश से उखाड़ फैंकने की योजना बड़ी चतुरता से बनाई। वह प्रारम्भ से ही अंग्रेजों के खिलाफ थे। अंग्रेजों ने उन दिनों देशी रियासतों के विरुद्ध ऐसी नीति बनाई थी उनमें असन्तोष होना स्वाभाविक था।

जब महाराजा छत्रसाल ने बाजीराव पेशवा की मदद वि० स० १७८६ ८७ से मुहम्मद बंगस को पराजित किया था। तब महाराज छत्रसाल ने झाँसी बाजीराव पेशवा को प्रदान कर दी थी। सन् १८५३ ई० अर्थात् वि० स० १९१० पेशवा वंश के राजा गगाधर राव झाँसी की मृत्यु का हाल पाकर बानपुर के राजा मर्दनसिंह परिवार के साथ समवेदना प्रगट करने झांसी आये। मरते समय राजा गंगाधर राव ने एक बालक को गोद ले लिया था। महारानी लक्ष्मीबाई ने राजा मर्दनसिंह से दामोदर राव को झांसी राज्य देने का विचार प्रकट किया।

राजा गगाधर राव की मृत्यु का समाचार बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेन्ट मेजर मालकम के पास २१ नवम्बर सन् १८५३ ई० को पहुंचा। इसकी खबर एजेन्ट ने अंग्रेज सरकार के परराष्ट सचिव को भेजी। उसमें दामोदर राव को गोद में लेने का समाचार लिखा था। उसके साथ एजेन्ट

ने परराष्ट्र सचिव को अपनी सम्मति दी कि झांसी के राजा को गोद लेने का अधिकार नहीं हैं। इससे झाँसी का राज्य अंगरेजी राज्य में मिला दिया जावे और महारानी लक्ष्मीबाई को पांच हजार रुपया माहवार से पेन्शन दी जानी की सलाह दी।

उपर्युक्त आशय का पत्र भेजकर मेजर मालकम ने झांसी का बन्दोवस्त स्वयं करना आरम्भ कर दिया और सुरक्षार्थ संधिया की कंटिजेंट पलटन का एक भाग और बंगाल नेटिव इनफेंट्री का एक भाग अपने पास रखा और कुछ सेना झांसी और करेरा के किले में रखी गई थी।

झांसी के राज दरबार ने गंगाधर राव के दत्तक पुत्र दामोदरराव के नाम से राज्य कार्य चलाने का निश्चय कर लिया। जिस समय दामोदर राव गोद लिए गये थे उस समय बुन्देलखण्ड के असिस्टेंट पोलिटीकल एजेन्ट मेजर एलिश भी उपस्थित थे। गोद का सस्कार होने के पहिले अग्रेजों को खबर भी दे दी गई थी। इस खबर के पश्चात मेजर एलिश गोद के समय पहुंचे थे और झाँसी के राज्य कर्मचारी ने यही समझा था कि दामोदरराव गोद लिये जाने के विषय में अगरेजों ने अनुमति दे दी है। झांसी राज्य और अंग्रेजी राज्य से जो शर्तें हुई थी उनके अनुसार भी वंश परम्परा के लिए राज्य रामचन्द्रराव को मिला था। परन्तु लार्ड डलहौजी की नियत झांसी राज्य को अग्रेजी राज्य में मिला लेने की थी। मेजर मालकम की भी यही सलाह थी कि झाँसी का राज्य अंगरेजी के राज्य में मिला में मिला लिया जावे।

मालकम साहब ने पत्र का उत्तर बहुत दिनों तक नहीं दिया। इससे फिर महारानी लक्ष्मीबाई ने दूसरा पत्र अंग्रेजों को लिखा इस दूसरे पत्र में महारानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों की संधियों का उल्लेख करते हुए झांसी राज्य को रामचन्द्रराव के बंश में कायम रखने के उद्देश्य से दत्तक पुत्र लेने की आवश्यकता बतलाई अंग्रेज सरकार से प्रार्थना की कि दामोदर राव का गोद लिया जाना स्वीकार किया जावे। एलिश साहब ने एक पत्र

अंग्रेजों के गवर्नर को लिखा था। उस पत्र में एलिस साहब ने झाँसी का राज्य दामोदरराव को दिए जाने की सलाह दी थी। परन्तु एलिस साहब की सलाह नहीं मानी गई।

वि० स० १९११ (सन् १८५४) में गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी ने झाँसी के राज्य को अंग्रेजी राज्य में मिला लेने का हुक्म दे दिया और दामोदर राव के गोदनामा को नियम विरुद्ध बताकर अस्वीकार कर दिया।

राजा मर्दनसिंह ने रानी लक्ष्मीबाई को धैर्य बंधाते हुए यह कहा कि बुन्देलों ने झाँसी राज्य का समर्पण बाजीराव पेशवा को वि० सं० १७८८ में किया था झांसी अंग्रेजों की नहीं हो सकती है आप ही झांसी की अधिकारिणी हैं। यदि अंगरेजों ने जरा भी अन्याय किया तो यह झांसी अंग्रेजों के गले की फांसी हो जायगी।

झांसी में अँग्रेजों का राज्य सन् १८५४ ई० में हो गया। रानी लक्ष्मीबाई झांसी के किले से बाहर रानीमहल शहर झांसी में निवास करने लगी। अंग्रेजों की ओर से झांसी के कमिश्नर मेजर स्कीन साहब नियत किए गये परन्तु रानीं लक्ष्मीबाई ने अपना राज्य वापिस करने की अपील का मुकद्दमा लन्दन कोर्ट आफ डायरेक्टर्स के सामने पेश २४ नवम्बर सन् १८५४ ई० को किया और उमेशचन्द्र बनर्जी वकील कलकत्ता, और दूसरा वकील यूरोपियन नियुक्त किया। दिनाँक ३ फरवरी सन् १८५५ ई० को लन्दन कोर्ट आफ डायरेक्टर्स के यहां से रानी लक्ष्मीबाई की अपील खारिज हो गई और झांसी का राज्य अंग्रेजी राज्य में शामिल करने का फैसला हो गया।

वि० सं० १८९२ अर्थात् सन१८३५ ई० में रानी लक्ष्मीबाई का जन्म माना गया है। इस समय सन् १८५५ ई० में कुल उम्र २० साल की थी। मर्दनसिंह राजा बानपुर सदैव झांसी आते जाते रहते थे और रानी लक्ष्मी

बाई को स्वतन्त्रता संग्राम करने की सलाह दिया करते थे।

सन् १८५५ ई० सन् १८५६ ई० तक झाँसी का शासन रानी लक्ष्मी बाई ने अंग्रेजों की तरफ से किया था।

लार्ड डलहौजी की राजनीति से सब राज्यों में असन्तोष फैल गया था अंग्रेजी राज्य की व्यवस्था भी ठीक नहीं थी। अंग्रेज किसी प्रकार रुपया वसूल करना ही अपना ध्येय समझते थे। अन्तर्वेद के जमीदार भी असंतुष्ठ हो गये थे। क्योंकि उनके अधिकारों की परबाह न करके कई जमींदारों के नाम कृषकों में लिख दिए गए थे। जमा की वसूली भी बड़ी सख्ती से होती थी इससे भी सारे देश में असन्तोष फैल रहा था। विद्रोह का असली कारण यही असन्तोष था परन्तु प्रांसगिक कारण बहुत तुच्छ था। विप्लव का प्रांसगिक कारण सैनिकों का असन्तोष ही था। और इस असन्तोष का कारण सैनिकों में इस अफवाह का फैल जाना कि अंग्रेज लोग गाय और सुअर की चर्बी लगे कारतूस सैनिकों को देकर उन्हे धर्म भ्रष्ट करना चाहते हैं। लार्ड डलहौजी वि० सं० १९३१ (सन् १८५६ ई०) में इंगलैण्ड वापिस चले गये इनके स्थान पर लार्ड कैनिंग गर्वनर हुए। लार्ड डलहौजी की राजनीति से जो असन्तोष भारतवर्ष में उत्पन्न हो गया था। वह लार्ड कैनिग को भली-भांति मालूम था। भारतवर्ष में आते समय कहा भी था कि कोई छोटी बात अशान्ति होने के कारण विप्लव उत्पन्न कर सकेगी। लार्ड कैनिग का अनुमान सत्य ही निकला।

कानपुर के बलवे का समाचार झाँसी पहुंचा। झांसी में अंग्रेजों के सेनानायक कप्तान डनलाय थे। रानी लक्ष्मीबाई का इस विद्रोह से कोई सम्बन्ध नहीं था। परन्तु अंग्रेजों की काली पलटन बागी हो गयी थी। इस सेना के हवालदार गुरुबख्श ने अचानक बलवा का झण्डा खड़ा किया गोला बारुद जो कुछ था उस समय में अधिकार कर लिया अंग्रेज झाँसी के किला से निकल भागे किले और शहर झाँसी पर विद्रोहियों का अधिकार

हो गया। गार्डन नामक अंग्रेज इस युद्ध में मारा गया था। झांसी के कमिश्नर साहब स्कीन का वध इसी समय हुआ था।

विद्रोह के दो दिन पहिले मिस्टर गार्डन रानीलक्ष्मीबाई से मिले थे।उन्हे रानी लक्ष्मीबाई पर पूरा विश्वास था कि वह अंग्रेजों से विद्रोह नही करेगीं। विद्रोहियों ने झाँसी के किले पर कब्जा करने के बाद शहर मे रानी लक्ष्मीबाई के महल को घेर लिया। रानी लक्ष्मीबाई ने विद्रोहियों को मार कर भगा दिया और यह सब हाल अंग्रेजों को लिख भेजा। सागर के कमिश्नर की तरफ से रानी लक्ष्मीबाई झांसी की शासक बन गई थी। झांसी के कमिश्नर थिक भी रानी लक्ष्मीबाई को पूर्ण अधिकार प्रदान कर चुके थे।

सदाशिव नारायन एक बड़ी सेना लेकर झांसी के समीप पहुंचा करेरा पर हमला करके उसने अंग्रेजों के थानेदार और तहसीलदार को मार भगाया और करेरा पर अधिकार कर लिया। रानी लक्ष्मीबाई अपनी सेना लेकर करेरा गई इनको देखकर सदाशिव नारायन डर कर भाग गया और करेरा पर रानी लक्ष्मीबाई का अधिकार हो गया। सदाशिव नारायन नरवर की ओर भागा परन्तु वह कैद होकर झाँसी के किले में बन्द हो गया।

ओरछा के महाराजा हम्मीरसिंह का दीवान नत्थे खाँ ने उसी समय में बीस हजार सेना लेकर झॉसी पर (रानी लक्ष्मीबाई) आक्रमण करने आया इस युद्ध में नत्थेखां की हार हुई। रानीलक्ष्मीबाई ने दीवान जवाहरसिंह को अपनी सेना का अधिपति बनाया। मर्दन सिह राजा बानपुर से झांसी में आकर रानी लक्ष्मीबाई से मिले और स्वतन्त्रता संग्राम करने की सलाह दी। रानी लक्ष्मीबाई भी इस क्रांतिकारी वीर योद्धा से उचित सहयोग पाकर अंग्रेजों के विरूद्ध युद्ध करने की तैयारी करने लगीं। उसी समय अंग्रेजों को सब हाल मालूम हो गया था कि रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजों के विरुध्द हो गई हैं। झांसी में जो अंग्रेजों की हत्या हुई थी उस हत्याकाण्ड का आरोप रानी लक्ष्मीबाई पर लगाया गया। मर्दनसिंह ने झांसी की रानी को युध्द करने की सलाह दी।

क्रान्ति की ज्वाला मेरठ से उठी और दिल्ली, कानपुर होती झांसी तक पहुँच गई। यहां पर अंग्रेरजों के दो बंगले जला दिए गये झांसी के उपद्रव का समाचार सरह्यूरोज को मालूम होते ही वह अपनी सेना सहित सन् १८५७ ई० के गदर की शान्ति करने नाराट की घाटी की ओर चले। इस घाटी पर मर्दनसिंह की बहुत सेना नियत थी। इसलिए सरह्यूरोज ने मदनपुर होते हुए निकल जाना ठीक न समझा। सरह्यरोत्र को मदनपुर की ओर जाते हुए देख मर्दनसिंह ने प्रस्थान अपनी सेना सहित मदनपुर को कर दिया यह देख सरह्यूरोज ने अपनी सेना नाराट की घाटी की ओर भेजी और मर्दनसिंह की सेना को वही पर अटका दिया। मदनपुर में सरह्यूरोज ने शाहगढ़ की सेना को हरा दिया। यह युद्ध बड़ा भीषण हुआ अंग्रेजों की बहुत सी सेना मारी गई सरह्यूरोज को भी एक गोली लगी उस गोली से घोड़ा मर गया। परन्तु विजय अंग्रेजों को मिली। इस समय मर्दनसिंह युद्ध भूमि में पहुंच पाते तो अंग्रेजों की निश्चय हार हो जाती। परन्तु मर्दनसिंह नाराट की घाटी में ही अटके रहे थे। मर्दनसिंह तथा शाहगद के राजा वखतअली का मेल न होने पाया। शाहगढ़ का राज्य इस युद्ध के बाद अंग्रेजों के अधिकार में आगया। मर्दनसिंह नाराट की घाटी के पास अंग्रेजों की सेना से लड़ रहे थे। बानपुर, खुरई, नरयावली, तालबेहट, चंदेरी भी अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। फिर झांसी की तरफ अंग्रेजी सेनाओं ने आक्रमण करने को प्रस्थान कर दिया। नत्थे खाँ अंग्रेजों की सेना को मार्ग बताकर झाँसी तक आया और रानी लक्ष्मीबाई के एक मुख्य सरदार दूलह जूने बड़ा विश्वासघात किया और झांसी में अग्रेजों की सेना को प्रवेश होने में मदद कर दी थी।

मर्दनसिह अंग्रेजों को चुनौती देकर ललकार रहा था रण-भेरी वीरों में रस संचार कर रही थी। रानी लक्ष्मीबाई ने घुड़सवारों को लेकर दूसरी ओर से हमला किया और अंग्रेजों के तोपखानों को नष्ट कर दिया। मर्दनसिंह के घुड़सवारों ने अग्रेजों को मारनाशुरू कर दिया। स्वतन्त्रता प्रेमी

सहायता कर दी। रानी लक्ष्मीबाई के मुख्य सरदार कटेरा वाले रावसाहब दूल्हाजू ने बड़ा भारी विश्वासघात किया अगरेजों को झाँसी के किले में निकल आने का मार्ग दे दिया था इस युद्ध में अगरेजों के सरदारों, डिक, भिकली, बोनस, फाँक्स ने किले में प्रवेश किया परन्तु १५०० अगरेजी सेना सहित उक्त अगरेजी सरदार युद्ध में मारे गये। उस समय अगरेजी सेना किला के अन्दर प्रवेश दूल्हाजू की सहायता से कर गई थी। रानी लक्ष्मी बाई ने मिस्टर बौकर को हराया और रामचन्द्रराव, मर्दनसिंह, देसमुख, तात्याटोपे रानी लक्ष्मीबाई सहित झांसी का किला से भाग कर कालपी तरफ चली गई। ३ अप्रैल सन् १८५८ को रानी लक्ष्मीबाई का झांसी से प्रस्थान करने बावत बताया जाता है। मोरोपन्त ताबे भी रानी लक्ष्मीबाई की सहायता में साथ ही बने रहे थे। इधर अगरेजों ने झाँसी पर अधिकार प्राप्त करके शहर भर के आदमी औरतों बच्चों को मार डाला। झाँसी शहर में लाशों के ढ़ेर लग गये तीन दिनतक लूट-मार हुई झाँसी का पुस्तका-लय नष्ट किया गया। उस समय ब्रतांत से पता लगता है कि युद्ध में उतने मनुष्य नहीं मरे जितने बिजन और लूट के समय मारे गये थे।

३ अप्रैल सन् १८५८ को भांडेर में अगरेजों के सेनापति बौकर को रानी लक्ष्मीबाई ने घायल करके हराया वह वापिस लौट गये। रानी साहिबा कालपी पहुँची वहां पर कानपुर के बागियों ने, नाना साहब ने, रानी लक्ष्मीबाई का महान स्वागत किया गया था उस समय मर्दनसिंह भी साथ में कालपी मौजूद थे। बांदा के नबाव अलीबहादुर, शाहगढ़ के राजा बखतअली, बानपुर के मर्दनसिंह की सेना वहां पर इकट्ठी हुई अनेक विद्रोही बागी पल्टन वाले भी शामिल हुये इसमें तात्याटोपे अधिनायक बनाए गए थे।

सरह्यूरोज अपनी सेना लेकर कालपी पर आक्रमण किया और कोंच पर अधिकार करके लौहारी के किले पर अधिकार किया। कालपी में रानी लक्ष्मीबाई ने बहुत सी सेना इकट्ठी कर ली थी। रोहिलों की सेना भी इसी

समय लक्ष्मीबाई की सहायता की आ पहुँची। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ बीस हजार अंगरेजी सेना मारी गई अन्त में कालपी पर अगरेजों का अधिकार हो गया। रानी लक्ष्मीबाई, रावसाहब पेशवा बाँदा के नवाब, मर्दनसिह सहित कालपी से निकल भागे और गोपालपुरा पहुँचे। तात्याटोपे भी सेनाओं सहित वही पर इकट्ठे हो गये।

ग्वालियर के सिंधिया महाराजा जयाजीराव अंगरेजों के रेजिडेन्ट ही वास्तविक शासक थे। रानी लक्ष्मीबाई ने ग्वालियर पर आक्रमण कर दिया और मुरार के निकट बहादुरपुर नामक स्थान पर युद्ध हुआ इसमें रानी लक्ष्मीबाई की विजय हुई और ग्वालियर पर कब्जा हो गया।

सरह्यू रोज अपनी सेना लेकर ग्वालियर तरफ चल दिया और १३ जून १८५८ को युद्ध हुआ मुरार पर अगरेजों का अधिकार हो गया ग्वालियर से पांच मील दूरी पर कोटा की सराय नामक स्थान पर युद्ध हुआ बिग्रेडियर स्मिथ को रानी लक्ष्मीबाई ने हराया। घमासान युद्ध हुआ इसमें रानी लक्ष्मीबाई के शरीर में अनेक घाव हो गये इसमें चौदह हजार सेना अग्रेजों की नष्ट हो गई संग्राम भूमि के निकट एक पर्णकुटी में रानी साहिबा लक्ष्मीबाई का १६ जून सन् १८५८ को देहान्त होना बताया जाता है। कुछ सज्जनों का मत है कि रानी लक्ष्मीबाई नैपाल चली गई और ८० साल की आयु में वि० सं० १९७२ (सन् १९१५ ई०) में नैपाल में देहान्त हुआ

मर्दनसिह सन् १८५८ में अगरेजों द्वारा कैद कर लिए गये और २८ सितम्बर सन् १८५८ में लाहौर के जेल में भेजे गये परन्तु ब्रन्द्रावन वापिस कर दिए गये २२ जुलाई सन् १८६९ अर्थात् वि० सं० १९२६ में राजा मर्दनसिंह अमर सेनानी महान क्रान्तकारी बानपुर वाले राजा परलोक बासी हो गये थे।

—卐—

दतिया के बुन्देला नरेशों की परम्परा

(वि० सं० १६८३ से १७१३ वि० सं० तक)

(१) भगवानराय (सन १६२६ से १६५६ तक)

एक प्रथक इकाई के रूप में दतिया राज्य का इपिहास २० अक्टूबर सन १६२६ से प्रारम्भ होता है जब ओरछा नरेश वीरसिंह जू देव ने अपने एक पुत्र भगवान राय को दतिया और बड़ौनी का राज्य प्रदान किया।

सन १६२५ में जब सम्राट जहांगीर काबुल जा रहे थे महावत खाँ ने उन्हें अपने नियन्त्रण में ले लिया। समाचार पाते ही वीरसिंह जू देव ने अपने पुत्र भगवान राय को सहायता के लिए भेजा यद्यपि उस समय तक उनका अपने संरक्षक जहांगीर से कुछ मतभेद हो चुका था जहांगीर ने भगवान राय की राज्यभक्ति की सराहना करते हुए उनका अच्छा सम्मान किया। दूसरी वार जब भगवान राय मुगल सम्राट की सेवा में भेजे गये महाराज वीरसिंह जू देव ने ओरछा राज्य अपने ज्येष्ठ पुत्र जुझारसिंह को सौंप दिया और मतभेद को कुछ और भी बड़ा रखने के लिए भगवानराय की पलेरा जागीर उनके ही दो पुत्रों धुर मंगद और शक्तिसिंह को दे डाली स्वाभाविक था कि लौटने पर भगवानराय विरोध ठानते, क्योंकि अब इनके पास निरवाह का कोइ साधन न था पिता पुत्र के थोड़े विरोध के पश्चात जो समझौता हुआ उसके अनुसार वीरसिंह जू देव ने भगवान राय को एक अलग जागीर प्रदान की। जिसमें दतिया नगर और दतिया का महल सम्मिलित था और जिसके साथ बड़ौनी की मालगुजारी भी थीं। सम्राट से प्राप्त होने वाली तीन तलवारें और मधुकरशाह की लक्ष्मीनारायण की मूर्ति भी दतिया नरेश को प्राप्त हुई।

ओरछा घराने के बुन्देला राजपूत भगवानराय जो दतिया राज्य के संस्थापक हुए, साम्राज्य सेवा के साथ बल प्रयोग के द्वारा राज्य विस्तार

की सुविधा स्पष्ट देख सके। उन्होंने अपनी भुजाओं के बल से दतिया के लिए वैभव कमाया और मुगल साम्राज्य में बुन्देलों की प्रधान गद्दी ओरछा के बाद दतिया को दूसरा स्थान प्राप्त हुआ। एच० ईलियट के अनुसार सन १६२६-३० में जब खान जहां लोधी ने विरोध किया भगवान राय ने शाहस्ता खां के नेतृत्व में मुगल राज्य वंश की सहायता की और युद्ध में उन के भाई नरहरिदास मारे गये। सन १६३१ में दतिया नरेश ने आसफखाँ के साथ बीजापुर अभियान में भाग लिया परन्तु सन १६३४ में जुझारसिंह ने विद्रोह के साथ वे तटस्थ रहे। सन १६२६ में उन्होंने लाहौर में विद्रोही सूबेदार के विरोध में जो सेवायें प्रदान की, उनके पुरुस्कार स्वरूप उन्हें भांडेर परगना और पंच हजारी का मनसव (जिस कुछ विदेशी विद्वानों ने ३००० हजार का आंका है) प्राप्त हुआ। सन १६५६ में भगवानराय का देहान्त हुआ उनकी समाधि "सुराही छतरी" के नाम से प्रसिद्ध है।

वि० सं० १७१३ से वि० सं० १७४० तक
(२) शुभकरण सन १६५६ से १६८३ तक

भगवानराय के तृतीय पुत्र शुभकरण जो सन १६४६ से ५३ के आक्रमणों में बलख और बदखसां के मुगल सम्राट की उल्लेखनीय सेवा कर चुके थे दतिया की गद्दी पर प्रतिष्ठित हुए और शुभकरण के छोटे भाई पृथ्वीराज को बड़ौनी की जागीर प्राप्त हुई। राज्य पाकर शुभकरण अपने समय के सभी महत्वपूर्ण अभियानों में भाग लेते रहे स्थानीय परम्परा के अनुसार शुभकरण ने सब मिलाकर २२ लड़ाईयों में भाग लिया। सन १६-५७-५८ में उन्होंने चम्पतराय के साथ ओरङ्गजेव और मुराद का पक्ष लेकर दारा के साथ युद्ध किया और सुजा के साथ युद्ध करते हुए खुजवा की लड़ाई में शुभकरण के भाई पृथ्वीराज मारे गए। अधिकार पाकर ओरङ्गजेव ने शुभकरण को पंच हजारी का मनसब प्रदान करते हुए बुन्देल खण्ड का सूबेदार नियुक्त किया क्योंकि इस समय तक औरंगजेब का चम्पत

राय से कुछ विरोध हो जाने के कारण यह आवश्यक था कि बुन्देलखण्ड एक शक्तिशाली नियन्त्रण में रहे और सम्राट औरंगजेब शुभकरण से अधिक योग्य और विश्वसनीय दूसरा सामन्त नहीं पा सके थे। विद्वानों के अनु-सार मनसब का मूल्य कुछ भी आंका जाए परन्तु इस राज्य में पंच हजारी का स्पष्ट उल्लेख है। पहले भले ही कुछ कम रहा हो परन्तु इस समय यह मनसव बुद्धि आश्चर्यजनक कदापि नहीं।

वनियर के अनुसार सन १६६६ में शुभकरण ने अराकान के अभि-यान में भाग लिया और सन १६६७ से सन १६८० तक उन्होंने दक्षिण की लड़ाइयों में वीरता दिखाई। दक्षिण की लड़ाइयों में शुभकरण के साथ उनके पुत्र दलपतिराव और भतीजे बडौनी के छत्रसाल रहे। फरिस्ता के अनुसार दलपतिराव सन १६८१ में अंट्रर में जख्मी हुए और उन्हे ३०० का मनसव प्राप्त हुआ। शुभकरण और दलपत राव ने दक्षिण में मराठों से युद्ध करते हुए अच्छी ख्याति प्राप्त की। सन १६८२ में शुभकरण जब दक्षिण में दिलेरखां की सहायता कर रहे थे रोग ने उनके ऊपर अधिकार जमाया और सन १६८३ में उनका देहान्त हो गया। इस बीर सैनिक के निधन का सभी को भारी दुःख हुआ करण सागर नामक सुन्दर तालाब का निर्माण कराने वाले शुभकरण ने दतिया के पूर्वी भाग के एक टीले पर "राजगढ़" का भव्य प्रासाद निर्मित कराया।

वि० सं० १७४० से वि० स० १७६४ तक
(३) दलपति राव (सन् १६८३ से १७०७)

मुगल घराने में तीसरे शासक अकबर की भाँति दलपतिराव ने अपने राज्य को दृढ़ता प्रदान की। उन्होंने दतिया नगर को कुछ नये ढ़ंग से बसाकर दलीप नगर नाम दिया। आपने रास नाम नर प्रतापगढ़ के नाम से नगर में एक सुगढ़ दुर्ग का निर्माण भी दलपतिराव के समय में हुआ दलपति राव एक बड़े योधा थे जिन्होंने अपने पिता शुभकरण की मृत्यु के बाद

बुन्देली सेना का नेतृत्व किया । सुदुर दक्षिण में वीजापुर सन १६८६ गोल कुंडा सन १६८७ अदौनी सन १६८८ और जिन्जी सन १६६४ के मोर्चो पर लड़कर उन्होंने दतिया के लिए प्रशंसनीय वैभव कमाया । दलपति राव को प्रारम्भ ही से औरंगजेव का अच्छा विश्वास प्राप्त था । सन १६८२ में जब औरंगाबाद में रहते हुए खान जहाँ ने सम्भा जी के एक दूत के यों ही निकल जाने का आरोप दलपति राव पर लगाया और जब आरोप से रुष्ट होकर समस्त बुन्देली सेना भड़क उठी थीं । सम्राट औरंगजेव खान जसा की शिकायत पर तनिक विश्वास न कर सके । सम्राट की एक बेगम हुसैन मीर को आगरा ले जाने का भार जब दलपतिराव को सौंपा गया, तो मार्ग में नदी पार करते हुए उनकी रानी का हाथी भड़क उठा । पर्दे की रक्षा के बिचार से दलपतिराव हाथी का बध करने के लिये प्रस्तुत हुए तभी बेगम ने अपनी चौडेंल (बन्द पालकी) रानी के लिए भेज दी । चौडेर का यह सम्मान दतिया की रानियों का एक विशिष्ट सम्मान है जो बुन्देलखण्ड के अन्य राज्यों को नहीं मिला ।

दक्षिण में रामसीज के घेरे में जख्म पाने वाले दलपतिराव को बार-बार मनसब बृद्धि का अवसर प्राप्त हुआ । गाजीउद्दीन खाँ के साथ अहमद नगर से बीजापुर रसद ले जाते हुए जब उन पर मराठों ने आक्रमण किया तो दोनों सेनानायकों ने असाधारण वीरता दिखाते हुए प्राय: ४०० शत्रुओं को नष्ट कर दिया अपनी इस वीरता के लिए दलपतिराव, राव की उपाधि और अलम (ध्वजा) के सम्मान से विभूषित हुए । सन १६८८ में दलपति राव अदौनी के किलेदार नियुक्त हुए परन्तु सन १६६२ में राजकुमार बेदार बख्त को सहयोग देने के कारण सम्राट उनसे कुछ रुष्ट हो गए किन्तु शीघ्र ही उन्होंने सम्राट को प्रसन्न कर लिया । फारस के राजदूत को औरंगाबाद लाने का भार जब उन्हें सौंपा गया तो मार्ग में मराठों ने आक्रमण कर दिया और दलपति राव ने मराठा सरदार लाकोजी सिंधिया को कैद कर लिया । सन १६६४ में जिंजी की लड़ाई के बाद सम्राट ने दतिया नरेश

को एक जोड़ विशाल फाटक प्रदान किया जो किले में फूलबाग के द्वार पर अब भी सुरक्षित है।

सन १६६८ में दलपति राव के सुपुत्र रामचन्द्र को नमूढ़गढ़ का सूबेदार नियुक्त किया गया किन्तु रामचन्द्र ने चुपचाप उस स्थान को छोड़ कर पिता की अनुपस्थिति में दतिया को हथिया लेने का प्रयास किया किन्तु औरंगजेब के अधिकारियों की सतर्कता से रामचन्द्र का यह प्रयास विफल सन १७०० में दलपतिराव ने जुल्फिकार खाँ की सेना के अग्रभाग का नेतृत्व दाऊदखाँ पन्नी के स्थान पर संभाला। परनाला के युद्ध में उन्होंने रण कौशल का सुन्दर परिचय दिया जिसके पुरुष्कार स्वरुप पर एच० ईलियट के अनुसार उन्हे ३००० रु० का मनसव प्राप्त हुआ। उन्होंने वाकिन खेरा के युद्ध में भी भाग लिया। शाह आलम बहादुरशाह और आजमशाह के बीच उत्तराधिकारी के युद्ध में दतिया नरेश ने आजमशाह का साथ दिया और १६ जुलाई सन १७०७ को जाजऊ की लड़ाई में उन्हें एक घातक घाव लगा जिसके कुछ समय पीछे उनका देहाँत हो गया। कोटा के राजा रामसिंह भी इस लड़ाई में उनके साथ थे। दलपति राव की समाधि जाजऊ के एक बगीचे में स्थित हैं।

दलपति राव के समय दतिया की जनता की समृद्धि राज्य की शान्ति से ही समझी जा सकती है शासन की विशेष बातों पर ध्यान देने का वह समय न था। दीर्घकाल तक नरेश के बाहर रहने पर भी प्रजा का सुखी और सन्तुष्ट रहना शासक की सुचारू व्यवस्था का ही पारिचारक है। युग की मांग निजी वीरता की थी, जिसमें अकेले दलपति राव ने ही योग नहीं दिया दतिया के कितने ही लाड़ले दो दो हाथ दिखाने के लिए सदैव कमर कसे रहते थे प्रसिद्ध हैं।

"दतिया दलपति राव की जीति सकै न कोय।
जो जाको जीतन चहै अधफर फजियत होय॥"

(वि० स० १७६४ से वि० सं० १७९३ तक)

(४) रामचन्द्र (सन् १७०७ से १७३४)

दलपत राव के देहान्त के पश्चात् उनके पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए कुछ झगड़ा खड़ा हो गया। ओरछा के महाराज उदैतसिंह ने दलपत राव के पाँच पुत्रों में सबसे बड़े रामचन्द्र का समर्थन किया और देहली जाने पर मुगल सम्राट बहादुर शाह ने भी खिलयत और मनसब प्रदान करते हुए दतिया पर उनके अधिकार की पुष्टि की। दलपत राव के द्वितीय पुत्र पृथ्वीसिंह या पृथ्वीचन्द्र को सेंवढ़ा की जागीर प्राप्त हुई। उनके तृतीय पुत्र भारतीचन्द्र सन् १७११ तक सघर्ष करते रहे। पृथ्वीचन्द्र ने 'रसनिधि' नाम से काव्य साधना और जहाँदार शाह की सेना के अग्र भाग में नेतृत्व के लिए अच्छी ख्याति प्राप्त की है। सम्राट फरुखसियर जब सिंहासन पर आसीन हुए तो उन्होंने नवाब सुकरम खाँ के द्वारा दतिया को शाही फरमान खिलअत तलवार और कई उपहार भेजे। सन् १७१४ में राव रामचन्द्र ने दिल्ली में सम्राट से भेंट की। जब दरबार में हथियारों से सजकर जाने का निषेध था राव रामचन्द्र ने आज्ञा का उल्लघन किया और अपने साहस के लिए सम्राट से सराहना पाई।

सन् १७२३ में उन्होंने जाट सरदार बदनसिंह के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया और सन् १७३२ में मुहम्मद खां बंगस के विरोध में जैतपुर के जगत–राज बुन्देला को सहायता पहुँचाई। सन् १७३६ में उन्होंने कड़ा जहानाबाद के भगवंतसिंह खीची के विरुद्ध बुरहान मुल्क सआदत खां की सहायता की युद्ध में भगवतसिंह मारे गये और राव रामचन्द्र को भी एक घातक घाव लगा। राव रामचन्द्र की समाधि कड़ा में स्थित है। उनकी बड़ी रानी सीता जू के नाम पर दतिया में "सीता सागर" तालाब और उनके नाम पर दतिया से कुछ ही दूरी पर "राम सागर" नामक तालाब का निर्माण उनकी प्रजा वत्सलता का परिचायक है।

(वि० सं० १७९३ से वि० सं० १८१९ तक)

(५) इन्द्रजीत (सन् १७३६ से १७६२)

राव रामचन्द्र के देहान्त के पश्चात् उत्तराधिकार का प्रश्न उपस्थित हुआ। जिसमें ओरछा नरेश उदैतसिंह ने पुनः मध्यस्थता की और रामचन्द्र के प्रपौत्र इन्द्रजीत के पक्ष में अपना निर्णय दिया। इन्द्रजीत के पिता गुमानसिंह का देहान्त सन् १७२८ में और पितामह रामसिंह का देहान्त १७३० में हो चुका था। बड़ी रानी सीता जू के संरक्षण में कुमार इन्द्रजीत ने दतिया का राज्य प्राप्त किया और उनका विरोध करने वाले उनके पिता के चाचा रघुनाथसिंह को नंदी गाँव की जागीर से सन्तोष करना पड़ा। इन्द्रजीत को गद्दी दिलाने में दतिया राज्य के दो सेवक नोनेशाह गूजर और लाला रघुवंशी कायस्थ प्रमुख थे। नोनेशाह को जागीर में पाँच गाँव और राजधर की उपाधि प्राप्त हुई। जिसकी स्मृति में दतिया में राजधर का बाजार (वर्तमान छोटा बाजार) बनाया गया नोनेशाह के पुत्र मर्दनसिंह को समथर की किलेदारी से सम्मानित किया गया। पश्चात् नोनेशाह के पौत्र देवीसिंह को पृथ्वीचन्द्र के पुत्र बहादुर जू का दमन करने के लिये सेंवढ़ा भेजा गया जिसके उपलक्ष में देवीसिंह को पांच गाँव और भी प्राप्त हुए इस प्रकार मर्दनसिंह द्वारा समथर राज्य की स्थापना का सूत्रपात हुआ जिसके पक्ष में निश्चित प्रमाण सुलभ हैं। तथापि समथर दरबार अपनी स्वतन्त्र सत्ता का दावा करते हुए जागीर प्रदान किये जाने की बात को अस्वीकार करता है।

सन् १७६० में शाह आलम बुन्देलखण्ड में आये और ओरछा तथा दतिया नरेश ने उनसे बांदा में भेंट की। उन्होंने राव इन्द्रजीत को 'राजा' की उपाधि से विभूषित किया तथा एक सिंहासन (तख्तनामा) दो ध्वजायें और अरबी बाजा प्रदान किया। सन् १७३२ में पन्ना के छत्रसाल द्वारा पेशवा को बुन्देलखण्ड का एक भाग जागीर में दिये जाने के कारण मराठाओं

के आक्रमण का मार्ग खुल गया। सन् १७४२ में नारू शंकर ने ओरछा और दमोह पर आक्रमण करने के साथ ही दतिया के कुछ भाग पर भी अधिकार जमाया। पश्चात् मालवा के सूबेदार आजम उल्लाह खां भी दतिया तक बढ़े चले आये, और उन्होंने दतिया नरेश को सात लाख रुपया देने के लिये वाध्य किया। सन् १७४५ में दतिया नगर के सन्निकट पीला जी गायकवाड़ ने आक्रमण किया जिसे दतिया कीं सेना ने विफल कर दिया पीला जी का भतीजा मारा गया और वे स्वयं जख्मी होकर लौटे। उसी समय से एक कहावत चल पड़ी:—

'दतिया की डाँग में खैर बमूर।
पीला जी ढूंढ़ें भतीजे को मूड़ ॥"

(वि० सं० १८१९ से वि० स० १८५८ तक)
(६) शत्रुजीत (सन् १७६२ से १८०१)

इन्द्रजीत के उत्तराधिकारी शत्रुजीत ने ओरछा नरेश के दत्तक पुत्र कुंवर दूल्हा को गद्दी पर प्रतिष्ठित करने में दो बार सहयोग पहुंचाया जिसके उपलक्ष में शत्रुजीत को १७ गाँव प्राप्त हुए। सन् १८०० में उन्होंने महादजी सिंधिया की विधवा बाइयों को सेंवढ़े में आश्रय प्रदान किया। उनका पक्ष लेकर लकवा दादा ने जब सेंवढ़ा (प्राचीन नाम किरन्नरगढ़) के किले के सामने भारी तैयारी के साथ ग्वालियर के दौलत राव सिंधिया के विरुद्ध मोर्चा जमाया तो 'वीर दलप शरणदः' के पवित्र ध्येय से अनुप्राणित राजा शत्रुजीत ने ग्वालियर के रघुनाथ राव और फ्रांसीसी सेना नायक पीरू (Perron) के विरुद्ध अदम्य वीरता दिखाई कैप्टेन साइम्स के नेतृत्व में बांयें पार्श्व को तो दतिया के वयोवृद्ध वीर नरेश ने बुरी तरह परास्त किया। राजा अपने छत्र के कारण सहज ही पहचाने जा सकते थे जिसके कारण उन्हें एक घातक घाव लगा, परन्तु उन्होंने पीरू को भी घायल कर दिया। पीरू की असाधारण वीरता के कारण ही सिंधिया की भयंकर हार होते होते बच गई। राज्य में प्राप्त 'शत्रुजीत रासो' का यह दावा कि पीरू मारा

गया, भ्रमात्मक है क्योंकि वह सन् १८०३ में रिटायर होकर फ्रांस में मरा।

वि० सं० १८५८ से वि० सं० १८९६ तक
(७) पारीछत (सन् १८०१ से १८३९)

शत्रुजीत के सुपुत्र पारीछत ने सन् १८०१ में गद्दी पर आसीन होकर मराठों से राज्य के भूमाग को वापिस पाने का प्रयास किया और वे मांडेर को लेने में सफल भी हुए। उन्होंने चिरगांव के पास वेत्रवती पर एक बड़ा बांध बनवाया, जो पारीछा बाँध के नाम से प्रसिद्ध है और जिससे दतिया राज्य के तत्कालीन विस्तार का अनुमान किया जा सकता है। सन् १८०४ में उन्हें यह सूचना मिली कि बुन्देलखण्ड के ए० जी० जी० कैप्टेन वेली निकट ही दौरा कर रहे हैं। अतः राजा पारीछत ने नदी गांव जाकर उनसे भेंट की और १५ मार्च सन् १८०४ को कुन्जन घाट नामक स्थान पर दतिया राज्य और ब्रिटिश सरकार के बीच सन्धि स्थापित हुई। ३१ जुलाई सन् १८१८ को कालिंजर में राजा पारीछत की ओर से उनके वकील राव शिवप्रसाद और ब्रिटिश सरकार की ओर से जान वाकिफ साहब के बीच एक दूसरा सन्धि पत्र लिखा गया जिसके अनुसार शान्ति स्थापना के दतिया के प्रयत्नों की सराहना की गई और पुरस्कार स्वरूप सिन्ध के पूर्व में 'चौरासी इलाका' नामक प्रदेश जिसमें इन्दरगढ़ भी सम्मिलित है, दतिया राज्य को प्राप्त हुआ। इस प्रकार 'सहायक सन्धि' के उपर्युक्त दो सन्धि पत्रों ने दतिया राज्य के क्षेत्रफल को ९११ वर्ग मील में सीमित कर दिया।

राजा पारीछत का समय अंग्रेजों से सम्पर्क का समय था। उन्होंने भरतपुर के घेरे और पिंडारियों के युद्ध में ब्रिटिश सरकार की अच्छी सहायता की। सन् १८१८ में लार्ड हैस्टिंग्स दतिया आये और १८२४ में राजा पारीछत ने लार्ड एम्हर्स्ट से कानपुर में भेंट की। सन् १८२५ में लार्ड कौम्बरमैर के सम्मान में दतिया में एक बृहत दरबार का आयोजन किया गया। सन् १८२९ में राजा पारीछत कैथा में बिलियम बैन्टिक के दरबार



श्री महाराजा वीरसिंहजू देव द्वितीय फोटो : देवेन्द्रकुमार वर्मा



श्री महाकवि केशवदास फोटो : देवेन्द्रकुमार वर्मा

में सम्मिलित हुए। दिसम्बर सन् १८३५ में कर्नल स्लीमान ने दतिया की यात्रा की और उन्होंने राज्य का सुन्दर वर्णन किया। राजा पारीछत उस समय ६५ वर्ष के थे और उनकी एक टांग में १२ वर्ष से गठिया ने आधिपत्य जमा रखा था तथापि वे स्वस्थ और प्रसन्नचित्त देखे गये थे। कर्नल स्लीमान ने किले में फलों से लदे हुए उद्यान और एक तोप की विशेष सराहना की है। नगर का परकोटा बनवाने वाले राजा पारीछत का देहान्त सन् १८३९ में सत्तर वर्ष की अवस्था में हुआ।

वि० सं० १८९६ से वि० सं० १९१४ तक

(८) विजय बहादुर (सन् १८३९ से १८५७)

राजा पारीछत के दत्तक पुत्र विजय बहादुर धार्मिक स्वभाव के थे। कहा जाता है कि राजा पारीछत जब हाथी पर शिकार खेलने जा रहे थे तो उन्होंने विजय बहादुर को एक शिशु के रूप में हाथी के पैरों के निकट पड़ा हुआ पाया था और उन्होंने अत्यन्त प्रेम पूर्वक उनका पालन पोषण किया। विजय बहादुर के गद्दी पर बैठने के समय बड़ौनी के ठाकुरों ने आपत्ति की और भगवान राय के सीधे उत्तराधिकारी होने के नाते अपना अधिकार प्रकट किया किन्तु ब्रिटिश सरकार ने राजा पारीछत की मित्रता का ध्यान रखते हुए उनकी इच्छा को ही मान्यता दी। राजा विजय बहादुर ने तीर्थाटन करते हुए प्रचुर दान दिया। एक मुहूर्त में बावन नींवें डलवाने वाले अपने पूर्वज वीरसिंह जू देव के तुलादान की भांति विजय बहादुर का दान भी बृज भूमि में विख्यात है। झाँसी के महाराज गंगाधरराव नेवाल्कर के समकालीन राजा विजय बहादुर भी उत्तराधिकार के लिये चिंतित हुए। दतिया राज्य जितना छोटा था उतना ही भाग्यशाली था जो यहाँ सन् १८५७ में ही नृसिंह जू देव के भाई हरसिंह देव के कुटुम्ब की मसनेह शाखा से भवानीसिंह गद्दी के अधिकारी हुए। अंग्रेजों ने बड़ी रीजेन्ट रानी की भरपूर सराहना की है क्योंकि झांसी से केवल १७ मील के अन्तर पर रहकर भी रानी ने शान्ति बनाये रखने और अंग्रेजों को सहायता पहुंचाने में असाधारण सफलता प्राप्त की।

वि० सं० १९१४ से वि० सं० १९६४ तक

९—भवानीसिंह (सन् १८५७ से १९०७)

भवानीसिंह के विरोध में विजय बहादुर के एक दासी पुत्र अर्जुन सिंह ने कुछ अशांति खड़ी की तो ब्रिटिश सेना के एक भाग ने विद्रोह का दमन किया। अर्जुनसिंह को काशी और कालान्तर में नौ गांव के लिये निष्कासन का दण्ड मिला और अर्जुनसिंह का पक्ष समर्थन करने वाली दूसरी रानी भी दतिया में नजर कैद कर ली गई। महाराज भवानीसिंह ने ५० वर्ष तक शासन किया और दतिया की आधुनिक प्रगति के इस युग में सुधार का श्री गणेश हुआ। नियमित न्यायालयों की स्थापना हुई और सन् १८५८ में पहला नियमित स्कूल खोला गया जो सन् १८६४ में अंग्रेजी स्कूल बन कर सन् १८८८ में हाई स्कूल कहलाया। सन् १८६१ में बड़ौनी के ठाकुरों ने उत्तराधिकार के लिए पुनः दावा खड़ा किया परन्तु उनकी कुछ चली नहीं सन् १८६२ में भवानीसिंह को उत्तराधिकार की सनद प्राप्त हुई और सन् १८६५ में राज्याधिकार प्राप्त हुए। दतिया और बड़ौनी का विवाद बहुत समय तक चलता रहा। अन्त में ब्रिटिश सरकार ने निर्णय दिया कि राजनैतिक दृष्टि से बड़ौनी के ठाकुर दतिया के आश्रित हैं तथापि राज्य के अन्य जागीरदारों से अलग उनकी सत्ता है क्यों कि बड़ौनी की जागीर को सीधा देहली का समर्थ प्राप्त था।

सन् १८७९ में दतिया राज्य और ब्रिटिश सरकार में नमक समझौता हुआ जिसके अनुसार दतिया दरबार को १०,००० रु० वार्षिक क्षति पूर्ति के रूप में प्राप्त हुए। सन् १८८९ में बेतवा नहर के लिए भूमि दी जाना सन् १८८४ में रेलवे के लिए भूमि दी जाना तथा सन् १९०३ में अंग्रेजी सिक्के का चलन होना इस शासन की कुछ उल्लेखनीय विशेषताए हैं। सन् १८७७ के देहली दरबार में राजा भवानीसिंह को 'लोकेन्द्र' की वंशगत उपाधि के साथ एक ध्वजा और एक स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ। सन्

१८९७ के अकाल का सुप्रबन्ध करने के फल स्वरूप महाराज भवानीसिंह को के० सी० एस० आई० और दीवान जानकी प्रसाद को राव बहादुर की उपाधि से विभूषित किया गया। सन् १९०२ में लार्ड कर्जन का दतिया में आगमन हुआ और सन् १९०३ के देहली दरबार में महाराज भवानीसिंह को स्वर्ण पदक प्रदान किया गया।

महाराज भवानीसिंह संस्कृत विद्या और ललितकला, कुश्ती और संगीत के उदार आश्रय दाता थे। उनका शासन राज्य के इतिहास में 'स्वर्ण युग' था। कितने ही विद्वान, कलाकार और पहलवान इस युग में दूर-दूर से दतिया खिंचे चले आये। बिहार से मन्त्र शास्त्री ओझा, काशी मद्रास और गुजरात से सस्कृत के पंडित, और देश के विभिन्न भागों से संगीतज्ञ महाराज के दरबार में आये और उनमें से कितने ही दतिया में बस गये। महाराज भवानीसिंह ने भ्रमण भी खूब किया। विश्व विजय गामा को बनाने का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है। मृद पर 'गज कर्ण' बजा कर उन्मत हाथी को वश में करने वाले भारत प्रसिद्ध पखावजी कुदऊसिंह भी दतिया की विभूति थे, जिन्होंने महाराज भवानीसिंह के दरबार की सोभा बढ़ाई। ४ अगस्त सन् १९०७ को इस गुण ग्राही नरेश का देहान्त हुआ।

(वि० सं० १९६४ से वि० सं० २००६ तक)

(१० गोविन्दसिंह (सन् १९०७ से १९४८)

दसवें और अतिम नरेश महाराज गोविन्दसिंह का जन्म २१ जून सन् १८८६ को हुआ था। सन् १९०७ में राज्यधिकार पाकर उन्होंने अपने पूर्वज दलपतराव की वीरता को अपनाते हुए शिकार में अच्छा नाम पाया। पूर्वी अफ्रीका में महाराज ने १४ शेर २ गेंड़ा, १ हिप्पोपोटेमस, ४ विभिन्न प्रकार के हिरन और अन्य कितने ही जानवरों का शिकार किया। यहाँ भारत के विभिन्न भागों में भी उन्होंने प्रायः २०० बाघों और कितने ही

तेंदुओं और रीछों तथा कुछ शेरों और चीतों का शिकार किया। सन् १९१४ में प्रथम महायुद्ध छिड़ने पर उन्होंने पूर्ण तत्परता से ब्रिटिश सरकार की सहायता के लिये हाथ बढ़ाया, और दोनों महायुद्धों में दतिया राज्य की सहायता उसके छोटे विस्तार कहीं अधिक रही जिसकी सराहना अंग्रेजों ने मुक्त कंठ से की है। सन् १९१८ में उन्हें के० सी० एस० आई० की उपाधि सन् १९२६ में मेजर का सम्मान तथा सन् १९३२ में जी० सी० एस० आई० की उपाधि और लैफ्टीनैन्ट कर्नल के सम्मान से विभूषित किया गया

महाराज गोविन्दसिंह के समय में कितने ही ब्रिटिश पदाधिकारी और देशी नरेश दतिया आये,जिनमें लार्ड विलिंगडन और लार्ड लिनलिथगो,निजाम हैदराबाद,महाराजा ग्वालियर,महाराजा बीकानेर और महाराजा पटियालाके नाम उल्लेखनीय हैं। महाराजा के समय में शासन को सुचारु व्यवस्था बहुत कुछ अंग्रेजी ढंग पर किये जाने का भी अच्छा प्रयास हुआ और निःशुल्क शिक्षा के साथ ही उदार छात्रवृत्ति की जो व्यवस्था दतिया राज्य में थी वह बहुत कम स्थानों में देखी गई है। हार्डिग अस्पताल, गोविन्द इनफैन्ट्री, स्टेट बैंक जैसी महत्व पूर्ण दैन भी किसी प्रकार कम सराहनीय नहीं। इस राज्य की परिणति से कुछ पूर्व सन् १९४६ में जनता ने एक प्रबल आंदोलन द्वारा ब्रिटिश पोलीटिकल विभाग से टक्कर ली, जो रजवाड़ों के स्वातंत्र-संग्राम के इतिहास में निर्विवाद रूप से अपने ढंग का पहला प्रयास था। सन् १९४८ के प्रारम्भ में प्रजा ने उत्तरदायी शासन के लिये आंदोलन किया।

२३ अप्रेल सन् १९४८ को विंध्य प्रदेश की संयुक्त सरकारने राज्य का शासन भार संभाला और २३ जनवरी सन् १९५२ को महाराज गोविन्द सिंह का देहान्त हुआ। उन्होंने अपने पीछे दो कुमार राजा बहादुर बलभद्र सिंह और राव राजा जसवन्तसिंह तथा उनका भरा पूरा परिवार छोड़ा। महाराज गोविन्दसिंह के लिये १,५४,३०० रु० को राजदेय राशि की

राशि की व्यवस्था की गई थी।

महाराजा बलभद्रसिंह वर्तमान महाराज वि० सं० २००९ से (सन् १९५२ ई० से) राजगद्दी आसीन हैं राजाबहादुर कृष्णसिंह युवराज पद पर हैं। देव तुल्य (लाला) दिमान हरदौल जू ओरछा जन्म वि० सं० १६६५ देहान्त वि० सं० १६८८

महाराजा ओरछा वीरसिंह देव प्रथम के बारह पुत्र थे उनमें सबसे बड़े पुत्र जुझारसिंह थे जो वीरसिंह देव की मृत्यु वि० सं० १६८४ के बाद ओरछा के राजा हुए थे। इन्हीं के छोटे भ्राता दिमान हरदौल थे। हरदौल ऐरछ व बड़ौनी और बड़ागांव के जागीरदार थे जिसकी आमदनी दस लाख रुपया थी। हरदौल बहुत वीर थे चम्पतराय की तरह हरदौल बुन्देलखण्ड को स्वतन्त्र करना चाहते थे इनके समय में मुगलों के आक्रमण हुआ करते थे परन्तु मुगलसम्राट शाहजहाँ को बहुत ही परेशान कर दिया था।

दिमान हरदौल की शादी दुर्गापुर के जागीरदार लाखनसिंह प्रमार की लड़की हिमाचल कुवरि के साथ वि० सं० १६८५ में हुई थी। इनके एक पुत्र पैदा हुआ था जिनका नाम विजयसिंह था। विजयसिंह का जन्म वि० स० १६८७ में हुआ था। जिस समय हरदौल का देहान्त हुआ उस समय उनके पुत्र की उमर चार माह की थी। इसके बाद विजयसिंह अपने चाचा अर्थात् हरदौल के बड़े भ्राता भगवानराय दतिया के महाराजा के पास में रहे थे। बाद में अपने पिता हरदौल की जागीर ऐरछ बड़ौनी बड़ागांव के जागीरदार हो गये विजयसिंह के पुत्र प्रतापसिंह और प्रतापसिंह के पुत्र रामसिंह, उद्दैतसिंह हुये थे जो वि० सं० १७४१ से वि० सं० १७९३ तक ओरछा के राजा हुये थे। आपने वरुआ सागर का किला व तालाब वनवाया था। हरदौल की वंश शाखा के बिजना के राजा-चिरगांव के राजा, दिगौड़ा राज्य वंश के अब भी है। बुन्देलखन्ड का संक्षिप्त इतिहास पृष्ठ नम्बर १५४ व २१२ व २८८ व ३११ व ३९४ और ३९५ पर लिखा है तथा

दतिया दर्शन (सन् १९५६) में हरदौल के वंशवृक्ष की शाखाएं दातपुरा-बंकापहाड़ी-धुरबई-पसरारी—टोड़ीफतेपुर बिजना-टहरौली-चिरगांव-कर्री आदिर अब भी मानी जाती है। ऐसा लिखा है। अब दिमान लाला हरदौल का इतिहास लिखते है जो निम्न प्रकार हैं:—

धन्य ओड़छा जहां भये, धर्मवीर हरदौल ।
दिये प्राण सतधर्म पै, पाल वीर व्रत कौल ।।
धर्मवीर हरदौल जू, अजहू तुम्हारे गीत ।
हाँ घर-घर नित गावतीं, समुझ सनातन रीत ।।

ओरछा राजवंश में भ्रात-भक्त श्री हरदौल जैसे महान् पुरुष हुए हैं, जिन्होंने अपने वंश, जनपद और स्त्री समाज की मर्यादा रखने के लिए अपने जीवन तक का उत्सर्ग कर दिया। यह एक ऐसा कलंक है जो भुलाया नहीं जा सकता, यद्यपि उनका बलिदान उनको अमरत्व प्रदान कर गया। केवल बुन्देलखण्ड ही में नहीं सुदूर उत्तर और दक्षिण भारत के गांव-गांव में उनकी पुण्य स्मृति में चबूतरे बने हुये हैं। प्रत्येक विवाह कार्य को सफल बनाने हेतु उनका आवाहन किया जाता है। देवता रूपी हरदौल सब प्रकार की मनोकामना सबकी पूरी करते हैं और सब प्रकार के संकट बिघ्न बाधाएं दूर होती हैं। भूत बाधाए दूर हो जाती हैं सन्तान हीन को पुत्र रत्न प्राप्ति होती है। "भौजी भोजन परसै, अंसुआ चौमासे से बरसै"

आज भी बुन्देलखन्ड के ग्रामवासी गरीब किसान व्यस्त और श्रम साध्य जीवन की कुछ घड़ियों में उकास पाकर गांव की चौपाल में बैठकर अपने दुखों को गीतों के स्वरों में भुलाकर तन्मय हो जाते हैं और बीच में जब उपरोक्त गीत छिड़ जाता है तो इसको गाते-गाते उनकी आंखें छल-छला उठती हैं और गला रुंध जाता है। फिर वे गा नहीं पाते।

यह वीरसिंह देव (प्रथम) के पुत्र और मधुकरशाह के पौत्र एवं

जुझारसिंह के भ्राता थे। इनका जन्म सं० १६६५ वि० में ओरछा में हुआ था। मृत्यु सम्वत् १६८८ वि० में।

हरदौल बड़े कुशाग्र बुद्धि थे, इस कारण सत्तरह वर्ष की अवस्था में शिक्षा और शिकार खेलने में दक्ष हो गये। हरदौल राज्य का कार्य भार सम्भालने में निपुण तो थे ही, शस्त्र चलाने में भी वे पूर्ण कुशल थे। एक बार लंका वन में मृग का शिकार करते समय उनकी सरदारों से होड़ हो गई कि जो एक तीर में मृग को वेधकर धराशायी कर देगा, वही विजयी माना जायेगा।

हाँका (भगाना) कराया गया, मृगों का एक झुण्ड चौकड़ी भरते हुए सामने दिखाई पड़ा। क्रमशः सरदारों ने अपने-अपने तीरों का सन्धान कर वार किया, किन्तु कोई मृग आहत नहीं हुआ, और जैसे ही हरदौल ने तीर छोड़ा एक मृग धराशायी हो गया। यह देख सभी सरदार लज्जित हो गये। वे हरदौल के शौर्य से प्रभावित तो हुए, किन्तु मन ही मन कुंठित रहने लगे।

हरदौल के सम्बन्ध में इस जनपद में एक घटना यह भी प्रचलित है कि फारस का एक तलवार बाज जिसका नाम महदी हुसैन था, ओरछा आया और उसने सातार सरिता के तट पर अपने तलवार चलाने के जौहर दिखाये, जिसमें ओरछा के कई तलवार चलाने वाले पराजित हुए। यह समाचार जब दीवान हरदौल को विदित हुआ तब वे अत्यन्त क्रोधित हो उससे मुकाबला करने को उद्यत हुए। वे एक प्राचीन तलवार, जो जुझार सिंह द्वारा रानी चम्पावती के पास सुरक्षित रखी गई थी, लेने गये। भाभी ने यह कहते हुए "लाला जैसी लयें जात हौ बैसइ लौटा जइयो" तलवार हरदौल को दे दी।

सातार तट पर हरदौल और महदी हुसैन की दो घण्टा तलवार बाजी हुई, जिसमें महदी हुसैन पराजित हो गया, किन्तु हरदौल की जाँघ में एक गहरा घाव हो गया, जिसके कारण वे अपने महल में चले गये। वे उस

तलवार को जो मामी से लाये थे वापिस करना भूल गये। रानी चम्पावती को जब लाला हरदौल के घायल होने का समाचार ज्ञात हुआ, तब उन्होंने अपने महल में बुलाकर उनके उपचार का समुचित प्रबन्ध किया जिससे वे शीघ्र स्वस्थ्य हो गये। तलवार और पटेबाजी की प्रथा आज भी बुन्देल-खण्ड में प्रचलित है।

वीरसिंह देव महाराज ने हरदौल के वीरोचित करतव देखकर उन्हें एरच और बड़ागांव की जागीरें दी।

हरदौल को जिस प्रकार अस्त्र-शस्त्रों से प्रेम था, ठीक उसी प्रकार प्रकृति से भी। इसी कारण वे राजमहल में न रहकर रामराजा मन्दिर के समीप फूलबाग में निवास करने लगे थे। वे यहां की बारादरी में बैठकर जनता की शिकायतें सुन उसका समाधान किया करते थे।

दीवान हरदौल के प्रति जनता की बढ़ती हुई अभिरूचि देख जुझार सिंह के मन में असन्तोष ही नहीं, प्रत्युत राज्यलिप्सा के कारण द्वेष रूपी 'बासा' का पौधा पनपने लगा जो विनाश का द्योतक था।

कालान्तर में बुन्देलखण्ड की सेना की एरच के समीप बेतवा के तीर पर शाहजहां की मालवा, कन्नौज और आगरा की फौजों से मुठभेड़ हुई। उसमें शाही सेना बुरी तरह पराजित हुई। फलस्वरूप चम्पतराय और हरदौल, शाहजहां के हृदय में बबूल के कांटों की तरह चुभने लगे।

शाहजहां ने यह निश्चय किया कि इन दो बुन्देलों को परास्त किये बिना बुन्देलखण्ड को अपने आधीन रखना असम्भव है। इसी दृष्टि से उसने हिदायत खां को जो प्रसिद्ध षड़यन्त्रकारी था, बुन्देलखण्ड में फूट का विषम जाल बुनने को भेजा। लेकिन बुन्देलों के संगठन के आगे वह असफल रहा।

वीर चम्पतराय और दीवान हरदौल ने कालान्तर में धामौनी के गोंड़ राजा को मिलाकर देवगढ़ पर धावा बोल दिया। दुराधर्ष संग्राम हुआ।

विजय श्री ने बुन्देलों का ही वरण किया, जिससे चौरागढ़ पर बुन्देलों का झंडा फहराने लगा।

शाहजहां ने अपनी इस पराजय से आग बबूला होकर औरंगजेब को यह फरमान भेजा कि अपने पराक्रम से चम्पतराय और हरदौल को गिरफ्तार करके दरबार में हाजिर करो, तो तुम्हें दक्खिन के सूबेदार पद से विभूषित किया जायेगा।

दिमान हरदौल को यह शाही फरमान ज्ञात हो गया और वे सजग हो ओरछा आकर सेना का संगठन करने लगे। चौरागढ़ की देखरेख और सुरक्षा का प्रबन्ध राजा जुझारसिंह करते रहे।

हिदायत खाँ को जब यह विदित हुआ, तब उसको अपने कर्त्तव्य का पुनः ध्यान आया और वह उसे पूर्ण करने को आतुर हो उठा। उसने अपनी कपट रूपी तलवार को शीघ्र चापलूसी की मढ़शान पर विचार पूर्वक चढ़ाया और हरदौल को परास्त करने की दृष्टि से अपना कुटिल मन्त्र फूंकने जुझारसिंह के समीप चौरागढ़ पहुँचा।

जुझारसिंह उसकी वाक्पटुता पर पहले से ही मुग्ध था। समय पाकर हिदायत खाँ ने कहा 'महाराज, हरदौल का राजमाता के पास महल में अकेला रहना जनता में भ्रम पैदा करता है।'

हिदायत खाँ के गूढ़ बचन सुनकर जुझारसिंह का हृदय ग्रीष्म ऋतु में बेतवा की तप्त रेत की भांति जलने लगा। उसमें झारें छूटने लगी। 'रानी और हरदौल की संयमता पर जनता को भ्रम है, हिदायत खाँ ?' राजा ने भृकुटी और तेवरी चढ़ाते हुए बड़ी सशंकित पर दवी वाणी से कहा। हिदायग खाँ ने अपना हार्दिक स्नेह भाव दिखा कपट की तेज तलवार चलाते हुए कहा 'हाँ, महाराज।'

जुझारसिंह को रानी के प्रति अविश्वास हो गया। वे हरदौल को द्वेष दृष्टि से देखने लगे। जब यह समाचार हरदौल केविरोधी सरदार प्रतीतराय

और पहाड़सिंह एवं रानी हीरा देवी को विदित हुआ, तब वे भी अवसर पाकर जुझारसिंह के ओरछा लौटने पर मिले और बहुत सी मिथ्या बातें गढ़कर हरदौल के विरूद्ध राजनीतिक षड्यन्त्र रचने लगे।

जुझारसिंह महलों में गये। रानी चम्पावती राजा के आगमन की खुशी में बहुत ही विह्वल थी। भोजन करने को जुझारसिंह और हरदौल एक साथ बैठे। उस समय रानी चम्पावती प्रसन्नता से प्रेम में इतनी मग्न हो गई कि राजा जुझार को चाँदी के थाल में भोजन परोसा और देवर हरदौल को सोने के थाल में भोजन परोसा। यह देखकर जुझार जल भुन गये और हिदायत खाँ, प्रतोतराय, पहाड़सिंह की बात सत्य मान ली। जुझारसिंह ने रानी पर लांछन लगाकर उसका तिरस्कार किया। रानी ने बहुत कुछ कहा पर राजा का सन्देह न मिटा। राजा ने हरदौल को विष देने का प्रस्ताव रानी के समक्ष रखा। रानी स्तम्भित रह गई। रानी ने हर प्रकार से राजा का सदेह दूर करने का प्रयास किया पर सफल न हुई।

रानी धर्म संकट में पड़ गई। एक ओर निर्दोष देवर की हत्या करने का पाप था तो दूसरी ओर पतिता कहलाने का आरोप। नारी अपने चरित्र की रक्षा के लिए सब कुछ कर सकती हैं। दुश्चरित्रता का लांछन हत्या से भी जघन्य है। वह विवश हो गई। भोजन का प्रबन्ध किया गया। हरदौल को आमन्त्रित किया गया। रानी ने अपने हाथों पकवान तैयार किए। वर्तमान श्री रामराजा मन्दिर के चौक में थाल परोसे वह हरदौल को पंखा झलने बैठी। बहुत रोकने पर भी रानी की आँखों से आँसू टपक रहे थे। हरदौल ने देखा और बोले-'भौजी, मुझे भोजन कराते समय तुम्हारी आंखों में आंसू ? तुम्हें ऐसा क्या कष्ट है जो तुम इतनी दुखी हो ?'

रानी ने उत्तर दिया—'लाला, यह भोजन करना तो मैं चाहती पर लोग समझते कि मैं सचमुच पतिता हूं। अतः मृत्यु से भी अधिक कष्ट

झेलने को तैयार होना पड़ा है।' रानी क्या कह रही थी, हरदौल की समझ में न आया। उन्होंने रानी की ओर प्रश्न पूर्ण दृष्टि से देखा और बोले, 'मैं तुम्हारा मतलब समझा नहीं। मृत्यु से बड़ा कष्ट ?.........मेरे रहते हुये।'

रानी बोली. 'समझना ही चाहते हो तो समझ लो। कम से कम तुम्हें मैं धोखे में नहीं रखना चाहती। विश्वासघातनी तो न कहलाऊंगी। तुम मेरे कष्ट को नहीं मिटा सकते तुम्हारे सामने जो भोजन है, यह विषाक्त है। महाराज सन्देह करते हैं कि तुम्हारे और मेरे वीच अनैतिक सम्बन्ध हैं। अपनी सच्चरित्रता सिद्ध करने के लिये उन्होंने शर्त रखी है कि अपने हाथ से मैं तुम्हें विष दूं। तुम चाहो तो थाल खिसका जा सकते हो। यह भोजन मैं कर लूंगी। इतना अवश्य है कि वलिदान देकर भी लाँछन न मिटा पाऊंगी। मेरी लाज की रक्षा तुम्हारे हाथ है रखो चाहे डुबाओ।'

हरदौल को अपने कानों पर विश्वास न हो रहा था। जिस बड़े भाई को वह पिता तुल्य मानते, उसके हृदय में ऐसा सन्देह। हरदौल अत्यन्त हर्षित हो बुन्देली आन-बान के साथ कहते हैं:—

अहो भाग्य धन धन्य भुजाई वचन न भैया को टारो।
बड़े हर्ष की बात भ्राता को होय जगत में उजियारो॥

रानी की आंखों से आँसू झरे जा रहे थे। (लोक कवि स्व० दास) उसकी इच्छा हुई कि सामने का थाल हटा दें। तब तक हरदौल ग्रास पर ग्रास तेजी से निगल गये। और इस प्रकार वि० सं० १६८८ मे २३ वर्ष की उम्र में हरदौल स्वर्गवासी हुए।

लाला हरदौल की मृत्यु का समाचार ओरछा में फैल गया। उनके साथी ६०० बुन्देलों ने आत्म हत्या कर ली। जूठन सामले मेहतर ने खाकर प्राण त्याग दिये।

दीवान हरदौल की मृत्यु के पश्चात् एक विलक्षण घटना घटी । उनकी बहिन कुञ्जावती दतिया के राजा रणजीतसिंह को व्याही थीं । उसकी पुत्री का विवाह था । विवाह के अवसर पर बहिन भाई से भात मांगने जाती है ।

राजा जुझारसिंह को दोष लग चुका था । हरदौल की मृत्यु हो चुकी थी । इस विषम परिस्थिति में कुञ्जावती ने भाई हरदौल की जुगयाना स्थित समाधि पर जाकर भात माँगना उचित समझा और वे ओरछा जाकर हरदौल की समाधि के सन्मुख उपस्थित हो रुदन करती हुई भात मांगने लगी । समाधि से गम्भीर स्वरों में स्नेह-पूर्ण भावों से युक्त एक आवाज गूंजी । बहिन को पूर्ण विश्वास हो गया और वह जुहार कर अपने गृह वापिस लौट आई । उसी रात में हरदौल ने अपने सचिव धर्मपालसिंह से कहा कि "खजाने से धन लेकर व्याह की सामग्री दतिया भेजो ।" धर्मपाल-सिंह ने हरदौल की आज्ञानुसार व्याह सामग्री दतिया भेजी । कुञ्जावती की पुत्री रतन कुमारी का विवाह श्री मानसिंह आत्मज श्री प्रीतमसिंह खड़डवा बेरछा के साथ सम्पन्न हुआ था । मण्डप के दिन भ्राता हरदौल ने अप्रत्यक्ष रूप से बहिन कुञ्जावती को भात दिया । पगति के समय भोजनार्थ समस्त बरात बैठी तो घी का एक पात्र और केवल हाथ ही बरातियों को दिखाई दिया । जब दूल्हा मानसिंह के सामने घी का पात्र आया तो दूल्हा ने हाथ पकड़ लिया और कहा कि मामा जी दर्शन दीजिये । दूल्हा के आग्रह पर समस्त बरात को हरदौल ने दर्शन दिये तथा मागौनी, बरुआ, अमरपुर, मट, बाजनी (उ० प्र०) के भानजों को दान में दिये ।

हरदौल युद्धों में शौर्य दिखाने के कारण अमर नहीं हुए । अपनी भाभी की चरित्र रक्षा के लिए उन्होंने हंसते-हंसते विष पान किया था । भारत के इतिहास में विष पीने और विष पिलाए जाने की अनेक घटनायें हैं, किन्तु जिन महान आत्माओं ने यह जानते हुए कि हमें विष दिया जा रहा है, उसे हंसते-हंसते स्वेच्छा से ग्रहण किया, उनमें मेवाड़ की राजकुमारी

कृष्णा, भक्त शिरोमणि मीरा और बुन्देलखण्ड (ओरछा) के देवता स्वरूप लाला हरदौल के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

दिमान हरदौल का वंश वृक्ष

हरदौल (वीरसिंह के पुत्र)

बेजनीशाह (विजयसिंह) बड़ागांव

प्रतापसिंह

उदेतसिंह महाराजा ओरछा रायसिंह

अमरसिंह (खनियाधाना)

अ	ठर	भैं	या	जा	गी	र	
फतेह सिंह	उमेद सिंह	मान सिंह	भुजवल सिंह	हिन्दूपत	सावत सिंह	लछमन सिंह	मोहकम सिंह
दातपुरा	बकापहाड़ी	धुरबई	दसरारी	टोड़ीफतेहपुर	बिजना	टहरौली	चिरगांव
१	२	३	४	५	६	७	८

दो०—गांवन गांवन चौंतरा, पूजत हैं नर-नारि।
मोंतर बाबा के उतई, बनें चौंतरा चारि॥

वीर बुन्देला हरदौल की जय

ओरछा के राजाओं का वंश बृक्ष

रुद्रप्रताप

(१) भारतीचन्द्र	(२) मधुकुरशाह	(३) उदयाजीत	(४) कीर्तसिंह	(५) भूपतशाह	(६) अमानदास
(७) चन्दनदास	(८) दुर्गादास	(९) घनश्याम	(१०) प्रागदास	(११) भैरवदास	(१२) खण्डेराव

महोवा बृक्ष (१२)

- रामशाह चन्देरा बृक्ष (१२)
- वीरसिंह देव
  - जुझारसिंह
  - पहाड़सिंह
    - सुजानसिंह
    - इन्द्रमणि
      - जसवन्तसिंह
        - भगवन्तसिंह
        - उद्दतसिंह
          - पृथ्वीसिंह
            - गन्धर्वसिंह
          - अमरेश खनियाधाना बृक्ष १५
  - भगवानराय दतिया बृक्ष (१३)
  - हरदौल बिजयसिंह बिजना बृक्ष (१४)
- हरसिंह देव
- मसनेह

सामन्तसिंह

तेजसिंह | विक्रमाजीत

सुजानसिंह

हम्मीरसिंह

प्रतापसिंह
भगवन्तसिंह | सामन्तसिंह विजावर नरे

वीरसिंह (१)	करनसिंह (२)	जहेन्द्रसिंह (३)	महेन्द्रसिंह (४)
देवेन्द्रसिंह	नरेन्द्रसिंह	प्रदन्मसिंह	दिनेशसिंह
मधुकरसिंह	ज्ञानेन्द्रसिंह		

पन्ना के राजाओं का वंश बृक्ष

उदयाजीत (महाराजा रुद्रप्रताप ओरछा वालों के पुत्र)

राधोदास काशीदास गंगादास भारतीचन्द्र हृदयनारायन प्रेमचन्द्र

भगवतदास कुंवरसैन मानशाह
(गरोली बृक्ष ११)

चम्पतराय चन्द्र जू

खड्गराय सुजानराय

गोपालराय छत्रसाल महाराजा रतनशाह अंगदराय सारबाहन

- जगतराज (जैतपुर-बृक्ष ३)
- भारतीचन्द्र (जसो बृक्ष ९)
- पद्मराज
- हृदयशाह (जिगनी बृक्ष १०
  - सभासिंह
    - हिन्दूपत
      - अनुरुद्धसिंह
      - धौकलसिंह
      - किशोरसिंह
        - नृपतसिंह
          - लोकपालसिंह
            - माधवसिंह
          - रुद्रप्रताप
          - खुमानसिंह
            - यादवेन्द्रसिंह
        - हरिबंश राव
    - अमानसिंह
  - पृथ्वीसिंह शाहगढ़ बृक्ष ४
  - सालमसिंह

बुन्देलखण्ड के विभिन्न राज्य संस्थापकों की वंशावली

- विन्दोलमूल हेमकर्ण (काशी)
  - रूद्रप्रताप (ओरछा)
    - भारतीचन्द्र
    - मधुकरशाह
      - रामशाह
        - देवीसिंह (चन्देरी)
      - वीरसिंह (प्रथम)
        - जुझारसिंह
        - हरदौल
          - विजयसिंह (बड़ागाँव)
            - प्रतापसिंह
              - उदोतसिंह
                - अमोरसिंह (खनियाधाना)
              - रायसिंह
        - भगवानराय (दतिया और बड़ौनी)
    - उदयादित्य
      - प्रेमचन्द्र
        - कुंवरसेन
          - मानसिंह
            - भगवन्तदास
              - चम्पतराम
                - छत्रसाल (पन्ना और डंगाई)
                  - भारतीचन्द्र (बघौरा बजसो)
                    - हरीसिंह (जसो)
                  - जगतराज (जैतपुर)
                    - खुमानसिंह (चरखारी)
                    - गुमानसिंह (अजयगढ़)
                    - बीरसिंह (बिजावर)
                  - पहाड़सिंह
                    - मानसिंह (सरीला)
                  - पद्मसिंह (जिगनी)
                  - हिरदैसिंह
                    - अमरसिंह (लुगासी)
        - इन्द्रमणि गरौली

अ	ष्ट	भै	या	जा	गी	र	
फतेह सिंह	उमेद सिंह	मान सिंह	भुजबल सिंह	हिन्दू पत	सावंत सिंह	लछमन सिंह	मोहकम सिंह
दातपुरा	बंकापहाड़ी	ढुरबई	पसरारी	टोड़ीफतेहपुर	बिजना	टहरौली	चिरगाँव

(दतिया दर्शन फरवरी सन् १९५६ से)

(२) दतिया राज्य संस्थापकों की वंशावली

भगवानराय (ओरछा के वीरसिंह प्रथम के पुत्र)
(२० अक्टूबर सन् १६२६ से १६५६ ई० तक)

शुभकरन
(सन् १६५६ से १६८३ तक)

अर्जुनसिंह

दलपतराव
(सन् १६८३ से १७०७ ई० तक)

पृथ्वीसिंह

रामचन्द्र
(सन् १७०७ से १७३६ ई० तक)

रामसिंह

गुमानसिंह

इन्द्रजीत
(सन् १७३६ से १७६२ ई० तक)

सत्तजीत
(सन् १७६२ से १८०१ ई० तक)

राजा पारिछत
(सन् १८०१ से १८३९ ई० तक)

महाराज विजयबहादुर
(सन् १८३९ से १८५७ ई० तक)

भवानीसिंह
(सन् १८५७ से १९०७ ई० तक)

महाराज गोविन्दसिंह

[१९०७ से १९४८ ई० तक (२३ जनवरी सन् १९५२ को स्वर्गवासी)]

नटखटसिंह बलभद्रसिंह रावराजा यशवन्तसिंह

(बलभद्रसिंह के पुत्र) कृष्णसिंह

[बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पृष्ठ ३९३–३९४]

विजना राज्य संस्थापकों की वंशावली

हरदौल (ओरछा के वीरसिंह प्रथम के पुत्र)

बेजनीशाह (विजयसिंह)

परतापसिंह

रायसिंह

सावंतसिंह — मोहकमसिंह

मोहकमसिंह (चिरगाँव वृक्ष १६)

सावंतसिंह
अजीतसिंह
सुरजनसिंह

खण्डेराव
मुकुन्दसिंह

मुकुन्दसिंह — हीरासिंह — रतनसिंह दिगौड़ा गद्दी

[बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पृ० ३९४ से]

रतनसिंह दिगौड़ा गद्दी
खुमानसिंह
शत्रुजीतसिंह
रामसिंह
मदनसिंह
हम्मीरसिंह ओरछा की गद्दी मिली
प्रतापसिंह
महाराजा ओरछा

(३) जैतपुर के राजाओं का वंश वृक्ष

जगतराज (महाराजा छत्रसाल के पुत्र)

- वीरसिंह दीवान
  - बिजावर वृक्ष (५)
- कीरतसिंह
  - खुमानसिंह
    - चरखारी वृक्ष (६)
  - गुमानसिंह
    - अजयगढ़ वृक्ष (७)
      - गजसिंह
        - केशरीसिंह
          - पारीक्षत
          - खेतसिंह
- पहाड़सिंह
  - मानसिंह
    - सरीला वृक्ष (८)

(४) शाहगढ़ के राजाओं का वंश वृक्ष

पृथ्वीसिंह (पन्ना के राजा हृदयशाह के पुत्र)

- हरीसिंह
  - मर्दनसिंह
    - अर्जुनसिंह
      - बखतबली

(५) बिजावर के राजाओं का वंश बृक्ष

वीरसिंह दीवान (जैतपुर के जगतराज के पुत्र) सं० १८२६ वि० सं० से १८५० तक

|

केशरीसिंह सं० १८५० से १८६७ तक

|

रतनसिंह सं० १८६७ से १८६० तक

|

लक्ष्मणसिंह सं० १८६० से १६०४ तक

|

भानुप्रात महाराजा सं० १६०४ से १६५५ तक

सामन्तसिंह गोद गये राज्य वंश ओरछा से वि० सं० १६५५ में

(६) चरखारी के राजाओं का वंश वृक्ष

खुमानसिंह (जैतपुर के जगतराज के नाती कीरतसिंह के पुत्र)

|

राजा विक्रमाजीत विजय बहादुर

|

रणजीतसिंह

|

रतनसिंह

|

जयसिंह

|

महाराज मलखानसिंह

(७) अजयगढ़ के राजाओं का वंश वृक्ष

गुमानसिंह (जैतपुर के जगतराज के नाती कीरतसिंह के पुत्र)

|

बखतसिंह

राजा महिपतसिंह — राजामाधौसिंह

राजामाधौसिंह
।
बिजयसिंह
।
महाराजा रजोसिंह
।
भूपालसिंह,

(८) सरीला के राजाओं का वंश वृक्ष

मानसिंह (जैतपुर के पहाड़सिंह के पुत्र)
।
तेजसिंह
।
अनुरुद्धसिंह
।
हिन्दूराव
।
खड़कसिंह
।
पहाड़सिंह

(९) जसो के राजाओं का वंश वृक्ष

भारतीचन्द्र (महाराजा छत्रसाल के पुत्र)
।
दुर्जनसिंह
।
चेतसिंह
।
मूरतसिंह

।

पहाड़सिंह

।

रामसिंह

।

छत्रजीत

।

भोपालसिह

।

गजराजसिंह बहादुर

(१०) जिगनी के राजाओं का वंश वृक्ष

पद्मराव महाराजा छत्रसाल के (पुत्र)

।

लछमनसिंह

।

हरीसिंह

।

पृथ्वीसिंह

।

भोपालसिंह

।

लछमनसिंह

।

भानुप्रतापसिंह

(११) गरौली के राजाओं का वंश वृक्ष

मानशाह प्रेमचन्द्र के पुत्र

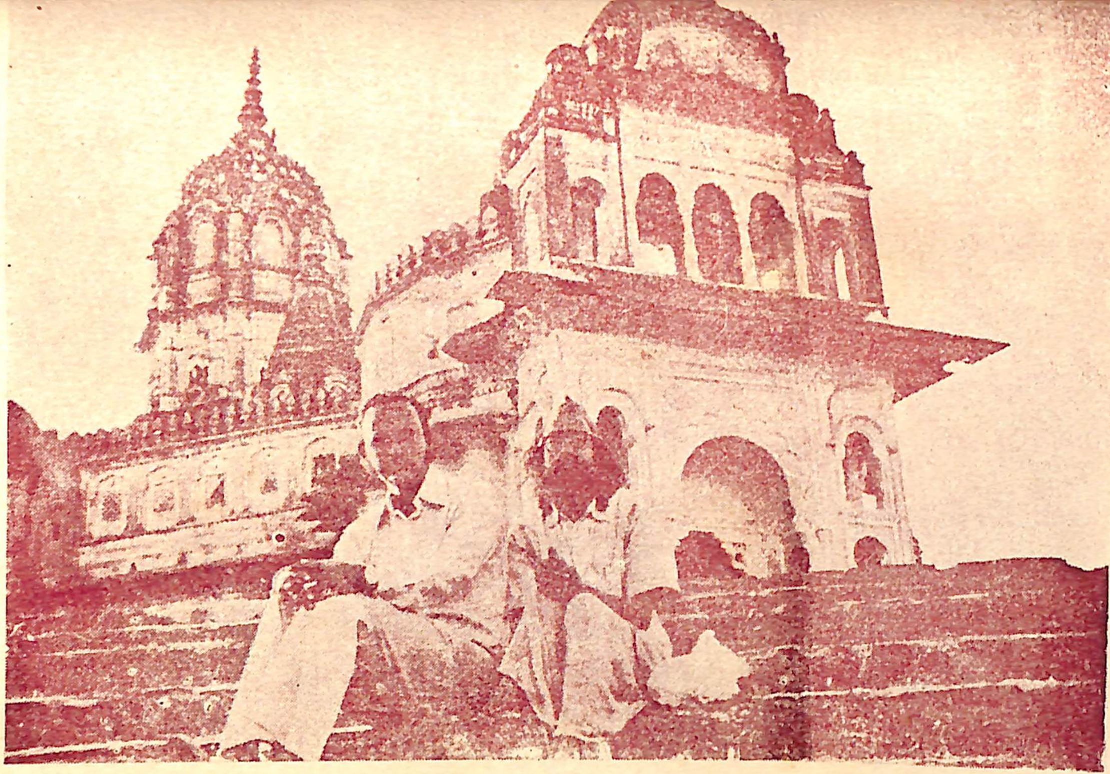
।

इन्द्रमनि

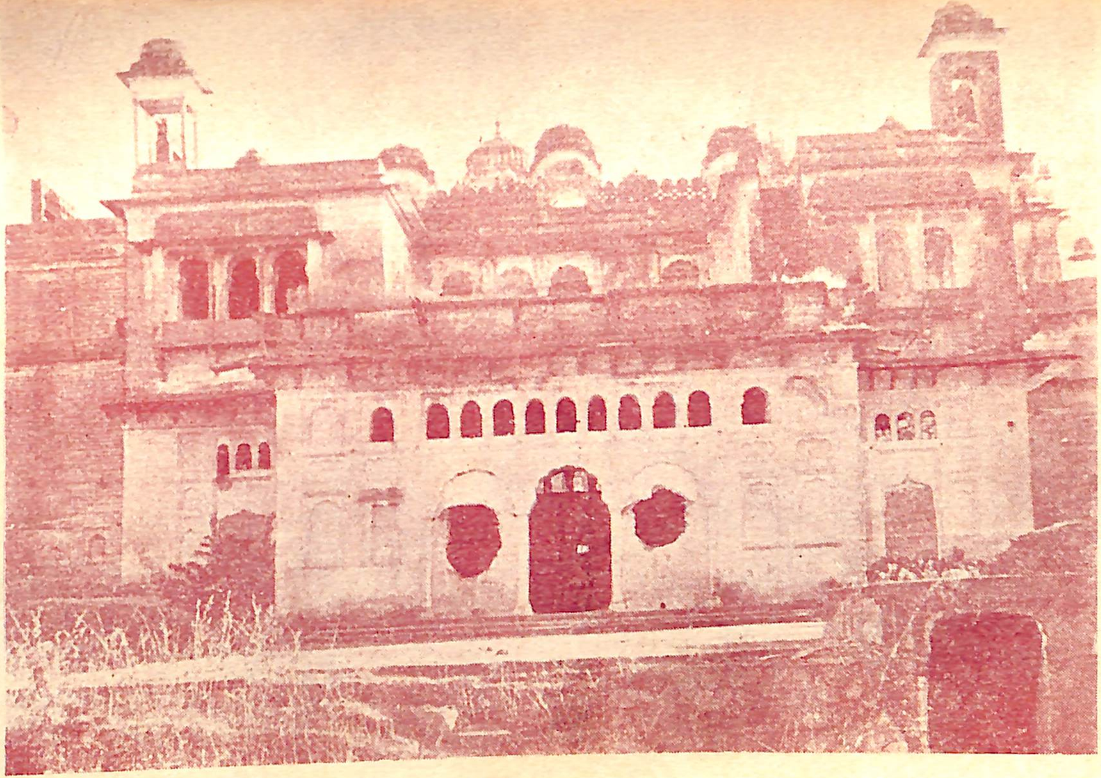
शाहमन

पखतसिंह

अनुरुद्सिंह



श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर में लेखक व छायाकार फोटो : रमेश वर्मा



राय प्रवीन महल

फ़ोटो : देवेन्द्रकुमार वर्मा

जीतसिंह

भगवन्तसिंह

गोपालसिंह

दीवान बहादुर पारीछत

|

बेंकाराव | रनधीरसिंह

बुन्देल का संक्षिप्त इतिहार पृष्ठ नं० ३८३ से ३९५ तक राजाओं का वंश वृक्ष से

(१२) चंदेरी के राजाओं का वंश वृक्ष

राजा रामशाह (ओरछा के मधुकर शाह के पुत्र)

|

संग्रामशाह

|

भारतशाह

|

देवीसिंह

|

दुरगसिंह

|

दुर्जनसिंह

|

मानसिंह

|

अनुरुद्धसिंह

|

राजारामचन्द्र

|

प्रजापाल	मोर पहलाद
	मरदनसिंह वानपुर के राजा

(१२) खनियाधाना के राजाओं का वंश वृक्ष

दीवान अमरेस (ओरछा के उद्दैत सिंह के पुत्र)

महाराजदेव

जवाहरसिंह

पृथ्वीपाल

गुमानसिंह

छत्रसिंह

(१३) चिरगांव के राजाओं का वंश वृक्ष

मोहकमसिंह विजना के रायसिंह के पुत्र

पारसजू

गनेशजे

बखतसिंह सन् ५७ के विद्रोह में भाग लेने वाले

●

आचार्य कवीन्द्र-केशव ओरछा

जन्म	देहान्त
वि सं. १६१२	वि. सं. १६७४
(सन् १५५५ई.)	(सन् १६१७ ई.)

रायप्रवीन

जन्म	देहान्त
वि. स १६४२	वि. सं. १७०१
(सन् १५८५ ई.)	(सन् १६४४ ई.)

आपके पूर्वजों का काव्य पर जन्म-सिद्धि अधिकार था। आपके पूर्वज सर्वदा से ऊची श्रेणी के विद्वान और कवि होते रहे हैं। वह अपनी सरस्वती उपासना ही के प्रभाव से बड़े बड़े सम्राटों से गुरुवत् पूजे जाते रहे हैं। ओरछा राजवश तो आपके पूर्वजों का अनन्य भक्त ही था इस सम्बंध में विशेष जानने के लिये सुकवि सरोज का प्रथम भाग देखिये। आपके वंश में बराबर कवि होते रहने का वरदान सा है। श्री पं. कृष्णदत्त जी और उनके पुत्र श्री पं. काशीनाथ जी प्रसिद्ध कवि थे। उनके तीनों पुत्र महाकवि बलभद्र जी, कवीन्द्र पं. केशव दास जी और महाकवि कल्याण जी अपने समय के अद्वितीय महाकवि हुये बलभद्र जी के पुत्र पं, बालकृष्ण जी हुये कवीन्द्र पं. केशवदास जी के पुत्र कविवर प. बिहारीदास जी भी अच्छे कवि थे। केशव के आचार्य्यत्व पर विचार करते समय हमारा ध्यान उनके दो प्रसिद्ध ग्रन्थों की ओर जाता है। ये 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' हैं पहला ग्रन्थ अलंकारों पर है दूसरा रसों पर।

कविप्रिया में केशव ने काव्यभेद, कविभेद, कवि-संप्रदाय, काव्य के वर्ण्य विषय, अलकार, काव्यदोष इत्यादि का विस्तृत वर्णन किया है। केशव

के इस ग्रन्थ का आधार 'काव्यादर्श', 'कविकल्पलतावृत्ति', 'अलंकार शेखर' इत्यादि ग्रन्थ हैं। संस्कृत साहित्य में इन विषयों पर दो प्रकार के ग्रन्थ प्रस्तुत हुये। एक प्रकार के ग्रन्थों का लक्ष्य आचार्यत्व की दृष्टि से रसों, अलकारों इत्यादि का विवेचन था, दूसरे प्रकार के ग्रन्थों में कवियों की शिक्षा के लिये कुछ लिखा जाता था। आचार्यत्व की दृष्टि से लिखी गई पुस्तकों में काव्यप्रकाश, काव्यादर्श, रसगंगाधर, साहित्यदर्पण इत्यादि के नाम लिये जा सकते हैं। इन पुस्तकों में ग्रन्थकर्ताओं का उद्देश्य वैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा विषय का पांडित्यपूर्ण ढंग से प्रतिपादन करना रहता था। दूसरी प्रकार की पुस्तकों का लक्ष्य साधारण कवियों को काव्य की सांप्रदायिक बातों से तथा लौकिक ज्ञान से परिचित कराना रहता था। सब कवियों के लिये देशाटन इत्यादि सम्भव नहीं था अतः उनके लाभ के लिये कुछ सामग्री प्रस्तुत कर दी जाती थी। परन्तु इन कवि-शिक्षा पर लिखी गई पुस्तकों के आधार पर जो रचनायें होती होंगी उनमें प्रत्यक्ष अनुभव से लिखी गई कविता में प्राप्त होने वाली सजीवता न रहती होगी। फिर भी ऐसी पुस्तकों से साधारण कवियों का लाभ ही हुआ होगा। इन कवि-शिक्षा की पुस्तकों में यहां बता दिया गया है कि किन-किन प्रस्तुतों के कौन-कौन से उपमान हो सकते हैं। ग्रन्थकर्ताओं का तो लक्ष्य यही रहा होगा कि कुछ बातों का संकेत स्वतन्त्र उद्भावना तथा कल्पना को जागरित करेगा। परन्तु फल उसका एकदम विपरीत हुआ। संस्कृत के पिछले काल में अनेक ऐसे कवि मिलेंगे जो पुस्तकों में गिनाये हुये उपमानों से आगे न बढ़ सके। कवि-शिक्षा पर लिखी गई इस प्रकार की पुस्तकों में 'काव्यकल्पतावृत्ति', 'काव्यमीमांसा' इत्यादि के नाम लिये जा सकते हैं। केशवदास जी ने 'कविप्रिया' के चार अध्याय इसी विषय पर लिखे हैं। इन अध्यायों में कविसंप्रदाय में प्रचलित कुछ बातों का सकलन कर दिया गया है।

श्री रामचंद्रिका तथा संस्कृत-ग्रन्थ

हिन्दी के अनेक प्राचीन तथा आधुनिक कवियों ने रामकथा पर काव्य लिखे हैं। प्राचीन काव्यों में 'रामचरितमानस' तथा 'रामचद्रिका' इन दोनों ग्रन्थों का अधिक प्रचार हुआ। 'रामचंद्रिका' प्रचार की दृष्टि से कुछ संकुचित क्षेत्र में रही परन्तु 'रामचरितमानस' घर-घर में बिराजने लगा। भाषा में रामचरित गाने वालों ने अपने काव्य के लिये संस्कृत की भिन्न-भिन्न रामायणों, अनेक पुराणों तथा काव्य-नाटकों से सामग्री ग्रहण की। संस्कृत के काव्यकारों तथा नाटककारों ने अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार रामकथा मे अनेक परिवर्तन किए, जिनकी उद्भावना भक्तिमिश्रित कल्पना से की गई। तुलसीदास इत्यादि भाषा कवियों ने भी अपनी रुचि के अनुसार, कभी रामचरित को अधिक सुन्दर बनाने की तथा कभी कथा की आवश्यकतानुसार, अनेक कल्पनाएं की। केशवदास जी ने 'रामचंद्रिका' की प्रस्तावना में लिखा है कि बाल्मीकी मुनि ने मुझे स्वप्न में दर्शन दिए थे। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि बाल्मीकी-कृत रामायण से उन्हें अधिक सहायता मिली होगी। ग्रन्थ को देखने से ज्ञात होता है।

संस्कृत के दो नाटक ऐसे हैं जिनका बहुत गम्भीर तथा विस्तृत प्रभाव तुलसीदास तथा केशवदास दोनों पर पड़ा है। ये 'प्रसन्नराघव' तथा 'हनुमाननाटक' हैं। तुलसीदास का झुकाव 'हनुमाननाटक' की ओर अधिक था और केशवदास पर अपेक्षाकृत 'प्रसन्नराघव' नाटक का अधिक प्रभाव पड़ा है। तुलसी का परशुराम-सम्वाद 'हनुमाननाटक' की छाया है तथा केशव का परशुराम-सम्बाद 'प्रसन्नराघव' से प्रभावित है। संस्कृत के इन दोनों नाटकों को मिलाकर पढ़ने से एक बात आश्चर्य में डाल देती है। कुछ श्लोक इन दोनों ग्रन्थों में एक ही हैं या बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं।

कविप्रिया तथा संस्कृत के आचार्य

'कविप्रिया' में केशव ने सोलह प्रभाव रखे हैं। पहले दो प्रभावों में कवि ने अपने तथा अपने आश्रयदाता के वंशों का सविस्तार वर्णन किया है। तीसरे प्रभाव से वास्तविक पुस्तक प्रारम्भ होती है। तीसरे प्रभाव में काव्य–दोषों का वर्णन किया गया है।

पांडित्य

कवि के सांक्षिप्त परिचय के प्रसंग में कहा जा चुका है कि इनके यहां पाँडित्व की परम्परा बहुत दिनों से चली आती थी। इनके वंश में अनेक प्रसिद्ध विद्वान् हो चुके थे। पुराण-वृत्ति इनके घराने में पहले से चली आती थी। केशवदास जी स्वयं भी उच्च कोटि के संस्कृत-साहित्य के पंडित थे। जैसा इनकी रचनाओं से प्रमाणित होता है। रामचंद्रिका तथा सँस्कृत ग्रन्थ वाले प्रकरण में यह दिखाया जा चुका है कि इन्होंने 'प्रसन्न-राघव' तथा 'हनुमाननाटक' इत्यादि ग्रन्थों से बहुत सामग्री ली थी। इन दोनों नाटकों के अतिरिक्त 'कादबरी' इत्यादि का भी कुछ-कुछ प्रभाव इनकी रचनाओं पर पड़ा है। 'विधि के समान है विमानकृत राजहंस' इत्यादि स्थल तो प्रत्यक्ष ही 'कादंबरी' के हैं। विज्ञानगीता की रचना प्रबोध-चंद्रोदय के अनुसार हुई। सँस्कृत के और ग्रन्थों का भी प्रफाव 'रामचद्रिका' पर स्पष्ट लक्षित होता है। जब ग्रन्थकर्ता की अपनी रचनाओं का प्रभाव ऐसा होता है कि दूसरे ग्रन्थों की सूक्तियां उसमें काव्योचित सामंजस्य के साथ बैठाई जा सके। केशव वैद्यक भी अच्छी जानते थे।

अलंकार

'भूषन बिन न बिराजई कविता बनिता मित्त'

—केशव।

रामचन्द्रिका की कथावस्तु

रामचन्द्रिका में राम की कथा है। यह कथा ३९ प्रकाशों में विभक्त की गई है। १ से लेकर २० प्रकाश तक की कथा रामचन्द्रिका पूर्वार्द्ध में और २१ से लेकर ३९ प्रकाश की कथा रामचन्द्रिका उत्तरार्द्ध में वर्णित है। संक्षेप में, प्रत्येक प्रकाश की कथा इस प्रकार है—

पहला प्रकाश—गणेश-वंदना, सरस्वती-वंदना, श्रीराम-वंदना, कवि का वंश-परिचय, ग्रन्थ-रचनाकाल, ग्रन्थ-रचना-कारण, राजा दशरथ का परिचय, विश्वामित्र का अयोध्या में आना, सरयू का वर्णन, राजा दशरथ के हाथियों का वर्णन, राजा दशरथ के बागों का वर्णन, अयोध्यानगरी का वर्णन।

दूसरा प्रकाश—महर्षि विश्वामित्र का राजा दशरथ के दरवार में आना, दरबार का वर्णन, राम और लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ बन में जाना।

तीसरा प्रकाश—वन वर्णन, यज्ञ-रक्षण, सीता-स्वयम्बर का वर्णन।

चौथा प्रकाश—रावण-बाणासुर-सम्वाद।

पांचवाँ प्रकाश—राम का जनकपुरी-गमन, अहिल्याबाई का उद्धार, अरुणोदय, जनक की निराशा, राम का धनुष तोड़ना।

छठा प्रकाश—दशरथ का बारात लेकर जनकपुरी आना, राम के विवाह का वर्णन।

सातवां प्रकाश—परशुराम-सम्वाद, राम का परशुराम के मान को भङ्ग करना।

आठवां प्रकाश—राम का अयोध्या नगरी में प्रवेश और अयोध्या-वासियों के आनन्द का वर्णन।

नवाँ प्रकाश—दशरथ द्वारा भरत और शत्रुघ्न को ननसार भेजना राम-लक्ष्मण-सम्वाद, राम का वन-गमन, सीता-मुख-वर्णन, राम का लक्ष्मण और सीता-सहित चित्रकूट पर्वत पर पहुँचा।

दसवां प्रकाश—भरत का अयोध्या लौटना, राजा दशरथ की मृत्यु भरत का सेना-सहित राम को वापस लाने के लिये चित्रकूट की ओर प्रस्थान, राम के न लौटने पर भरत का उनकी खड़ाऊँ लेकर आना और नन्दीग्राम में रहकर राज-काज चलाना।

ग्यारहवां प्रकाश—राम की पंचवटी में निवास करना, पंचवटी वर्णन, गोदावरी वर्णन, सीता के गान-वाद्य का प्रभाव-वर्णन, शूर्पणखा-राम-सम्वाद, शूर्पणखा के नाक-कान काटकर उसे कुरूप करना।

बारहवां प्रकाश—खर-दूषण और त्रिशिरा का वध, सीता का रावण द्वारा अपहरण, सीता का विलाप, राम की उन्मत्त दशा का वर्णन, पम्पासर-वर्णन, सुग्रीव का मिलन।

तेरहवां प्रकाश—बलि का वध, वर्षा ऋतु और शरद ऋतु का वर्णन, सीता की खोज, राम की समुद्र को पार कपने की तैयारी, रावण-सीता-सम्वाद, हनुमान-सम्वाद, राम की विरहावस्था का वर्णन।

चौदहवां प्रकाश—हनुमान का लंका जलाना, राम के लिए सीता का सन्देश भेजना, राम का सागर-तीर पर डेरे डालना, समुद्र-वर्णन।

पन्द्रहवां प्रकाश—रावण का अपने मन्त्रियों से विचार-विमर्श करना, विभीषण का राम से मिलना, राम का सागर पार करना, लंका का वर्णन।

सोलहवां प्रकाश—रावण-अंगद सम्वाद, अंगद का रावण के मुकुट को छीनकर ले जाना।

सत्रहवां प्रकाश—राम की सेना द्वारा लंका को घेरना, शत्रु की सेना का वर्णन, लक्ष्मण-मूर्च्छा, हनुमान का द्रोणापर्वत लाना, लक्ष्मण का सचेत होना।

अठारहवां प्रकाश—कुम्भकरण और मेघनाद की मृत्यु।

उन्नीसवां प्रकाश—मकराक्ष-वध, रावण का युद्धक्षेत्र में जाना, मंदोदरी का उसे समझाना, रावण-यज्ञ-भंग, मन्दोदरी के कंचुकी रहित उरोजों का वर्णन, राम-रावण-युद्ध और रावण का बध।

बीसवां प्रकाश—सीता-मिलन और उसकी अग्नि परीक्षा, ब्रह्मादि की स्तुति त्रिवेणी-वर्णन भारद्वाज के आश्राम का वर्णन, भारद्वाज के रूप का वर्णन।

इक्कीसवां प्रकाश—राम-विधान-वर्णन सनाढ्योत्पत्ति वर्णन, राम-भरत मिलाप।

बाईसवां प्रकाश—राम का अयोध्या में प्रवेश।

तेईसवां प्रकाश—ऋषिगण-आगमन-वर्णन, राम की राज्यश्री की निन्दा।

चौबिसवां प्रकाश—राम की विरक्ति का वर्णन, बचपन, यौवन तथा वृद्धावस्था के दुखों का वर्णन।

पच्चीसवां प्रकाश - वशिष्ठ का राम को जीवोद्धार की रीति बताना।

छब्बीसवां प्रकाश-राम-नाम के महात्म्य का वर्णन, तिलकोत्सव वर्णन।

सत्ताईसवां प्रकाश—ब्रह्मा आदि द्वारा राम की स्तुति।

अट्ठाईसवां प्रकाश—राम-राज्य का वर्णन।

उनत्तीसवां प्रकाश—चौगान वर्णन, अयोध्या की रोशनी का वर्णन, शयनागार का वर्णन, राज्यपटल का वर्णन।

तीसवां प्रकाश—संगीत-वर्णन, नृत्य-वर्णन, संगीत-प्रशंसा, सेज-वर्णन, प्रभात-वर्णन, प्रातःकालीन कृत्यों का वर्णन, भोजन के विविध प्रकारों का वर्णन, बसंत-वर्णन, चन्द्र-वर्णन।

इकत्तीसवां प्रकाश—बाग-गमन-वर्णन, शुक्र द्वारा सीता का नख शिख वर्णन।

बत्तीसवां प्रकाश—बाग-वर्णन, कृत्रिम पर्वत का वर्णन, कृत्रिम सीता का वर्णन, जलाशय का वर्णन, जल-क्रीड़ा का वर्णन, स्नानान्तर नारी तन की शोभा का वर्णन, राम का रनिवास को वापस लौटने का वर्णन।

तैंतीसवां प्रकाश—ब्रह्मा का आगमन तथा विनय करना, शबुक-बध राम-सीता-सम्वाद, सीता निर्वासन, कुश-लव का जन्म।

चौंतीसवां प्रकाश—स्वान-सन्यासी-अभियोग मठधारी-निन्दा, सत्य-केतु का व्याख्यान, मनढ्य द्विज आगमन वर्णन, मथुरा-महात्म्य-वर्णन, लवणासुर-वध वर्णन।

पैंतीसवां प्रकाश—राम के अश्वमेध यज्ञ का वर्णन।

छत्तीसवां प्रकाश—लव और लक्ष्मण के युद्ध का वर्णन।

सैंतीसवां प्रकाश—लव का कटु वचन कहना, भरत को बांण लगना।

अड़तीसवां प्रकाश—लव और अगद का युद्ध।

उन्तालीसवां प्रकाश—सीता का विलाप, राम-सीता-मिलन, राम का अपने पुत्रों में राज्य-वितरण, राम द्वारा राजनीति का उपदेश, राज्य-रक्षा के उपायों का वर्णन, राम-चरित्र-महात्म्य, रामचन्द्रिका के पाठ का महात्म्य का वर्णन।

रावण के कथन में राजनीति के दांव-पेच की कितनी सुन्दर व्यंजना है। अंगद के कथन में कितनी विदग्धता तथा व्यङ्ग है।

उत्कृष्ट संवादों से सारी रामचन्द्रिका भरी पड़ी है और इन सवादों के कारण रामचन्द्रिका में नाटक की सी सजीवता आ गई है। रामचन्द्रिका के लिये ये सम्वाद भूषण हैं दूषण नहीं। हिन्दी साहित्य में कहीं भी अन्यत्र

इतने सुन्दर सम्वाद नहीं मिलते और इस दृष्टि से केशव का स्थान निर्विवाद सर्वोच्च स्वीकृत किया गया है। तुलसी के सम्वादों में भी वह सजीवता तथा विदग्धता नहीं है। जो केशव के संवादों में हैं।

उपसंहार--

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कला–निपुणता तथा शुद्ध कविता की दृष्टि से हिन्दी कवियों में केशव का स्थान किसी से भी नीचा नहीं हैं। तुलसी और सूर का जनता के ऊपर अधिक प्रभाव है। वह उनकी भक्ति की गम्भीरता तथा भावुकतापूर्ण व्यंजना के कारण है। वे प्रथम भक्त हैं, तदनन्तर कवि। केशव प्रथम कवि हैं तदनन्तर भक्त। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि हमें तुलसी तथा सूर में उत्कृष्ट कवित्व शक्ति के दर्शन नहीं होते इसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि जहाँ तक कला-चातुरी तथा शुद्ध कवित्व का सम्बन्ध है केशव उनसे आगे बढ़ जाते हैं। यदि हम कला निपुणता के साथ साथ प्रभविष्णुता का भी विचार करते हैं। तो तुलसी और सूर का स्थान निःसन्देह केशव से ऊंचा ठहरता है और केशव तृतीय स्थान के ही भागी बनते हैं। केशव को कबीर, जायसी, बिहारी तथा देव के भी नीचे घसीटना उस महान् कवि के साथ घोर अन्याय करना है।

केशव को सम्वादों में अत्यन्त अधिक सफलता मिली है। फड़कती हुई सजीव भाषा में पात्रों के अनुकूल क्रोध उत्साह आदि की अत्यन्त सुन्दर व्यंजना सम्वादों की प्रथम विशेषता है। रावण-वाण-सम्वाद लक्ष्मण राम परशुराम–सम्वाद तथा लवकुश के प्रसंग के संवाद इस दृष्टि से द्रष्टव्य हैं। विदग्धता तथा व्यग, मुंह तोड़ उत्तर-प्रत्युत्तर तथा भावानुकूल छन्द योजना इनके सम्वादों की कुछ अन्य विशेषतायें हैं। राजनीति के दाँव पेंज की प्रभावपूर्ण व्यंजना भी इनके सवादों में कहीं कहीं बहुत ही सुन्दर हुई है रावण-अंगद-सम्वाद, रावण-हनुमान संवाद इस दृष्टि से बहुत हीसुन्दर तथा

रोचक हुए हैं। दशरथ - विश्वामित्र–संवाद, वामदेव–परशुराम - संवाद, रावण सीता-संवाद, रावण-मन्दोदरी-संवाद, राम-भरत-संवाद इत्यादि।

निधन— केशवदास के जीवन के सम्बन्ध में अब तक जो कुछ कहा गया है उससे यह स्पष्ट नहीं होता कि उनका अन्त कब और कैसे हुआ ? उनके प्रेत होने की चर्चा बहुत है। कहते हैं कि उस समय जो मण्डली बनी थी, उसी को बनी रखने के लिए सबके साथ केशव को भी प्रेत—योनि में जाना पड़ा और अन्त में तुलसीदास की कृपा और रामचन्द्रिका के इक्कीसवार पाठ से उन्हें उससे मुक्ति मिली। तुलसीदास के पीछे पड़ने से केशव के प्रेत का उद्धार हुआ तो ठीक पर इससे उनके निधन का पता कैसे लगाया जा सकता है। जिस अखाड़े के राग-रंग के निमित्त केशव को यज्ञ करा प्रेत बनाना पड़ा उसका अभाव तो उनके जीवन में ही हो गया था। इसको हम उन्हीं की रचना में भली भाँति देख चुके हैं और यदि उसका सम्बन्ध स्वयं वीरसिंह से माना जाय तो यह और भी सम्भव है क्योंकि उनका निधन तुलसीदास के पूर्व स० १६७४ वि० में और श्री तुलसीदास का निधन स० १६८० वि० में हुआ। अतएव हमारा कहना है कि इस प्रेतकथा का कुछ महत्व है।

(१) कवीन्द्र का सर्व प्रथम ग्रन्थ रसिकप्रिया है, महाराजा इन्द्रजीतसिंह के लिये यह ग्रन्थ बनाया था स० १६४८ वि० में रचना हुई पहिले कुछ सारांश लिखा है राजधानी, राजवंश का वर्णन करते हुये ग्रन्थ रचना का कारण लिखा है नवरस-नायिका जाति-नायिका भेद-चारी प्रकार के दर्शन वियोगश्रृङ्गार-चारों बृत्तियों का वर्णन है श्री राधाकृष्ण का अति हास अति विह्वलता हास्य रस लिखा।

(२) आपका दूसरा ग्रन्थ प्रकाण्ड पाँडित्य से पूर्ण रामचन्द्रिका ग्रन्थ सर्वोपरि स० १६५८ वि० में लिखा गया है पहले सारांश लिखा है सम्पूर्ण रामायण स्वरूप में है।

(३) आपका तीसरा ग्रन्थ कवि प्रिया सं० १६५८ वि० में इन्द्रजीतसिंह व अपनी शिष्या रायप्रवीन के लिए रचना हुई ग्रन्थ में सत्रह अध्याय है।
(४) चौथा गृन्थ विज्ञान गीता सं० १६६७ वि० के इक्कीस अध्याय हैं अध्यात्म विषय-महामोह-विवेक और उपदेश प्रद गृन्थ लिखा है।
(५) पांचवां गृन्थ वीरसिंह देव चरित स० १६६४ वि० बनाया है। इसमें महाराज वीरसिंह देव का जीवन वृतान्त है ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ बड़े ही महत्व का है पांडित्य पूर्ण है।
(६) छठवां गृन्थ रतन बावनी सं० १६५८ वि० में मराराजा रतनसिंह की विजय बहादुरी के प्रसंग अकबर बादशाह से मिलन ओरछा का हाल लिखा है अनोखी घटनायें लिखी हैं।

ग्रन्थ सातवां

७--जहांगीर चन्द्रिका सं० १६६९ वि० में जैसा कि गृन्थ का नाम है रचना दरबार का वर्णन-उद्यम-भाग्य की चर्चा है।

खानखाना रहीम के लिये इस गृन्थ में लिखा।

दो०—ताको पुत्र प्रसिद्ध महि-सब खानन की खान।
भयी खानखाना प्रगट-जहांगीर तनु त्रान॥

ग्रन्थ रचना (सम्पूर्ण व्याख्या)

१-रसिक प्रिया सं० १६४८ वि० पीछे लिखे अनुसार।
२-कवि प्रिया सं० १६५८ वि० पीछे लिखे अनुसार।
३-नखशिख सं० १६५८ वि० श्री महादेव जी की अस्तुति
४-छन्द माला सं० १६५८ वि० सम्पूर्ण देवताओं के कवित्त
५--बारह मासी सं० १६५८ वि० प्रत्येक महीना के पद कवित्त
६-रतन बावनी सं० १६५८ वि० पिछे लिखे अनुसार

७–वीरसिंह चरित्र सं० १६६४ वि० पीछे लिखे अनुसार
८–जहांगीर यश चन्द्रिका सं० १६६९ वि० पीछे लिखे अनुसार
९–विज्ञान गीता सँ० १६६७ वि० पीछे लिखे अनुसार
१०–बटुक सप्तक सं० १६६८ भैरव वि० जी की अस्तुति

बुढ़ापे से ये वास्तव में बहुत दुःखी थे और स्थान-स्थान पर जहाँ कहीं बुढ़ापे का वर्णन किया है। एक चित्र-सा अंकित कर दिया है। देखिये —

कंपै उर बानि डरौ बर डीठि त्वचाऽपि कुचे सकुचे मति बेली।
नवै नव ग्रीव थकै गति केसव बालक ते संग ही सङ्ग खेली॥
लिये सब आधिन-व्याधिन सङ्ग जरा जब आवै ज्वरा की सहेली।
भगै सब देह-दसा, जिय साथ रहै दुरि दौरि दुरास अकेली॥

ऐसी प्रतीत होता है कि ये दोनों हाथों से आँखें बन्द किए सँसार को पकड़े बैठे रहे होंगे कि एक रोज अचानक मृत्यु इन्हें घसीटकर ले गई होगी और इनकी पकड़ तभी छूटी होगी जब इनके हाथ शक्ति-रहित हो गये होंगे। दर्शन इत्यादि का अध्ययन होने के कारण यद्यपि इनका ध्यान संसार की अनित्यता के ऊपर भी जाता रहता था परंतु इनमें रसिकता इतनी अधिक थी कि वह वैराग्य इनके हृदय में जम नहीं पाता था और संसार के प्रलोभनों को देख बुढ़ापे में उनके मुंह से हाय निकल जाती थी। ये बार बार 'चेत रे चेत अजहुँ चित चेत' कहकर अपने मन को समझाने का प्रयत्न करते थे पर फिर भी जब कभी ये अपने मकान से बाहर टहलने निकलते थे तो कोई न कोई चन्द्रवदनी इन्हें बाबा' अवश्य कह देती थी। फिर थोड़ी देर को सुमरिनी इनके हाथ से गिर पड़ती थी और यमलोक का डर भी इनके हृदय से भाग जाता था। हमें तो ऐसा लगता है कि केशव का यह विख्यात दोहा उसी समय का है।

केशव केशन अस करी, जस अरिहू न कराहिं।
चन्द्रवदनि, मृगलोचनि बाबा कहि कहि जाहिं॥

एक दप में इस प्रकार लिखा है कि:—

॥ दै मृगनयनी कि दै मृगछाला ॥

कुलीन स्त्रियां जब बाहर निकलती है तो प्राय: सङ्कोच के कारण दबी-सी जाती हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी कमर लचकती हो। कमर के लचकने का वर्णन प्राय: कवियों ने किया है। संभवत: यह उनकी श्रृंगारिक भावनाओं के लिए अत्यन्त उद्वेकजनक समझी गई। यह कमर क्यों लचकती है, इसका वर्णन काल्पनिक हेतु उपस्थित कर कवियों ने किया है कुछ लोगों ने कहा है कि केशों के बोझ से अथवा कुचों के बोझ से कमर बल खाती है, पर केशव इससे बहुत आगे बढ गए और उन्होंने ऐसी उद्भावना की जो एक ओर तो वास्तविक ही है, पर दूसरी ओर काल्पनिक भी।

कचन के भार कुचभारन सकुचभार।
लचकि-लचकि जात कटितट बाल के॥

वास्तविक तो इसलिए है कि कमर लचकती हुई इसीलिए प्रतीत होती है कि सङ्कोच के कारण बाला सीधे नहीं खड़ीं हो पाती और काल्पनिक इसलिए कि सङ्कोच का बोझ यदि होता है तो हृदय पर पड़ता है, शरीर पर नहीं।

श्री वीरसिंह देव महाराजा ओरछा ने विश्राम घाट यमुना तट पर मथुरा में ८१ (इक्यासी) मन सोने का तुलादान इन्होने ही दिया था जिसके लिये कहा जाता है भूतों न भविष्यति—न पहिले किसी ने इतनी बड़ी तुला वहां पर दान की थी और न उसके बाद कोई इतना दान सोने का किसी ने किया है न कोई कर सकता है।

बुन्देला राजा वीरसिंह देव के समय में ओरछा राज्य की सीमा जमुना नदी से नर्मदा नदी तक तथा सोन नदी से चम्बल नदी तक समस्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया था।

महाकवि केशवदास के सुपुत्र कविवर विहारीदास

कविवर विहारीदास मिश्र का जन्म सं० १६५५ वि० और देहान्त सं० १७२० वि० ग्राम फुटेरा में हुआ।

सनाढ़्य ब्राह्मण भारद्वाज—गोत्रीय मिश्र हैं
विहारी सतसई नामक रचना की है
जिसमें ७१६ दोहा लिखे है सं० १७१६ वि० में
विहारी सतसई की रचना समाप्त हुई थी
विहारीदास का फुटेरा पिछोर में ननिहाल था

इन्द्रजीत महाराजा (ओरछा)

इन्द्रजीत महाराजा ओरछा का जन्म सं० १६२० वि० देहान्त सं० १७०५ वि० में हुआ आप ओरछा की गद्दी पर नहीं रहे, ओरछा राज्य ही के अंतरगत कछौआ पिछोर पर आप जागीरदार थे मधुकुर शाह के तीसरे पुत्र थे। कवीन्द्र केशव ने वीरसिंह देव चरित नामक ग्रन्थ में लिखा है

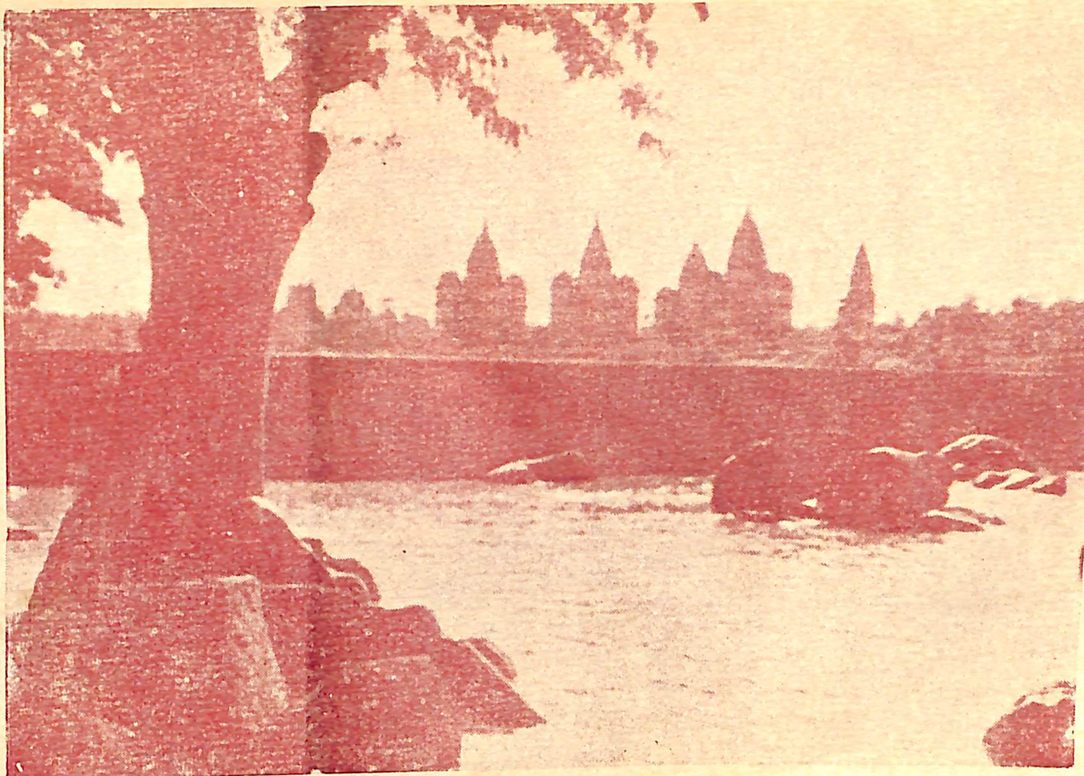
ओरछा गजैटियर पृष्ठ न० १८ पर लिखा है कि यह जागीरदार ही थे।

आचार्य:—कवीन्द्रकेशव ने स०१६५८ वि० में ग्रन्थ कविप्रिय में अपने महाराजा इन्द्रजीत के प्रीत्यर्थ उनकी प्रीति पात्री और अपनी शिष्य प्रवीणराय के लिए रचा है। प्रवीणराय स्वयम काव्य करती थी और गानविद्या में पारङ्गत थी। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ बड़े महत्व का है। प्रवीणराय को महाराज इन्द्रजीत की प्रेमिका को शिरोमणि बताते हुये रायप्रवीन की तुलना रमा-उमा सरस्वती से करते है।



गढ़ कुड़ार का किला

फोटो : देवेन्द्रकुमार वर्मा



वेतन नदी का दृश्य मकबरों सहित
फोटो : देवेन्द्रकुमार वर्मा

इसी काल की कवियित्रियों में ओरछा के दरबार श्रआय में रहने वाली श्रेष्ठ वेश्या 'राय प्रवीन' तीन तरङ्ग विलोच नयना तथा मधुर अली के नाम उल्लेखनीय है।

देवा साभा, तंत्री तुम्वारू और शुद्ध स्वर साधना में लीन स्थिर राय प्रवीन:—सारिका है पर पिजरस्थान नहीं। इसके वश इन्द्रजीत है। पर यह निपट रूपसी कलांगना मात्र नहीं है। केशव का संस्कारी मन इसके शुद्ध अन्तर को वाह्य पट पर अङ्कित करता है। वह रायप्रवीन नव रस से ही युक्त नहीं है। नवधाभक्ति युता भी है। अतः इसे 'नरी' 'किन्नरी' 'आसुरी' देवियाँ भी नमन करती हैं।

उच्च वंश वधुओं की बात क्या बताऊँ तुम्हें;
पातुरे जहां की पूर्ण पतिवृता होती थी ॥

दोहा:—पातुर राय प्रवीन को, नहि जानता कौन।
अकबर का मुक्ता हुई, जिनके सनमुख मौन ॥

राय प्रवीन

जन्म सं० १६४२ वि० और निधन स० १७०१ वि० ओरछा राज्य को हिन्दी के नवरत्नों में से एक महाकवि 'केशव' ने अपनी काव्य स्थली बनाया, जो इतनी रङ्गीन तबियत के थे कि वृद्धावस्था में भी:—

है मृगनयनी कि है मृगछाला ॥

"केशव केसनि अस करि, जस अरिहू न कराहिं।
चन्द्रबदनि, मृगलोचनी, बाबा कहि-कहि जाहिं।

जब अकबर सम्राट ने राय प्रवीन को आगरा बुलाने का आदेश

(सन् १६०२ ई०) सं० १६५६ वि० में भेजा था उस समय इन्द्रजीतसिंह से रायप्रवीन निवेदन करती हैं, कि—

कवित्त — आई हौं बूझन मन्त्र तुम्हें
निज शासन से सिगरी मति गोई।
देह तजौं कि तजौं कुल कानि,
हिये न लजौं लज हैं सब कोई॥
स्वारथ औ परमारथ को पथ,
चित्त विचार कहौं सब कोई।
जामें रहे प्रभु की प्रभुता, अरु
मौर पतिब्रत भङ्ग न होई॥

सन् १६०२ ई० अर्थात् सं० १६५६ वि० में इन्द्रजीतसिंह की सम्मति से रायप्रवीन आगरा अकबर दरबार में उपस्थित हुई और इस प्रकार अकबर बादशाह से रायप्रवीन कहती—

॥ दोहा ॥

स्वर्ण ग्राहक तीन हैं, कवि, विभिचारी-चोर।
पग न धरत, संमय करत, तनक न चाहत शोर॥
पेड़ बड़ो छाया घनी, जगत करै विश्राम।
ऐसे तरुवर के तरैं, मोय सतावै घाम॥
कहा दोष करतार कौ, कर्म कुटिल गहैं बाँह।
कर्महीन किलपत फिरहिं, कल्पवृक्ष की छाँहि॥
कनक छरीसी कामिनी, काहे कटि की छीन।
कटि की कंचन काढ़िकैं, कुच-नितम्ब भर दीन॥
जो कुच कंचन के बनै, मुख कारो किहि कीन।
जोबन ज्वर के जोर में, मदन मुहर कर दीन॥

श्वेत रंग सबसे भले, श्वेत भले नहि केश ।
रमणी रमत न रिपु डरैं, सुनहु शाहि जनेश ॥

अकबर बादशाह ने रायप्रवीन से प्रश्न पूछा:—

जुवन चलत तिय देह तैं,
चटकि चलत केहि हेतु ॥१॥

रायप्रबीन का उत्तर:—

मनमथ वारि मसाल को,
सैंति सिहारो लेत ॥२॥

बादशाह अकबर का प्रश्न:—

ऊँचै ह्वै सुर बस किए,
सम ह्वै नर बस कीन ॥१॥

रायप्रबीन का जबाब:—

अब पताल बस करन को,
ढरकि पयानों कीन ॥२॥

ओरछा की नर्त्तकी नामक उपन्यास में सजीव वर्णन किया गया है राय प्रवीन ने मुगल सम्राट अकबर को भरे दरबार में फटकारते हुए कहा था । जूंठी पत्तल और पातुर को अधम और नीच ही स्वीकार करते हैं ।

"विनती राय प्रवीन को सुनिये साहि सुजान ।
जूठी पतली भखत हैं, बारी, बायस, स्वान ॥"

और मुगल सम्राट को निरुत्तर होकर 'वेश्यापुत्री होने पर भी पतिव्रत और जननी-जन्मभूमि के सम्मान प्रति के दृढ़ आस्था रखने वाली" इस कवियित्री को आदर-सहित ओरछा ही वापस भेज दिया था ।

ओरछा के महाराजाओं का परिचय

[परिशिष्ट]

स० वि० सम्वत् विक्रमी के अनुसार

वि०स० १५८८ (सन् १५३१ ई०)

वैशाख शुक्ल १५ सोमवार	ओरछा किले का शिलान्यास	महाराजा रुद्रप्रताप वि० स० १५८८ मृत्यु (सन् १५३१ ई०)
वि० स० १५८८ (सन् १५३१ ई०)	भारतीचन्द्र गद्दी पर बैठे	भारतीचन्द्र वि० स० १५८८–१६११ सन् १५३१ ई० सन् १५५४ ई०
वि० स० १५९६ सन् १५३९ ई०	किला बनकर तैयार हुआ और गढ़ कुण्डार से राजधानी अंतिम रूप में ओरछा आई।	
वि० स० १६०२	शेरशाह की मृत्यु (सन् १५४५ ई०)	
वि० स० १६११ (सन् १५५४ ई०)	भारतीचन्द्र की मृत्यु उनके छोटे भाई मधुकर शाह गद्दी पर बैठे।	मधुकरशाह १६११–१६४९
वि० स० १६१२ (सन् १५५५ ई०)	अकबर सम्राट बना हुमायूं की मृत्यु, अकबर ने सादिक खाँ	(सन् १५५४ ई० से सन् १५९२ ई० तक)
वि० स० १६३४ (सन् १५७७ ई०)	के सेनापतित्व में चढ़ाई की। सन्धि हुई। (सन् १५७७ ई०)	
स०१६४५सन्१५८८	अकबर ने फिर सेना भेजी। (सन् १५८८ ई०)	
वि० स० १६४८ (सन् १५९१ ई०)	मुराद के सेनापतित्व में चढ़ाई अकबर का आधिपत्य। सन् १५९१ ई० में	
वि० स० १६४९ (सन् १५९२ ई०)	मधुकरशाह की मृत्यु। रामशाह राजा हुये। सन् १५९१ ई०	रामशाह १६४९-१६६३
वि० स० १६५८ (सन् १६०१ ई०)	सलीम का विद्रोह सन् १६०१ ई०	सन् १५९२- सन् १६०६ ई०

वि० स० १६५९	अबुल फजल की हत्या सन् १६०२ ई०	
(सन् १६०६ ई०)	अकबर की मृत्यु जहाँगीर गद्दी पर बैठे सन् १६६० ई०	
वि० स० १६६३ सन् १६०६ ई०	जहांगीर ने रामशाह को चन्देरी, वानपुर का जागीरदार बनाया। वीरसिंह राजा (वीरसिंहप्रथम) हुये। ओरछा के अभ्युदय का युग।	१६६३-१६८४ सन् १६०६ ई०
सन् १६२७ ई०	जहाँगीर की मृत्यु। वीरसिंह की मृत्यु	१६८४- सन् १६२७ ई०
वि० सं० १६८४	शाहजहां सम्राट बना। जुझारसिंह राजा हुए।	१६८४-१६९१ सन् १६२७ई०-१६३४ ई०
	जुझारसिंह का प्रथम विद्रोह (सन् १६२८ ई०)	
	शाहजहाँ ने चढ़ाई की। (वि० स० १६८५ ई०)	
	प्रथम विद्रोह देवीसिंह	१६९१-१६९३
वि० स० १६९१ सन् १६३४ ई०	जुझारसिह का द्वितीय विद्रोह और मृत्यु ओरछा राज्य देवीसिंह को	सन् १६३४- सन् १६३४- १६३७ ई०
वि० सं० १६९३ सन् १६३६ ई०	जुझारसिंह का छोटा लड़का पृथ्वीराज गद्दी पर बैठा। सन् १६३६ ई०	पृथ्वीराज १६९३-१६९४ से १६३७ ई०
वि० स० १६९४ सन् १६३७ इ०	पृथ्वीराज ग्वालियर में कैद कर लिया गया, चम्पतराय का कब्जा।	चम्पतराय १६९४-१६९८ सन् १६३७-१६४१ ई०
वि० सं० १६९८ सन् १६४१ ई०	पहाड़सिह राजा हुए। गोड़वाना जीता सन् १६४१ ई०	पहाड़सिह १६९८ से सन् १६४१-१६६३ ई० १७२० तक
वि० स० १७०६ सन् १६४९ ई०	महाराजा छत्रसाल का जन्म सन् १६४९ ई०	

वि० स० १७१५	औरङ्गजेब सम्राट बना सन् १६५८ ई०	
सन् १६५८ ई०		
वि० स० १७२१	चम्पतराय की मृत्यु वि० स० १७२१ सुजानसिंह प्रथम	
सन् १७६४ ई०		सन् १६६३ से १६७२ ई०
वि० स० १७२०	सुजानसिंह राजा हुये सुजानसिंह	१७२०-१७२६
सन् १६६३ ई०		सन् १६६३ से १६२७ ई०
वि० स० १७२६	सुजानसिंह की मृत्यु सन्१६७२ई०	इन्द्रमणि
सन् १६७२ ई०	इन्द्रमणि राजा हुये सन् १६७२ई०	१७१६-१७३२
		सन् १६७५ ई०
वि० स० १७३२	इन्द्रमणि की मृत्यु सन् १६७५ ई०	जसवन्तसिंह
सन् १६७५ ई०	जसवन्तसिंह राजा	१७३२-१७४१
	हुए	सन् १६७५ से १६८४ ई०
बि० स० १७४१	जसवन्तसिंह की मृत्यु	उदोतसिंह
सन् १६८४ ई०	और फिर उदोतसिंह	१७४१-१७९३
	राजा हुए	सन् १६८४से१७३५ई०
वि० स० १७६४	औरङ्गजेब की मृत्यु सन् १७०७ ई०	
वि० स० १७८८	महाराजा छत्रसाल का स्वर्गवास	सन् १७३१ ई०
वि० स० १७९३	उदोतसिंह की मृत्यु।	पृथ्वीसिंह
	पृथ्वीसिंह राजा सन् १७३६ ई०	१७९३-१८०९
वि० स० १८०९	पृथ्वीसिंह की मृत्यु सन् १७५२ ई०	सामन्तसिंह
	सामन्तसिंह राजा हुये सन् १७५२ई०	१८०९-१८२२
वि० स० १८२२	सामन्तसिंह की मृत्यु सन् १७६५ ई०	विक्रमाजीतसिंह
सन् १७६५ ई०	विक्रमाजीतसिंह राजा हुये।	१८२२-१८७४
वि० स० १८४०	विक्रमाजीतसिंह ने राजधानी लिधौरा	
सन् १७८३ ई०	टीकमगढ़ बनाई तथा राज १८७४ तक किया।	
		सन् १८१७ ई०

वि० स० १८७४	विक्रमाजीतसिंह की मृत्यु ।	धर्मपालसिंह
सन् १८१७ ई०	धर्मपालसिंह राजा हुये ।	१८७४–१८९३
	सन् १८१७ ई० ।	
वि० स० १८९३	धर्मपालसिंह की मृत्यु ।	तेजसिंह
	तेजसिंह राजा हुये सन् १८३६ ई०	१८९३-१८९९
वि० स० १८९९	तेजसिंह की मृत्यु ।	सुजानसिंह द्वितीय
	सुजानसिंह राजा हुये । सन् १८४२ई०	१८९९-१९१२
वि० स० १९१२	सुजानसिंह की मृत्यु ।	हम्मीरसिंह
सन् १८५५ ई०	हम्मीरसिंह राजा हुये ।	१९१२-१९३१
	सन् १८५५ ई० ।	
वि० स० १९३१	हम्मीरसिंह की मृत्यु सन् १८७४ ई०	प्रतापसिंह
	प्रतापसिंह राजा हुए ।	१९३१-१९८७
	सन् १८७४ ई० ।	
वि० स० १९८७	प्रतापसिंह की मृत्यु सन् १९३० ई०	वीरसिंह द्वितीय
	वीरसिंह राजा हुये ।	१९८७-२०१३
	सन् १९३० ई०	
वि० स० २०१३	वीरसिंह की मृत्यु सन् १९५६ ई०	देवेन्द्रसिंह
	देवेन्द्रसिंह वर्तमान समय में टीकमगढ़ में रहते हैं। ओरछा के महाराजा कहलाते हैं। राजा बहादुर मधुकर सिंह है ।	२०१३

लेखक :

ठा० लछमनसिंह गौर

ओरछा जिला–टीकमगढ़ (म० प्र०)



छायाकार की ओर से

स्थायी-निवास
९४५ बाई का बगीचा
जबलपुर (म० प्र०)
दिनांक १८ जनवरी '७७

हिन्दी साहित्य में एम० ए० करते समय मुझे भक्तिकाल के रीतिबद्ध महाकवि केशवदास के साहित्य का अध्ययन करने का अवसर मिला था। उनके जीवन का अध्ययन करते समय उनका यह दोहा उद्‌धृत किया जाता था—

केशव के सनि अरप करि, जस अरिहू न कराय।
चन्द्रबदन मृग लोचनी, बाबा कहि कहि जाय॥

इनकी शिष्या रायप्रवीन का उल्लेख भी अक्सर उनके साहित्य के अध्ययन में होता था। कोई भी साहित्य-जिज्ञासु उनके प्रबन्ध—काव्य 'रामचंद्रिका' के अध्यात्मिक पक्ष के कमजोर होने पर भी कला—पक्ष से अप्रभावित नहीं रह सकता। उनके अन्य काव्य—ग्रन्थ 'वीरसिंह देव चरित,' जहांगीर जस-चन्द्रिका' का सांगोपांग अध्ययन न करने पर भी उनके साहित्य की समीक्षा करते समय इनका उल्लेख अवश्य ही होता था। शासकीय सेवा में चार वर्ष व्याख्याता के पद पर कार्यरत् रहने के दौरान भी अध्यापन हेतु उनके साहित्य का अध्ययन करना पड़ा।

सन् १९६७ में नायब तहसीलदार के पद पर नियुक्त होने के बाद में हिन्दी सहित्य से अलग—थलग सा हो गया और केशवदास जी का साहित्य